अभिनव रामायण

'संतबाल'

अनुवादक
सोमेश्वर पुरोहित



नवजीवन प्रकाशन मंदिर

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय अहमदाबाद-१४

प्रथम संस्करण ३०००

जुलाई, १९६५

दो शब्द

भारतमें जो चार महापुरुष धर्म-संस्थापकके रूपमें प्रसिद्ध हैं वे क्रमशः इस प्रकार हैं (१) राम, (२) कृष्ण, (३) महावीर और (४) बुद्ध। इनमें सबसे प्राचीन महापुरुषके नाते प्रथम नाम भगवान रामका आता है। रामका जीवन चरित्र ही रामायण है।

'अभिनव रामायण' कोई महर्षि वाल्मीकि अथवा गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायणका अनुवाद नहीं है। यह सर्वधर्म-सर्वोदय अनुरूप रामायणका रूपांतर है। फिर भी रामायणके मूल भावकी भलीभांति रक्षा करके यह रूपांतर किया गया है इसलिए इसमें प्राचीन संस्कृतिमय भारतके पवित्र अंगोंके सातत्यकी रक्षा हुई है। इसी प्रकार इसके बाह्य कलेवरमें युगके अनुरूप परिवर्तन भी हुए हैं। कहनेका आशय यह है कि इसमें सातत्यकी रक्षा और परिवर्तनशीलता दोनों पहलुओंका निर्वाह करनेका प्रयत्न किया गया है इसलिए इसका नाम 'अभिनव रामायण' रखा गया है। और यह नाम पाठकोंको सार्थक लगे बिना नहीं रहेगा।

पौराणिक कालमें भय लाभ और चमत्कारोंकी त्रिवेणीका महत्त्व लोगोंमें था। इस वैज्ञानिक युगमें अब हृदय-परिवर्तन, समाज धर्म और चरित्र निष्ठाकी त्रिवेणी लोगोंमें प्रतिष्ठित होने लगी है। इस अभिनव युगमें जिन महात्मा गांधीके व्यक्तिगत चरित्र तथा विश्व-व्यापक कार्योंका बहुत बड़ा हाथ है उन गांधीजीका उपास्य मंत्र भी राम था। वे रामायणके राजा हरिश्चन्द्रसे सत्यता सीखे थे और मन वाचा तथा कर्मसे उन्होंने सत्यकी आराधना की थी—और वह भी केवल व्यक्तिगत जीवनमें नहीं किन्तु सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रोंमें भी। इसका कारण यह है कि गांधीजी केवल सत्यको ही ईश्वर मानते थे। उन्होंने बचपनसे ही 'राम'के मंत्रसे अभयकी आराधना की थी। इस आराधनाके परिणाम-स्वरूप जब उन्हें मृत्युका उपहार मिला, तब उनके अन्तिम शब्द 'हे राम' ही थे। वे 'रामराज्य' के अभिलाषी थे।

वे मानते थ कि सत्यरूपी महान धममें अखिल विश्वका समावेश हो जाता है। राज्य भी उसीका एक अग है। राज्यका अथ है विशाल समाज। विशाल समाजकी व्यवस्थामें स राज्यका जन्म होता है। इमी प्रकार समाजका अथ है विशाल परिवार। इस तरह सारे तो परिवारकी एक छोटी इकाईमें स ही विशाल परिवाररूपी समाज बनता है। जस छोटे परिवारमें पुरुप स्त्री और सतानका समावेश होता है जसे गृहस्थाश्रममें सम्पत्ति माता पिता पुत्र-पुत्री पति-पत्नी भाई-बहन सास-ससुर देवरानी जिठानी सौतली माता सौतला सतान आदिका समावेश होता है, वस ही इस विशाल परिवारमें सयम स्वाय त्याग आदि सदगुणोंका समावेश आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टिसे वर्णाश्रम — जो भारतीय समाजका मूल आधार है — के समस्त धम कर्मोंका सुन्दर और मागदर्शक पान रामायणसे हमें अपने आप मिल जाता है। इस प्रकार सारी दृष्टियोंसे रामायण और राम जीवन प्रश्न और प्रिय बन सकते ह क्योंकि उनमें व्यक्ति परिवार समाज राज्य विश्वराज्य आदि सारे विषय आ जाते ह।

आज जब भौतिक विज्ञानने सपूण विश्वको बाह्य दृष्टिस निकट ला दिया है समूचे विश्वकी मानव-जाति विश्वशांतिके लिए तरस रही है तथा युद्ध उसे अप्रिय और मित्रता प्रिय लगती है तब आतरिक दृष्टिस भी विश्वको निकट लानकी बहुत बडी आवश्यकता है। एसे समय इस प्रकारका साहित्य अनिवाय हो जाता है जो सारे विश्वकी मानव जातिको एक मच पर एकत्र कर सके और उसे मत्रीभावका अनुभव करा सके। इस प्रकारके साहित्यमें रामायणका श्रेष्ठ स्थान है। वह विश्वके काव्योंमें भी आदिकाव्य है।

ऊपरी दृष्टिस विचार करे तो इस 'अभिनव रामायण से यदि लोकतत्रका लोकलक्षी बनानकी यानी केवल चुनावोंके समय ही नहीं परन्तु दनिक राजकीय जीवनमें लोगोंके मागदशनको राज्यके लिए अनिवाय बनानकी लोगोंको स्वय ही सत्य प्रम और न्यायकी त्रिवेणी स्वीकार करनकी तथा राज्यके स्तर पर अखिल विश्वमें लोकतत्रको सव राष्ट्रव्यापी बनानकी प्रेरणा मिले तो मुझ बहुत बडा सन्तोष होगा।

जैनोंने इस दशामें गहनसे गहन विचार करके भूतकालमें उसे आचरणमें उतारा है। उन्होंने भी भगवान रामको भगवानके रूपमें देखा है और इस सम्बन्धमें अपनी परिभाषामें लिखा है। यह भी इसका एक प्रमाण है कि रामका जीवन सर्वप्रिय है।

आज जब विश्वसेवाका क्षेत्र खुल गया है तब विश्वके राष्ट्रोंकी प्रजा भारतके सामने इसके लिए एकटक देख रही है। भारतके सेवक ऐसे संस्कृति-समन्वयके महासमुद्रमें कूदें उससे पहले यह आवश्यक है कि वे अपनी आध्यात्मिक दृष्टिको स्थिर और मजबूत बनायें। इस खयालसे भी गीता और रामायणका पठन चिन्तन और प्रत्येक क्षेत्रमें तदनुरूप आचरण होना आवश्यक है।

दस-ग्यारह वर्ष पूर्व भालनलकांठाके प्रयोगमें लगे हुए सेवकों और सेविकाओंके समक्ष गीता और रामायणका अभिनव दृष्टिसे रसप्रद अध्ययन चल रहा था उस समय यह कल्पना भी नहीं थी कि 'विश्व वात्सल्य'में रामायणका रूपांतर इस रूपमें लिखा जा सकेगा और इसका प्रकाशन बापूके साहित्यका प्रकाशन करनेवाली नवजीवन संस्था ही करेगी।

इसके संपादनमें नये किन्तु भक्तिप्रिय लेखक भाई मनु पंडितने अच्छा रस लिया है।*

'संतबाल'

* मूल गुजराती प्रस्तावनामें।

सम्पादकीय

मनुष्य प्रवृत्तिके बिना रह नहीं सकता। इस प्रश्न पर अनेक प्रकारके पिष्टपेषण हुए हैं। सब कोई यह मानते हैं कि प्रवृत्तिका बदलवानेमें प्रकृतिका बड़ा हाथ होता है। फिर भी हम यह जानते हैं कि प्रवृत्तिका जन्म वृत्तिसे होता है और वृत्तिका निर्माण विचारसे होता है। इसलिए अन्तमें तो मनुष्य अपने विचारोंसे जगतका सर्जन करता है और जहां ऐसा नहीं होता वहां वह कल्पनाके गगनविहारमें — मानसिक जगतमें — लीन रहता है।

इसलिए विचारोंकी शुद्धताका अर्थ हुआ चित्तशुद्धि। विचारोंमें जब विकार उत्पन्न होता है तब हम उन्हें कुविचार कहते हैं और वे हमें स्वार्थ तथा सम्पत्तिके संग्रहके मार्ग पर घसीट ले जाते हैं। सद्विचारोंसे शीलका जन्म होता है। और यह शील जब हृदयके साथ संलग्न होता है तब चाहे जिस मनुष्यके मनमें भी सहानुभूति उत्पन्न किये बिना नहीं रहता। शीलके लिए यदि हम माताकी कल्पना करें, तो भक्ति उसकी बहन है। शील और भक्ति जब एकसाथ मनुष्यमें प्रवेश करते हैं तब आसक्ति भस्मीभूत होकर उड़ जाती है। इस शील और भक्तिकी ओर मनुष्यको आकर्षित करे वह सत्साहित्य है। ऐसे साहित्यमें रामायणका स्थान बहुत ऊंचा है।

आज जगतमें भौतिक विज्ञान आध्यात्मिकताकी ओर जनतामें बढ़ रहा है और भारतमें घुसी हुई व्यक्तिगत स्वामित्वकी मूल स्वार्थपूर्ण भावना समाज तथा समष्टिके साथ सुमेल साधनेका प्रयत्न कर रही है। ऐसे अनुकूल समयमें यह 'अभिनव रामायण' प्रकाशित हो रहा है यह भी एक शुभ चिह्न माना जायगा।

हमारे 'विश्ववात्सल्य'के पाठकोंकी ओरसे मुनि सन्तबालजीके समक्ष यह मांग आई थी कि "आप रामायणके बारेमें स्वतंत्र विचार प्रकट करनेवाला कुछ लिखिये।" सन्तबालजीने हम सबकी मांग स्वीकार की

गया, तो उनकी पश्चात्तापपूर्ण मन स्थितिको समझा जा सकता है। वे समाजको क्या मुह दिखाना? इसीलिए गौतम ऋषि उनसे कहते ह

> अहल्या, मुझे आशा थी कि एक बार खडी होकर तुम मेरे सामने देखोगी। परन्तु ऐसा नहीं होना था। अब म अंतिम विदा लेता हू और तुम्हारी भूलके लिए तुम्हे क्षमा करता ह। मेरे पश्चात्तापने मुझे शुद्ध कर दिया है। तुम मुझे क्षमा कर दोगी इसका मुझे विश्वास है। परन्तु तुम्हे खडी करने जितनी शक्ति आज मुझमें नही रही। किसी समय तुम्हे तुम्हारा सच्चा उद्धारक अवश्य मिलेगा ऐसा मान कर म गतव्य स्थानको जाता हू। (पृ० १९)

इसी प्रकार बालि और सुग्रीवके युद्धके समय भगवान रामचन्द्र गुप्त रीतिसे कपटसे बालिपर प्रहार करते ह तब लेखक बालिसे जो वचन कहलाते ह व हमारी भक्तिको तीक्ष्ण बाणोके समान लगते ह।

अब जरा हम वहाका चित्र देखें

> 'बालिने नीतिको तो पहलेसे ही एक ओर रख दिया था। अब युद्धके सामान्य नियमोका भी वह उल्लघन करने लगा। कुछ देर विश्राम करके स्वस्थ होनेकी सुग्रीवकी माग बालिने स्वीकार तो कर ली परन्तु उसकी असावधानीका लाभ उठानेके लिए उसने अचानक अपनी गदा उठाई।" (पृ० १२३)

किन्तु रामसे यह नियम-भग कैसे सहन होता?

अतमें जब बालि निष्पक्ष रघुवीरको सुग्रीवके पक्षपाती ठहराता है, तब राघव उत्तर देते हैं

> "जब तुमने सामान्य युद्ध नियम भी तोडनेका प्रयत्न किया, तभी मुझे यह कदम उठाना पडा। तुमने मुझे पक्षपाती कहा यह एक प्रकारसे सच है। सत्य और न्यायका पक्षपाती म सदा रहा हू और आगे भी रहूगा।' (पृ० १३५)

इसी प्रकार राज्यतत्रकी स्थिरताके आधार-स्तम्भके समान चार बल साम, दाम, दण्ड और भेद आतरिक और बाह्य दोनो ही रूपोमें सर्वथा नूतन अर्थमें हमारे सामने आते ह

'सामका अर्थ है आत्मीयताके साथ प्रजाका सम्पर्क साधना। दामका अर्थ है एक ओर राज्यके कर्मचारियोंको समुचित वेतन देना और दूसरी ओर प्रजापर सामान्य लोगोंको भारी न मालूम हों ऐसे थोड़े और हलके करोंसे ही शासन चलाना। दण्डका अर्थ है प्रजाको हानि पहुंचानेवाले मार्ग पर अज्ञानवश या भूलसे लगे हुए लोगोंको पश्चात्ताप हो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना। और भेदका अर्थ है इस तरहका प्रयत्न करनेके बाद भी कुछ ऐसे लोग प्रजामें रह जायं तो उन्हें समाजसे अलग करके रखना और सुधरनेका मौका देना। इतनी बात आन्तरिक व्यवहारके बारेमें हुई।

बाह्य व्यवहारके सम्बन्धमें सामका अर्थ है मीठे आन्तर राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करना। दामका अर्थ है अन्य देशोंका शोषण न करना तथा अपने देशका शोषण न होने देना। इस दृष्टिसे बीच होनेवाले आर्थिक करार भी कहे जा सकते हैं। दण्डका अर्थ है जो राष्ट्र हमारे राष्ट्रके बारेमें गलतफहमी रखते हों उनकी गलतफहमी दूर करना। और भेदका अर्थ है सिद्धान्त भेदके कारण अथवा साधनोंकी अशुद्धिके कारण जिन राष्ट्रोंके साथ हमारे राष्ट्रका मेल न सधे उन राष्ट्रोंके साथ अपने राष्ट्रका सम्बन्ध धीमा कर देना। (पृ० १४४-४५)

स्वर्ण-नगरी लंकाका अर्थ सोनेकी नगरी नहीं परन्तु ऐसी नगरी है जिसके निवासियोंको स्वर्ण अत्यन्त प्रिय है।

स्थान स्थान पर मुनि श्री सन्तबालजीकी गहरी दृष्टि नया अर्थ पेश कर हमारी बुद्धिके साथ उसका मेल बैठा देती है।

आज तक हमारी नीति व्यक्ति-निष्ठ रही है। अब इस गुण निष्ठ बनानेका समय आ गया है। ग्रामराज्य हमें यह भी एक नई दृष्टि देता है।

हमारे देशके लोगोंमें एक अद्भुत कल्पना अनोखा आनन्द पैदा करती है। वह है रामराज्यकी कल्पना। ऐसा क्यों है? कारण यह कि हमारे हृदयोंमें आज भी राजा राम बैठे हैं। परन्तु हमारा

नई पीढ़ी इस आध्यात्मिक पूजीको धीरे धीरे खोती जा रही है। इसके फलस्वरूप आज सर्वत्र नतिक दारिद्रय दिखाई पडता है। स्व० महादेव देसाईने ठीक ही कहा है कि

> रामायणका कथामृत तो बालकको माताके दूधके साथ ही पीनेको मिलना चाहिये। माताके दूधके साथ पीनेको न मिले तो जबसे बालक पिताकी गोदमें बठकर कहानिया सुननेका रसिया बने तबसे रामायणकी कथाओके साथ ही उसकी शिक्षाका शुभ आरभ होना चाहिये। परन्तु एसे माता पिता आज तो गुजरातमें और भारतमें भी बहुत कम ह।

मुनि श्री सतबालजी द्वारा रचित यह अभिनव रामायण गाधी युगका प्रतिबिंब है। लेकिन बहुत बार हम प्रतिबिंबमें भी मूल वस्तुको पहचान सकते ह। यह प्रतिबिंब किसी रामभक्तको गाधी-युगका रामचरित रचनेकी प्रेरणा दे तो इससे अधिक सुन्दर और क्या हो सकता है?

वात्सल्यधाम — मनु पडित
मढी (सूरत)

अभिनव रामायण

१

शिव-उमा सवाद

शिव और उमा आपसमें बातें करते हुए चले जा रहे है। एका एक घन जगलमें किसीके विलापका करुण स्वर उन्हे सुनाई पडता है। भगवान शिव विलाप कर रही उस मानव मूर्तिके पास दौड कर जाते है और उसके चरणोमें गिर कर वन्दन करते है।

उमा आश्चर्यचकित हो जाती है। यह क्या? ये मेरे पति देवोके भी देव — महादेव प्रणाम करते है और वह भी अपनी पत्नीके विरहमें पागल बने हुए एक साधारण मनुष्यके चरणोमें? उमाके मनके भावोको शिवजी ताड जाते है और कहते है 'ये राम है। सारा ससार जिनके चरणोमें नम्र प्रणाम करता है ऐसे देवोके भी देव राम।" उमाके मनमें शका उठती है वे सोचती है देखू तो सही कैसे है ये राम! लेकिन इनकी परीक्षा कैसे की जाये?'

शास्त्रवार्ताओमें कहा जाता है कि जहरकी परीक्षा नही होती! मतलब यह कि परीक्षक बनना आसान है परन्तु परीक्षकमें यदि परीक्षा करनेकी योग्यता न हो तो वह मुसीबतमें फस जाता है और परीक्षककी भी परीक्षा हो जाती है।

*

पेडोके एक सुन्दर झुरमुटमें सीताका रूप लेकर एक सुदर रमणी खडी थी। उसकी तिरछी आखें रवि किरणकी तरह धरती पर झुकी हुई थी। और उसके मुह पर मीठी मुसकान खेल रही थी।

लक्ष्मण अपने उग्र स्वभावके कारण पलभरके लिए भ्रममें पड गये, परन्तु निर्विकार और एकपत्नी-परायण राम कैसे भ्रममें पडते? उन्होने शातिसे विचार किया और वे वस्तुस्थितिको समझ गये 'महादेव-पत्नी उमाके सिवा ऐसा साहस करनेकी हिम्मत दूसरी किस शक्तिमें हो सकती है? परन्तु ।

उमा जैसी महासती विनाश करे और वह भी इस प्रकारका? साहस और विनाश दोनोंमें मर्यादा ही बाधा रहती है। उसी क्षण क्रोध प्रकट करनेके बदले मन मन मुसकाते हुए राम बोले

सौम्य मूर्ति, सदाशिव कहा है? आप अकेला यहा क्या भटक रही है सती? दशरथपुत्रकी मुसकान गायब हो गई। मुह बन्द हो गया। विनोद बहुत महगा पड गया। व लज्जित होकर वहासे चलती बनी और शिवजीके पास पहुची। शिवजीने पूछा 'बहुत देर लगी देवी! तुम कहा गई थी?'

'प्रभु रामके दर्शन करने' सकुचाते हुए उमा बोली।

'सीताका रूप लेकर ठीक है न?' कहते कहते शिवजीका चेहरा थोडा अधिक गभीर हो गया। कुछ क्षण व चुप रहे। उनके मनमें कितने ही विचार घूम गये।

जौं अब करउ सती सन प्रीती।
मिटइ भगति पथु होइ अनीती।।

उन्होने उमासे कहा तुम तो जानती हो हो कि राम मेरे पूज्य है म उनका पुजारी हू। वे मेरे नाथ है, म उनका दास हू। रूप बदल कर तुम सीता बनी यह लोगोकी दृष्टिमें भले ही मामूली बात हो परन्तु लोग जिनके सूक्ष्मसे सूक्ष्म आचरणका भी अनुकरण करते है उन मेरे और तुम्हारे जसे लोगोके लिए तो यह बहुत बडी बात है। आजसे म तुम्हारा पूजक रहूगा प्रणयी नही। तुम्हे म माताके स्थान पर रखूगा पत्नीके स्थान पर नही।'

नही नही एसा न कहिये। मेरी भूलका प्रायश्चित्त आप करेंगे? और वह भी इतना भारी?' सतीने कहा।

प्रणयसे पूजाका स्थान क्या छोटा है?

'शक्तिधरके लिए शक्ति पूजाके स्थान पर शोभा नही पाती, परन्तु प्रणयके स्थान पर ही शोभा पाती है।

यह कथन भले सत्य हो परन्तु पूजारहित प्रणय विकारका शिकार हो जाता है।

"परन्तु मुझे आपकी प्रणयिनी बन कर रहना है स्वामिनी बन कर नही।'

'ता महाशक्ति, तुम भी तपस्या करक पावन बना। तपके विना शक्ति पशुवलमें वदल जाती है।'

'वहुत अच्छा। परन्तु तपस्याका समय कितना होगा?"

'दूसरे जन्ममें मिलना।" कह कर शिवजी तपस्यामें लीन हो गये। उमा विचारामें डूब गइ। एक विचार उनके मनमें यह आया कि 'विनोदका फल ऐसा हानिकारक होता है। प्रत्येक क्रियामें विवेक होना चाहिये।' दूसरा विचार यह आया कि 'रामकी परीक्षा लेनेमें स्वय मेरी ही परीक्षा हो गइ। तीसरा विचार यह आया कि 'सन्ताका विनोदपूण वचन वज्रलेपके समान होता है, असत लाखो सौगध खायें तो भी उनका वचन वथा होता है।'

मेरे स्वामी सन्त ह। उनका वचन पूरा हा और जगतको इस उदाहरणसे पाठ सीखनको मिले, तो मेरे एक जन्मका बलिदान कोई बडा नहा कहा जायेगा। लेकिन प्रभुस पूछ तो दखू कि मेरी जीवन साधनामें कौनसा दोप रह गया है।'

सती 'दूसरे जन्ममें आपको पतिके रूपमें प्राप्त करनेमें अब कौनसे तत्त्व बाधक ह प्रभु?"

शकर 'स्वमानकी अतिशयता और मेरा स्थूल आकृतिकी ममता।"

शकरकी यह बात सतीके गले नही उतरी। इतनी भारी तपस्या और शिवगुणाका इतना चिन्तन होनके बाद भी ये दा दोप मुझमें रह गये ह, इस पर सतीको विश्वास नही हा रहा था। परन्तु गहरी पठी हुइ भूलें इतनी आसानीसे थोडे ही समझमें आती ह? वर्षोंका समय बीत गया। एक प्रसग आया। दक्षने महायज्ञ आरभ किया था। उसमें सबको आमत्रण मिला केवल दक्षके जामाताको नही मिला, और इसलिए दक्षपुत्रीको भी नहा मिला। सतीको इसका पता चला। वे शिवजीके पास आइ। बाली "देव, पिताके यहा एसा महत्त्वका अवसर उपस्थित हा, तब किस पुत्रीका मन पीहर जानेका न होगा?"

देवी यह परीक्षाका अवसर है। अपमानका कड़वा घूंट पी सको तो भले जाओ। लेकिन अपमानको सहना तुम्हारे लिए कठिन होगा। शिवजीने उत्तर दिया।

सतीसे रहा न गया। वे पीहर पहुंची। परन्तु गांवमें किसीने उनका भाव न पूछा। वे यज्ञभूमि पर गई। परन्तु न तो किसीने उनका स्वागत किया न किसीने उनसे बात की। सती क्रोधसे आग बबूला हो उठी। केवल उनकी माताका मन न माना। उन्होंने प्रमसे सतीका आलिंगन किया। सतीकी दूसरी बहनें तो आमंत्रण पाकर आई थी। माताके आलिंगनके बाद वे सतीसे मिली जरूर परन्तु उनका मजाक उड़ाते उड़ाते।

सतीको बड़ा दुःख हुआ। विचार आया अपने अपमानका कड़वा घूंट तो मैं गलेके नीचे उतार लूं परन्तु पतिका अपमान कैसे सहा जाय? कुछ देरमें वे स्वस्थ शान्त हुई। उन्होंने दृढ़ निश्चय किया और वहीं यज्ञज्वालामें कूद कर प्राण विसर्जन कर दिये।

*

तपस्यासे शान्त और पवित्र बनी हुई दक्षसुता जब हिमालय सुता बनी। उसे रूप मिला था गुण भी मिले थे। एक बार नारद मुनि पर्वतराज हिमालयके पास पहुंचे। कन्याको देखकर उन्हें अपार आनन्द हुआ। माता पिताके पूछनेसे नारदजीने कहा

जासु नाम सुमिरि ससारा।
पतिव्रत करहिं तिय असिधारा॥

(यह कन्या ऐसी निकलेगी) जिसका नाम याद करके स्त्रियां इस संसारमें एकपत्नि-व्रत धारण कर सकेंगी। इसे ऐसा पति मिलेगा, जिसे देखकर सब लोग डर जायें।

हिमालयको नारदजीकी बात सुन कर बड़ा दुःख हुआ। पार्वतीकी माता तो नारद मुनिका यह वचन सुनते ही मूर्च्छित हो गई। लेकिन पार्वतीने माता पितासे कहा आप दोनों दुःखी न हों। मेरे

पतिमें गुणाका सुदरता हागी, तो आकृतिकी कुरूपतासे कुछ बिगडनेवाला नही है।'

नारदजी हस पडे और उन्हान पावतीके पतिका नाम बता दिया। पावतीको पूवजन्मकी स्मृति ताजी हो गई। वह तपस्यामें लीन हो गई। शकर और पावतीकी कक्षा समान हो गई तथा दोनोकी आत्मायें विवाह-बन्धनमें बध गइ। पावतीका नाम परमेश्वरसे भी पहले रखा गया और द्वन्द्व समास बना पावतीपरमेश्वरौ।' लग्नके मगल मडपमें आज भी शकर-पावतीके गीत गाये जाते ह।

नारदजीका वचन सत्य सिद्ध हुआ। जो जिसका नित्य चिन्तन करता है वह उसे अवश्य प्राप्त करता है।

*

महाप्रभु शिव धवलगिरिकी शिला पर पद्मासन लगाकर ध्यान मग्न बठे थे। रात्रि बीत रही थी। चद्र किरण शिवजीके मुख पर नाच रही थी। भगवान चद्रमौलिकी प्रसन्न मुखमुद्राका दशन करती करती उमा मन्द गतिसे प्रभुके समीप आ रही थी। मन्द सुगधित पवन बह रहा था। वह माना पावतीका दूत बनकर आया था। शिवजीने आखोकी पलके खाली तो सामने पार्वती आती दिखाई दी। उमापतिके मुख पर मन्द हास्य थिरक रहा था। आज उमाको भगवान शिव और दिनाकी अपेक्षा अधिक प्रसन्न दिखाई दिये। उमाके मुखसे सहज निकल गया

"प्रभु आज आप कुछ अधिक शान्त और प्रसन्न दिखाई देते ह।'

कुछ क्षण आखें मूद कर मुसकराते हुए शकरने उत्तर दिया "आज मेरे प्रभुका अवतार दिन है।

थोडी देरके लिए उमा स्तब्ध बन गइ। देवाधिदेव महादेव, त्रिलोकके स्वामी किसे अपना प्रभु मानते होंगे? और यह अवतार-दिन क्या है?

इतने ही में उन्हे पूवजन्मका स्मरण हो आया। आहा ये प्रभु तो राम ह! सीताका रूप लेकर की हई रामकी परीक्षा, उसके फल-

स्वरूप हुई स्वयं अपनी अग्नि-परीक्षा तपका उत्कट साधना पुनर्जन्म —ये सब दृश्य एकके बाद एक पार्वतीके स्मृतिपट पर घूम गये।

उन्होंने पूछा — देव क्या आप रामकी बात कह रहे हैं?

हां वे ही मेरे महाप्रभु हैं। उनका रटन निरन्तर मेरे मनमें चला करता है। संसार-सागरके दीन-दुखियोंके नाथ पतितोंके तारन हार सीता वल्लभ रामकी छवि आज मेरे चित्तसे दूर नहीं होती। जिनके केवल नामकी महिमासे अनेक भक्त इस संसारमें अमर-पदको प्राप्त हुए करोडों लोग जिनके नाम-स्मरणसे अपने सब दुःख भूल कर अपार शान्ति अनुभव करते हैं उन घट घटमें रमनेवाले रामका स्मरण करके मेरा मन क्या पुलकित नहीं होगा?

प्रभु क्या आप मुझे भी इस रसका अनुभव नहीं करायेंगे? इस जन्ममें तो मैं आपको पूरी तरह समझ लूं। फिर आपमें और राममें भेद ही कहां है? इसलिए कृपा करके आप मुझे भगवान रामका चरित्र और उनका अवतार-कार्य विस्तारसे समझाइये।

जिनकी महिमाका गान करते हुए हृदय कभी थकता ही नहीं ऐसे रघुवंश शिरोमणि भगवान रामचन्द्रजीका अवतार-कार्य अत्यन्त भक्तिभावसे सुनने और समझनेकी इच्छा रखनेवाली पार्वतीजीको शंकर भगवानने विस्तारपूर्वक सारी बातें समझाई।

जिस चरित्रको सुनने और समझनेके लिए उमाने हिमालय-सुताका अवतार लिया उस अत्यन्त पवित्र और अपार शान्ति देनेवाले भगवान रामके अवतार-कार्यको समझनेके लिए हम भी अपने हृदयमें भक्तिभाव उत्पन्न करें।

२

रामजन्म

पृथ्वीकी वह कैसी करुण वेदना थी! भोगवादी और निरंकुश सत्तावादी भौतिक संस्कृति पृथ्वीको अपने पाशमें जकड रही थी। राक्षसोंकी संहार-लीला दिनोंदिन बढती जा रही थी। ऋषि-मुनि यज्ञ-यागादि जैसे पवित्र धार्मिक कार्य भी नहीं कर पाते थे। समस्त विश्वकी प्रजायें भयसे पीडित थी। तब अन्य प्राणियों और पशुओंको तो शान्ति मिल ही कैसे सकती थी? अभी राक्षस चढ आयेंगे, अभी आकर वे हमारा वध कर डालेंगे — इस प्रकार सारी सचराचर सृष्टि हिंसाके भयसे कांप रही थी।

जब जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब तब अधर्मका नाश करनेके लिए, साधुताकी प्रतिष्ठाके लिए, दुष्टताके विनाशके लिए और धर्मकी पुनःस्थापनाके लिए महान शक्तिशाली भगवत्-तत्त्व एक स्थान पर केंद्रित होता है और किसी विभूतिका जन्म होता है।"

भारतकी पवित्र भूमिमें जो विश्वकी महान संस्कृतिका धाम है क्या नहीं हो रहा है? ऐसे समय ब्राह्मण और क्षत्रिय, जो एक ही ज्योतिके भिन्न रूप हैं, भी एक-दूसरेके तेजको सहन नहीं कर सकते। ऋषियोंसे भी कर लिया जाये, वालि और सुग्रीव जैसे सहोदरोंके बीच शस्त्राघात हों तथा अपहरण जैसे अनाचार और अत्याचारसे स्त्रियोंका शील और सतीत्व सुरक्षित न रहे तो क्या इससे भी अधिक कडी कसौटी पर मानव-जातिको चढानेकी आवश्यकता रहती है? यही उसकी कडीसे कडी कसौटी नहीं मानी जायेगी?

भगवान शंकरका मन जन्म लेनेवाली उस परम विभूतिकी प्रार्थना करते करते अनायास बोल उठा, हे दीनानाथ! जरा इस बार भी देखिये

अभिनव रामायण

बाढ़ खल बहु चोर जुआरा।
जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

और जब

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी।
परम सभीत धरा अकुलानी॥
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही।
जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥

तब आपने यह नहीं कहा था कि आप कोसलपुरमें दशरथ-कौशल्याके घर प्रकट होंगे?

और जब चित्रकूटसे आगे जाते हुए हड्डियोंका ढेर देखकर अति दयार्द्र भावसे आपने पूछा और आपके प्रश्नके उत्तरमें आपसे कहा गया कि 'निसिचर निकर सकल मुनि खाये' तब क्या आपकी आंखोंमें आंसू नहीं आ गये थे?

और उसी क्षण क्या आपने हाथ ऊंचा उठा कर 'निसिचर हीन करउं महि' की प्रतिज्ञा नहीं की थी? इस प्रकार आपके दिये हुए आश्वासनकी प्रतीक्षा पृथ्वी अत्यन्त उत्सुकतासे कर रही है।

*

इतनेमें ही रामजन्मके समाचार प्राप्त हुए।

जैसी धरती वैसा धान्य। उस महासत्त्वने साकेतकी भूमि और सरयू नदीका तट पसन्द किया। राजाओंमें अत्यन्त पवित्र नीतिमान सूर्यवंशमें जन्म लेनेवाले महाराज दशरथका दरबार पसन्द किया। कुमति कपट अथवा कुचालसे सर्वथा अनभिज्ञ माता कौशल्याकी कोखको सुशोभित किया। उस परम विभूतिको मर्यादाकी रक्षाका उल्लंघन नहीं करना था इसलिए दिन भी वैसा चुना? नगरमें तो क्या वनमें भी ऋतुराज वसन्त मुक्त मनसे अपने यौवनके उल्लासका चारों ओर विस्तार कर रहा था। चैत्र मासकी (शुक्ल पक्ष) चांदनी थी। नवमीकी तिथि थी।

इसके उपरान्त भगवान अकेले नही परन्तु अपने चतुर्विध रूपमें पृथ्वी पर उतरे। अन्य तीन रूप थे लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न।

सारे राज्यमें रामजन्मका हर्ष और उल्लास छाया हुआ था। सारा नगर ध्वजा-पताकाओंसे शोभायमान हो रहा था। नगरके मार्ग अत्यन्त साफ-स्वच्छ और पानीके छिडकावसे आह्लादक बन गये थे। चौराहों पर और बाजारोंमें नगारे और शहनाई बज रही थी। आरण्यक और ऋषि मुनि रामजन्मके शुभ समाचार सुनते ही राजा दशरथको आशीर्वाद देनेके लिए अयोध्यामें आ पहुचे। रामजन्मसे सारे विश्वके घनीभूत अधकारमें मानो प्रकाशकी ज्योति फैल गई।

अश्वमेध यज्ञ और पुत्रेष्टि यज्ञसे परितृप्त हुए राजा दशरथके मनमें अनेक प्रकारकी आशायें जन्म लेने लगी। कौशल्याका दुलारा दशरथकी आखोका तारा और प्रजाका प्यारा राम सबको आनदित पुलकित और उल्लसित बनाने लगा।

ग्यारह दिन पूरे हुए। बारहवें दिन प्रातःकाल ही दशरथने गुरु वशिष्ठको पुत्रोकी नामकरण विधिके लिए बुलवाया। बालकोकी जन्म कुडलिया तयार करवाई। राजाने गुरु वशिष्ठसे पुत्रोकी नामकरण विधि करनेकी प्रार्थना की।

गुरु वशिष्ठ जन्म-कुडलिया देखते जाते थे और माता पिताको समझाते जाते थे। कौशल्याके पुत्रका नामकरण हुआ राम। क्योकि वह समस्त नगरजनो और तापसोको त्यागियो और रागियोको देखते ही आनन्दमग्न कर देता था। आनन्दमें रत करनेवाला और रत रहनेवाला ही हमारा राम है।

बिलकुल बचपनके जन्मजात सस्कारो और चेष्टाओको देखकर सुमित्राके ज्येष्ठ पुत्रकी दृष्टि वेधक मालूम होती थी। उसका लक्ष्य केंद्रित रह सकता था। ऐसे परम लक्ष्यमूर्तिका नाम गुरुने लक्ष्मण रखा।

कैकेयीका पुत्र भी वैसा ही प्रभावशाली था। गुरु वशिष्ठको लगा कि वह प्रजाका पालन-पोषण अत्यन्त विवेकपूर्वक करेगा। सुख और दुःखके चढाव उतारमें स्थितप्रज्ञ रहेगा। इसलिए उसका नाम गुरुने भरत रखा।

सुमित्राके ज्येष्ठ पुत्रका नाम लक्ष्मण घोषित हो चुका था। परन्तु उसके दूसरे पुत्रका नामकरण अभी बाकी था। वह गुरुको अत्यन्त पराक्रमी लगा। न्यायके शत्रुओंका संहार करनेवाले और विघ्नोंमें अडिग रहनेवाले इस दूसरे पुत्रका नाम वसिष्ठजीने शत्रुघ्न रखा।

चारों राजपुत्रोंके सारे संस्कार गुरु वसिष्ठके सान्निध्यमें ही सम्पन्न होते थे। उनका उपनयन-संस्कार भी हो गया। चारों भ्राता गुरु वसिष्ठके आश्रममें विद्याभ्यास करने लगे।

३

ऋषि-याचना

ऋषि विश्वामित्रने दीक्षा लेकर यज्ञका आरंभ किया। परन्तु ज्यों ही यज्ञका कार्य आरम्भ होता त्यों ही राक्षस लोग उसमें कोई न कोई विघ्न खड़ा कर देते थे। कभी वे रक्त और मांसकी वर्षा करके यज्ञभूमिको अपवित्र बना देते थे तो कभी यज्ञकी सामग्री उठा कर ले जाते थे। विश्वामित्र बहुत चिढ़ जाते लेकिन कुछ कर नहीं पाते थे। क्योंकि वे यज्ञकी दीक्षा लिये हुए थे। ऐसी अवस्थामें किसीको शाप तो दिया ही नहीं जा सकता था। कारण यदि शाप देते तो उससे क्रोध उत्पन्न होता। क्रोधसे संमोह होता और संमोह स्मृतिभ्रमका कारण बन जाता। और स्मृतिभ्रमका अर्थ होता बुद्धिनाश — सर्वनाश।

यज्ञकार्यमें आनेवाली इन विघ्न-बाधाओंसे बचनेका एक ही मार्ग था। तुरन्त विश्वामित्रको यह विचार सूझा कि यज्ञकी रक्षा करनेवाले वीर और विवेकशील ब्रह्मचारियोंकी खोज की जाय। अयोध्याके रघुवंशी राजा दशरथ वचनका पालन करनेवाले और नीतिवान हैं। और, उनके पुत्र अत्यन्त पराक्रमी हैं, पराक्रमी होनेके साथ वे ज्ञानी भी हैं। इस यज्ञकी रक्षाके लिए उनके पुत्र मिल जायें तो ही यह यज्ञ पूरा हो सकेगा।

विश्वामित्र राजा दशरथके दरबारमें पहुचे। राजाने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया और कुशल-क्षेम पूछा तथा आगमनका हेतु बतानेकी ऋषिसे प्रार्थना की।

विश्वामित्र बोले "राजन मैंने दीक्षा लेकर यज्ञका आरभ किया है। परन्तु मारीच और सुबाहु नामक राक्षस जो इच्छित रूप धारण करनेकी शक्ति रखते है, यज्ञमें विघ्न डालते है और यज्ञकी समाप्ति नही होने देते। मै निरुत्साह होकर तुम्हारे पास आया हू। तुम मेरा काम करोगे?

राजाने कहा गुरुश्रेष्ठ आप यह क्या कहते है? यह तो हमारे रघुकुलकी परम्परासे चली आई रीति है। इक्ष्वाकुके वशजोने कभी किसीको निराश नही किया है। आप बिना किसी सकोचके आज्ञा कीजिये।

"तो सुनो। मै तुम्हारे दो पुत्र राम और लक्ष्मणको मेरे साथ ले जानेके लिए यहा आया हू। दोनोको तयार करके मेरे साथ भेज दो।

विश्वामित्रकी यह माग सुनते ही राजा दशरथ स्तब्ध हो गये। लेकिन कुछ ही क्षणमें स्वस्थ और शान्त हो कर कहने लगे

'ऋषिराज मै स्वय आपकी सेवामें चलनेका इसी समय तयार हू। अयोध्याकी वीर शक्तिशाली सेना आपकी सेवाके लिए तत्पर है। केवल रामको, मेरी आखोंके तारे, मेरे प्राण रामको मै अपनेसे अलग करनेमें असमर्थ हू।" इतना बोलते बोलते राजा दशरथका कठ रुध गया आखें छलछला आई। कुछ देर बाद आसू पोछ कर राजा आगे कहने लगे "मै जानता हू कि दानवोका त्रास पृथ्वी पर बहुत बढ गया है। राक्षसोकी स्त्रियोने भी हाहाकार मचा दिया है। दैवी और मानवी शक्तिया जहा तहा अपमानित हो रही है। परन्तु इन सबके सामने राम किस गिनतीमें है? और उसकी आयु भी अभी कितनी है? अभी तो उसके दूधके दात भी नही गिरे है। मुनिवर आप अपना यह वचन लौटा लेनेकी दया कीजिये। राम और लक्ष्मणको छोड कर आप जो भी कहे मै आपकी सेवामें प्रस्तुत कर दूगा। कहते कहते राजा दशरथ विश्वामित्रके चरणोंमें मस्तक रख कर लोट गये।

नम्रता क्षत्रियका भूषण है। परन्तु दशरथ भावुकतासे बन होना क्षत्रियका बडेसे बडा शाप है। तुम्हारे जैसे त्यागियोंके लिये बात सुननेकी या इस तरह विह्वल होनेकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। यह सुनते ही राजर्षि विश्वामित्र पुण्य प्रकोपसे कांप उठे। थोडी देरके लिए वातावरण क्षुब्ध हो गया। समयको पहचानकर वशिष्ठ ऋषिने बीचमें पडकर कहा

रामपिता स्वस्थ हो जाओ। तुम तो अब वानप्रस्थ आश्रमके योग्य हो। राजर्षि विश्वामित्रको आज ब्रह्मचर्याश्रमी वीरोंकी जरूरत पडी है। उन्हें सेनाकी आवश्यकता नहीं है। उन्हें तो सेनारहित सात्त्विक पवित्र आवश्यकता है। केवल सिपाही भी उनका काम नहीं चलेगा। उन्हें तो सिपाही रक्षक चाहिये। ये राजर्षि केवल राक्षसोंका संहार ही नहीं चाहते ये तो दानव रत्नाकरमेंसे मानवतारूप रत्न ढूंढ निकालनेका मनोरथ रखते हैं। और राम रामकी आयुकी ओर तुम मत देखो दशरथ। अमनेक समझ नहीं होने। उसका छोटासा झरना भी वेग होता है। सात्त्विकताकी आयु अथवा संख्याके सामने नहीं देखा जाता।

इतना कहकर वशिष्ठजी राजर्षि विश्वामित्रके मुखकी तरफ देखने लगे। राजर्षिका रजोगुणकी रंग मिट गई थी। विश्वामित्र वशिष्ठके सात्त्विक भावोंके सामने पराजित हो चुके थे ऐसा कहनेकी अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि रजोगुणके सर्वोत्तम अंश पर सात्त्विकताका रंग चढ गया था। विश्वामित्रने कहा राजगुरु मैं आपको प्रणाम करता हूं। मेरे हृदयको आपने पढ लिया है और साथ ही धर्मसूनाका निष्कर्ष भी निकाल कर रख दिया है। धन्य हैं आप।

नहीं नहीं उत्तम धन्यवादके पात्र तो आप हैं। मैंने केवल दशरथ जैसे राजाओंको प्रेरित किया है जब कि आप तो राम जैसे प्रजा हृदयके नेताको प्रेरित करनेका सामर्थ्य रखते हैं। सात्त्विकता मीठी तो होती है परन्तु जब तक वह रजोगुणकी कसौटी पर न चढी हो तब तक यह निश्चित करना कठिन है कि उस मिठासके पीछे विष छिपा है या अमृत। छोटे क्षेत्रमें घूमनेवाले हमारे जैसे ब्रह्मर्षियोंकी अपेक्षा आपके जैसे विशाल क्षेत्रमें विहरनेवाले राजर्षियोंकी बाहरी दृष्टिसे दिखाई देने

वाली छाटी छोटी क्षतियाको लोग दखा कर ता उसमें प्रजाका कल्याण नही है। वस आप भले मेरी प्रशसा करें और अपनी छोटीसी त्रुटिका भी पहाड़के जसी मानें। यह नम्रता ही आपको शोभा देती है।"

दोनोके मस्तक झुक गये हृदय भीग गये। वातावरण सुगधित बन गया। दशरथ जाग्रत हो गये। आत्म निरीक्षण करनेवाले व्यक्ति किस सहृदयको हिला नही दते ? दशरथ बाल उठे मुझस भूल हुई राजर्षि ! क्षमा करिये गुरुदेव ! आपके इस उपकारका किन शब्दोंमें वणन करू ? प्रभु प्रमादीके रूपमें प्राप्त हुए रामको मने आन्तर-दृष्टिस नहा देखा। राम भले मेरा पुत्र हो, परन्तु उस पर मेरी अपेक्षा समाजका ही मुख्य अधिकार है। आप तो समाजके रक्षक और मार्गदर्शक ह। इसलिए आपका अधिकार सबस ऊचा है । अहा ससारका विषचक्र कसा जटिल है ! जो मनुष्य इसमें जरा भी मोहमें पडा वह गिरा। गुरुके बिना स्वय जागनेवाले इस ससारमें कितने मनुष्य ह ? म समझा, अपने कर्तव्यको अच्छी तरह समझ गया।"

इतनेमें राम और लक्ष्मण दोनो वहा आ पहुच। दोनोको आशीर्वाद दते हुए पिता दशरथने कहा जाओ बेटा राजर्षिके साथ जाओ। इनके वचनो पर श्रद्धा रखना और इनके बताये मार्गका अनुसरण करना। म तो इस बातको भूल गया था परन्तु तुम कभी न भूलना। पुत्रो वचन ही मानव-कुलकी बडीसे बडी सम्पत्ति है। प्राण जाय वरु वचन न जाई।

४

यज्ञकी रक्षा

आगे आगे ऋषि विश्वामित्र चलते थे और उनके पीछे राम लक्ष्मण दोनों भाई चल रहे थे। विश्वामित्र दोनोंको विपुल वनश्रीकी पहचान कराते जाते थे साथ ही उन्हें कुछ मन्त्रविद्यायें भी सिखाते जाते थे। सर्वप्रथम ऋषिने उन्हें बला और अतिबला नामके मंत्र सिखाये जो सर्वत्र विजय दिलानेवाले थे।

चलते चलते मार्गमें गंगा मैया आई। नावमें बैठकर तीनोंने गंगा पार की। थोड़ी दूर जाने पर गंगा और सरयूका संगम दिखाई दिया। स्वर्गसे गंगाको पृथ्वी पर उतारनेवाले राजा भगीरथकी और सगर-पुत्रोंकी कथा ऋषिने राजपुत्रोंको सुनायी। सरयू नदीका परिचय दिया। सरयू हिमालयके मानस सरोवरमें से निकलकर यहां गंगासे मिलती है यह बताया और संगमके अत्यन्त रमणीय और पवित्र स्थान पर तीनोंने स्नानविधि पूर्ण की।

वहांसे उन्होंने ताटक वनमें प्रवेश किया। ताटक वनका नाम सुनते ही लक्ष्मण बोल उठे : गुरुदेव इस वनको सब ताटक वन क्यों कहते हैं?

इस वनमें ताडका (ताटका) नामकी महामायाविनी राक्षसी रहती है। यह मूलमें स्वर्गकी अप्सरा थी परन्तु शापके कारण उसकी यह स्थिति हो गई है। विश्वामित्रने यह बात आरंभ ही की थी कि इतनेमें एकाएक धूलकी आंधी आई। इस आंधीसे सबकी आंखें मिच गईं। ऋषिने कहा : पुत्रो सावधान हो जाओ। यहां ताडका आती लगती है। उसका वेग इतना प्रबल है कि जब जहां वह जाती है वहां धूलकी आंधी उड़ती फिरती है।

राम-लक्ष्मणने धनुषका टंकार किया। परन्तु एक स्त्रीका इस प्रकार वध करना उन्हें उचित नहीं लगा। इतनेमें तो ताड़काने अपना ताण्डव आरंभ कर दिया। उसने पत्थरोंकी वर्षा शुरू कर दी।

विश्वामित्र अधिक समय तक इसे सहन नहा कर सके। उन्होंने रामको आज्ञा दी कि तुम्हे ताडकाका वध करना है। चलाओ तीर! और रामके धनुपसे सर्रररर करता तीर छूटा। तीरने ताडकाके प्राण तो हर लिये परन्तु उसे मोक्षकी गति प्राप्त हुई। उसका शाप छूट गया और वह पुन अप्सराका रूप धारण करके आकाश मार्गसे स्वर्गको चली गई।

अब वे विश्वामित्रके सिद्धाश्रमकी सीमामें पहुच गये थे। आश्रम वासियोने दोना राजकुमाराका हार्दिक स्वागत किया।

दूसरे दिनसे यज्ञका आरभ हुआ। विश्वामित्रने राजकुमाराको सारी सूचनायें दे दी और यह भी कह दिया कि यज्ञ चलेगा तब तक मेरा मौन ही रहेगा, मै यज्ञकार्यमें लगा रहूगा, इसलिए बीचमें तुम्हारी कोई सहायता नही कर सकूगा।

रामने ऋषिको निर्भय करनेके लिए कहा 'गुरुदेव, आप निश्चित हो जायें। सत्यकी शक्तिके सामने दूसरी कोई शक्ति भला टिक सकी है? आप समाजके कल्याणके लिए यज्ञ करते है, इसलिए समाजमें बसा हुआ सत्यरूपी देव क्या हमारी सहायताको नही आयेगा?'

यज्ञ आरभ होते ही राक्षसाने अपनी मूल प्रवृत्ति शुरू की। राम लक्ष्मण समझ गये। दोना शस्त्रासे सज्ज होकर सावधानीसे यज्ञभूमिका पहरा देने लगे। इतनेमें ही आकाशमें भयकर गडगडाहट सुनाई देने लगी और प्रचण्ड आधी चढ आई। सारा आकाश मानो काले घने अधकारमें घिर गया। देखते ही देखते रक्तकी वर्षा शुरू हो गई। रामने धनुष पर बाण चढाया और इस मायावी जालको काट दिया। मायावी सेनापति मारीच सौ योजन दूर जा गिरा। उसी दिन यज्ञकी पूर्णाहुति हुई। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। इससे विश्वामित्रको अपार आनन्द हुआ और उन्होंने दोना राजकुमाराको हृदयसे आशीर्वाद दिये।

बात बातमें विश्वामित्रजीने उस शिव धनुषकी बात कह सुनाई, जो परशुरामने राजा जनकको दिया था। ऋषिने उस धनुषके पराक्रमके अनेक वर्णन राजकुमारोको सुनाये। इससे राम-लक्ष्मण आश्चर्य-चकित हो गये। आज तक ऐसे किसी धनुषके बारेमें उन्होंने सुना

परन्तु वे उठ न सके। शुरूमें तो मनुष्यके हाथमें अपनी लगाम होती है लेकिन बादमें एक क्षण उसके जीवनमें आते हैं जब लगाम उसके हाथसे छूट जाती है वह नीचे गिर जाता है और फिर चाहने पर भी वह उठ नहीं पाता। जड़ मनुष्यका विवेक अविवेकमें जाना जब कठिन होता है उसी प्रकार एक बार अविवेकके मार्ग पर लग जानेवाले उनका विवेक मार्ग पर चलना भी कठिन होता है।

*

विश्वामित्र ऋषिके पीछे पीछे दोनों राजकुमार आश्रममें चले जा रहे थे। रास्ते पर ही पत्थर जैसी कोई चीज पड़ी हुई थी। उसे रामके चरणकी ठोकर लगी तुरन्त ऋषिपत्नी अहल्या खड़ी हो गई।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥

थोड़ी देर तो राम आश्चर्यचकित होकर अहल्याके सामने ताकते ही रहे। ऋषि विश्वामित्रने सारा पूर्व इतिहास राजपुत्रोंको कह सुनाया। विश्वने भले ही अहल्याके इस उद्धारको चमत्कार माना परन्तु राम भारी मनोमन्थनमें पड़ गये। मुनिके वचन सत्य सिद्ध हुए इससे मुनि पत्नीको महासुखका अनुभव हुआ। पापका प्रक्षालन उत्साहका संचार और पतिका पुण्य-स्मरण—इन सबके फलस्वरूप उत्पन्न हुए उल्लास और आनन्दसे अहल्या गद्गद होकर रामके चरणोंमें लोट गई। आभार और स्नेहके आँसुओंसे अहल्याने रामके चरणोंको धो डाला।

राम बोले गुरुपत्नी आपके चरणोंमें हम क्षत्रियोंके मस्तक ही शोभा देते हैं।

सत्त्वगुण ही गुरु-स्थान पर हो सकता है कोई वर्ण अथवा वर्ग गुरु-स्थान पर नहीं हो सकता अहल्याने उत्तर दिया।

विश्वामित्रने संवादका अन्त करते हुए कहा मुनिपत्नीका कथन सत्य है। स्त्री-सम्मानके प्रखर समर्थक और दूसरोंके दोषोंकी अपेक्षा दूसरोंके गुणों पर अधिक दृष्टि रखनेवाले रामचन्द्र आपको चरण-स्पर्श

विश्वामित्र अधिक समय तक इसे सहन नही कर सके। उन्होने रामको आज्ञा दी कि तुम्हे ताडकाका वध करना है। चलाओ तीर! और रामके धनुषसे सरररर करता तीर छूटा। तीरने ताडकाके प्राण तो हर लिये परन्तु उसे मोक्षकी गति प्राप्त हुई। उसका शाप छूट गया और वह पुन अप्सराका रूप धारण करके आकाश मार्गसे स्वर्गको चली गइ।

अब वे विश्वामित्रके सिद्धाश्रमकी सीमामें पहुच गये थे। आश्रम वासियोने दोनो राजकुमारोका हार्दिक स्वागत किया।

दूसरे दिनसे यज्ञका आरभ हुआ। विश्वामित्रने राजकुमारोको सारी सूचनायें दे दी और यह भी कह दिया कि यज्ञ चलेगा तब तक मेरा मौन ही रहेगा मै यज्ञकार्यमें लगा रहूगा, इसलिए बीचमें तुम्हारी कोई सहायता नही कर सकूगा।

रामने ऋषिको निर्भय करनेके लिए कहा ' गुरुदेव आप निश्चिन्त हो जायें। सत्यकी शक्तिके सामने दूसरी कोइ शक्ति भला टिक सकी है? आप समाजके कल्याणके लिए यज्ञ करते है इसलिए समाजमें बसा हुआ सत्यरूपी देव क्या हमारी सहायताको नही आयगा?

यज्ञ आरभ होते ही राक्षसोने अपनी क्रूर प्रवृत्ति शुरू की। राम लक्ष्मण समझ गये। दोनो शस्त्रोसे सज्ज होकर सावधानीसे यज्ञभूमिका पहरा देने लगे। इतनेमें ही आकाशमें भयकर गडगडाहट सुनाइ देने लगी और प्रचण्ड आधी चढ आई। सारा आकाश मानो काले घने अधकारमें घिर गया। देखते ही देखते रक्तकी वर्षा शुरू हो गई। रामने धनुष पर बाण चढाया और इस मायावी जालको काट दिया। मायावी सेनापति मारीच सौ योजन दूर जा गिरा। उसी दिन यज्ञकी पूर्णाहुति हुइ। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। इससे विश्वामित्रको अपार आनन्द हुआ और उन्होने दोनो राजकुमारोको हृदयसे आशीर्वाद दिये।

बात बातमें विश्वामित्रजीने उस शिव धनुषकी बात कह सुनाई जो परशुरामने राजा जनकको दिया था। ऋषिने उस धनुषके पराक्रमके अनेक वर्णन राजकुमारोको सुनाये। इससे राम-लक्ष्मण आश्चर्य-चकित हो गये। आज तक ऐसे किसी धनुषके बारेमें उन्होने सुना

परन्तु वे उठ न सकीं। शुरूमें तो मनुष्यके हाथमें अपनी लगाम होता है लेकिन बादमें एक क्षण उसके जीवनमें आता है जब लगाम उसके हाथसे छूट जाती है वह नीचे गिर जाता है और फिर चाहने पर भी वह उठ नहीं पाता। अच्छे मनुष्योंका विवेकसे अविवेकमें जाना जैसे कठिन होता है उसी प्रकार एक बार अविवेकके मार्ग पर लग जानेके बाद उनका विवेकके मार्ग पर लौटना भी कठिन होता है।

*

विश्वामित्र ऋषिके पीछे पीछे दोनों राजकुमार आश्रममें चले जा रहे थे। रास्ते पर ही पत्थर जैसी कोई चीज पड़ी हुई थी। उसे रामके चरणकी ठोकर लगी तुरन्त ऋषिपत्नी अहल्या खड़ी हो गई।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥

थोड़ी देर तो राम आश्चर्यचकित होकर अहल्याके सामने ताकते ही रहे। ऋषि विश्वामित्रने सारा पूर्व इतिहास राजपुत्रोंको कह सुनाया। विश्वने भले ही अहल्याके इस उद्धारको चमत्कार माना परन्तु राम भारी मनोमन्थनमें पड़ गये। मुनिके वचन सत्य सिद्ध हुए इससे मुनिपत्नीको महासुखका अनुभव हुआ। पापका प्रक्षालन उत्साहका संचार और पतिका पुण्य-स्मरण — इन सबके फलस्वरूप उत्पन्न हुए उल्लास और आनन्दसे अहल्या गद्गद होकर रामके चरणोंमें लोट गई। आभार और स्नेहके आँसुओंसे अहल्याने रामके चरणोंको धो डाला।

राम बोले, 'गुरुपत्नी आपके चरणोंमें हम क्षत्रियोंके मस्तक ही शोभा देते हैं।

सत्वगुण ही गुरु-स्थान पर हो सकता है कोई वर्ण अथवा वर्ग गुरु-स्थान पर नहीं हो सकता' अहल्याने उत्तर दिया।

विश्वामित्रने संवादका अन्त करते हुए कहा, 'मुनिपत्नीका कथन सत्य है। स्त्री-सम्मानके प्रखर समर्थक और दूसरोंके दोषोंकी अपेक्षा दूसरोंके गुणों पर अधिक दृष्टि रखनेवाले रामचन्द्र, आपका चरण-स्पर्श

ऐसे अनेक लोगोंको तारनेमें समर्थ है। इस दृष्टिसे आप जिनके उद्धारक हैं, प्रभु हैं उनके सिर आपके चरणोंमें हों, इसमें कुछ अनुचित नहीं है।"

अहल्या अपने आश्रममें गई और विश्वामित्र तथा राम-लक्ष्मणने आगे प्रस्थान किया।

६

सीता-स्वयंवर

"जाओ बाग उद्यानका सौन्दर्य देख आओ। समय पर लौट आना, देर मत लगाना।" माताका वात्सल्य बरसाते हुए ऋषिराजने दोनों कुमारोंको विदा दी और बहुत दूर न निकल गये तब तक दोनोंको एकटक देखते रहे।

*

'सखियो, मैं आई तो हूं पार्वती माताके पास वरदान मांगने, परन्तु हृदयमें कुछ अगम्य संवेदन हुआ करता है। शील और पवित्रताकी रक्षा करनेका शक्तिके सिवा देवीसे और क्या मांगा जा सकता है?" सीताने कहा।

सीताने इस मनोमंथनका उत्तर देनेके बजाय एक सखी बोल उठी 'हम तो 'सुन्दर वर देना' ऐसा वरदान भी मांग लें देवीसे! देवीसे छिपानेकी कौनसी बात हो सकती है?"

अरी, जनक महाराजकी प्रतिज्ञाका क्या होगा?" दूसरी बोली।

"वीरता और सुन्दरता दोनोंका मेल कम हो सकता है?" तीसरी सखीने प्रश्न किया।

सीताने हृदय खोला "मुझे तो सात्त्विकता, वीरता और सुन्दरता तीनोंका संगम चाहिये।'

उसी क्षण उद्यानके पुष्पकुंजोंमें से राम-लक्ष्मणकी जोड़ी सामनेसे आता दिखाई दी। राम और सीताके नेत्र क्षणभरके लिए आपसमें मिले और दोनोंके हृदयोंमें एक-दूसरेकी छवि अंकित हो गई।

भेंट सौगात रखी। मानो हाथसे आग छू गई हो, इस तरह चौंककर दूतान क्या किया यह रामायणकारके शब्दोंमें ही देखिये

कहि अनीति ते मूर्दहिं काना।
धरमु विचारि सबहिं सुखु माना॥

दूतान कहा अरर यह अनीति होगी! धर्मनिष्ठ महाराज आप हमें क्षमा करें। यह भेंट हम स्वीकार नहीं कर सकते। मिथिला हमें भरण-पोषणके लिए पर्याप्त देती है। हमने हृदय राज रामकी आपकी या अयोध्याकी नहीं परन्तु हमारे कर्तव्यकी सेवा की है। कर्तव्यका बदला पैसेसे नहीं परन्तु कर्तव्यसे चुकाया जाना चाहिये तभी समाजकी नीति टिक सकती है। पदार्थका विनिमय पदार्थसे हो सकता है परन्तु धर्मका विनिमय पदार्थसे नहीं हो सकता। आज इस आनन्दके अवसर पर आपको खुश करनेके लिए हम भेंट-सौगात ले लें तो कल हम इसका मोह लग जाय। परसों जिससे पैसा मिले उसीकी हम प्रशंसा करने लगें। और चौथे दिन जो न दे उसका हम निन्दा करने लगें। सेवक न रहकर लुटेरे बन जायें। लुटेरोंसे निरे गुंडे बन जाय। और दूतसे दैत्य बन जायें। आप तो चतुर हैं बुद्धिमान हैं। हमें विश्वास है कि हमारे इस व्यवहारको आप हमारी उद्धतता समझकर अपना अपमान तो स्वप्नमें भी नहीं मानेंगे।

मिथिलाके दूतोंके इन शब्दोंने समस्त अन्तःपुर सहित सबको अधिक आनन्दित कर दिया। धर्मके और नये सम्बन्धके दोहरे सुखको जन्म दिया। सारी अयोध्यामें रामके विवाह सम्बन्धके सुखद समाचारके साथ मिथिलाके राजदूतोंकी उच्च नीतिमत्ताकी मीठी सुगंध फैल गई।

ऐसे अनेक लोगोंको तारनेमें समर्थ है। इस दृष्टिसे आप जिनके उद्धारक हैं प्रभु हैं उनके सिर आपके चरणोंमें हों, इसमें कुछ अनुचित नहीं है।"

अहल्या अपने आश्रममें गई और विश्वामित्र तथा राम-लक्ष्मणने आगे प्रस्थान किया।

६

सीता-स्वयवर

'जाओ वीरो, उद्यानका सौन्दर्य देख आओ। समय पर लौट आना देर मत लगाना।' माताका वात्सल्य बरसाते हुए ऋषिराजने दोनों कुमारोंको बिदा दी और बहुत दूर न निकल गये तब तक दोनोंको एकटक देखते रहे।

*

"सखियो, मैं आई तो हूँ पार्वती माताके पास वरदान मांगने, परन्तु हृदयमें कुछ अगम्य मंथन हुआ करता है। शील और पवित्रताकी रक्षा करनेकी शक्तिके सिवा देवीसे और क्या मांगा जा सकता है?" सीताने कहा।

सीताके इस मनोमंथनका उत्तर देनेके बजाय एक सखी बोल उठी 'हम तो 'सुन्दर वर दो' ऐसा वरदान भी मांग लें देवीसे। देवीसे छिपानेकी कौनसी बात हो सकती है?

'अरी जाने दे महाराजकी प्रतिज्ञाका क्या होगा?' दूसरी बोली।

"वीरता और सुन्दरता दोनोंका मेल कम हो सकता है?" तीसरी सखीने प्रश्न किया।

सीताने हृदय खोला 'मुझे तो सात्त्विकता, वीरता और सुंदरता तीनोंका संगम चाहिये।'

उसी क्षण उद्यानके पुष्पकुंजोंमें से राम-लक्ष्मणकी जोड़ी सामनेसे आती दिखाई दी। राम और सीताके नेत्र क्षणभरके लिए आपसमें मिले और दोनोंके हृदयोंमें एक-दूसरेकी छवि अंकित हो गई।

भेंट-सौगात रखी। मानो हाथसे आग छू गई हो इस तरह चौंककर दूतोंने क्या किया यह रामायणकारके शब्दोंमें ही देखिये

कहहि अनीति ते मूदहिं काना।
धरमु बिचारि सबहिं सुखु माना॥

दूतोंने कहा — अरर यह अनीति होगी! धर्मिष्ठ महाराज आप हमें क्षमा करें। यह भेंट हम स्वीकार नहीं कर सकते। मिथिला हमें भरण-पोषणके लिए पर्याप्त देती है। हमने हृदयसे राजा रामकी आपकी या अयोध्याकी नहीं परन्तु हमारे कर्तव्यकी सेवा की है। कर्तव्यका बदला पैसे नहीं परन्तु कर्तव्यसे चुकाया जाना चाहिये तभी समाजकी नीति टिक सकती है। पैसेका विनिमय पैसेसे हो सकता है परन्तु धर्मका विनिमय पैसेसे नहीं हो सकता। आज इस आनन्दके अवसर पर आपको खुश करनेके लिए हम भेंट-सौगात लें तो कल हमें इसका मोह लग जाय। पैसा जिससे मिले उसीकी हम प्रशंसा करने लगें। और जो पैसा न दे उसकी हम निन्दा करने लगें। सेवक न रहकर लुटेरे बन जायें। लुटेरोंसे निरे गुंडे बन जायें। और गुंडोंसे दैत्य बन जायें। आप तो चतुर हैं बुद्धिमान हैं। हमें विश्वास है कि हमारे इस व्यवहारको आप हमारी उद्धतता समझकर अपना अपमान तो स्वप्नमें भी नहीं मानेंगे।

मिथिलाके दूतोंके इन शब्दोंने समस्त अंतःपुर सहित सबको अधिक आनंदित कर दिया। धर्मके और नये सम्बन्धके दोहरे सुखको जन्म दिया। सारी अयोध्यामें रामके विवाह-सम्बन्धके सुखद समाचारोंके साथ मिथिलाके राजदूतोंकी उच्च नीतिमत्ताकी मीठी सुगंध फैल गई।

८

राज्यका उत्तराधिकारी

'अहा यह क्या? मृत्युका दूत आ पहुंचा! और मैं?' शीशेमें देखकर बाल संवारते हुए राजा दशरथको सिरके सफेद बाल दिखाई दिये और तुरन्त ही उनके मुंहसे ऊपरके शब्द निकल पड़े। कुछ ही क्षणामें उनके मस्तिष्कमें अनेक विचार घूम गये— 'कैकेयी तुम्हें छोड़कर कहीं भी जानेका मन नहीं होता। अब संन्यास लूं तो वह शोभा भी क्या देगा? और वनमें जाकर भी भला क्या करना है? चार चार पुत्र और पुत्रवधुओंकी जोड़ियां आंखोंको कैसी शांति और संतोष देती हैं! परन्तु मेरे रामको राजगद्दी पर बैठाकर अपना प्रजाकीय कर्तव्य तो मैं पूरा कर ही दूं।' अंतिम विचारने बड़ा तेजीसे राजाके मन पर अधिकार जमा लिया। जैसे बने वैसे यह काम तुरन्त पूरा कर डालनेके लिए दशरथ अधीर हो उठे। अब इस विचार पर गुरु वशिष्ठकी स्वीकृतिकी मुहर लगनी ही बाकी थी।

उस जमानेमें व्यक्तिगत बातोंमें भी निःस्पृही गुरुकी प्रेरणा और आशीर्वादकी आशा रखी जाती थी। सामाजिक और राजनीतिक विषयोंमें तो अचूक रूपमें उनकी प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त किये जाते थे। साकेतकी प्रजाको राम जैसे राजा मिलें, तो उसमें वशिष्ठ गुरु आनाकानी क्या करते? उन्होंने अपनी स्वीकृति ही नहीं दी, दशरथको इसके लिए धन्यवाद भी दिया और थोड़ा भी विलम्ब किये बिना यह काम पूरा करनेकी सलाह दी। दशरथकी आन्तरिक इच्छाको इससे बड़ा प्रोत्साहन मिला। उनका आनन्द अब हृदयमें समाता नहीं था।

परन्तु कुदरतकी गति अगाध है। उसका रहस्य बड़ा गहन है। कोई सर्वथा निर्लेप व्यक्ति ही उस रहस्यको समझ सकता है। किसी वस्तु या व्यक्तिके प्रति रहे प्रेममें जरासी भी राग अथवा मोहकी गंध पैठी कि उसकी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रहती। जिस मनुष्यको जल्दी उतावली हो उस पर कुदरतकी प्रतिक्रिया जल्दी होती है। जिस कैकेयीके

राम सिर झुकाकर खड़े रहे। इस मौनको रामकी स्वीकृति मानकर गुरुने समझा कि मेरा धर्मकार्य पूरा हुआ और वे रामसे विदा होकर दूसरे कार्यमें लग गये।

९

मन्थराका षड्यन्त्र

"आपके चारों ओर आग लगी हुई है और आप सोई हैं! खाना सोना और राजाका दासत्व करना — इसके सिवा और भी कुछ आपको आता है?" मन्थराने कैकेयीसे कहा। मन्थरा थी तो दासी ही परन्तु कैकेयीको मन्थरा दासी पर बड़ा प्रेम था। प्रेमको न पचा सकने वाले व्यक्ति पर केवल प्रेम ही उड़ेला जाय और विवेकपूर्ण सावधानी न रखी जाय तो प्रेममें मलिनता आनेकी और प्रेमपात्रके उद्धत बन जानेकी संभावना अवश्य रहती है। मन्थराके उपरोक्त शब्दोंमें निरी उद्धतता थी लेकिन कैकेयीको तो इन शब्दोंमें आत्मीयता ही मालूम हुई।

"बात पगली! तू क्या कहना चाहती है? जरा साफ साफ कह दे न।" कैकेयीके ये शब्द सुनकर मन्थराको लगा कि इस समय अपना जादू फैलानेका पूरा मौका है। वह आँखें मल मलकर ऐसा ढोंग करने लगी मानो रो रही हो। कैकेयीने उसके सिर पर हाथ फेर कर उसे अपनी गोदमें ले लिया। "लक्ष्मणने तो तेरी मरम्मत नहीं की न?" कहकर थोड़ी देर तो कैकेयी मन्थराके साथ मजाक करती रही परन्तु जब उसने देखा कि मन्थरा सिसकती ही रही तो रानीने गंभीरतापूर्वक उसके रोनेका कारण पूछा और उसके मनकी बात सुननेको वह अधीर हो गई। मन्थराकी हिचकियाँ रुकती ही नहीं थीं उधर कैकेयीकी जिज्ञासा प्रतिक्षण बढ़ रही थी। उसने अधीर होकर पूछा "बहन जल्दी बता। आखिर हुआ क्या है?"

अब मन्थराने अपनी बातको जरा और चिकनी चुपड़ी बनाना शुरू किया। रानीने पूछा "राजाजी आजकल लाडला भरत कहां है?"

८

राज्यका उत्तराधिकारी

"अहा यह क्या? मृत्युका दूत आ पहुंचा! और मैं?" शीशेमें देखकर बाल सवारते हुए राजा दशरथको सिरके सफेद बाल दिखाई दिये और तुरन्त ही उनके मुहसे ऊपरके शब्द निकल पड़े। कुछ ही क्षणोंमें उनके मस्तिष्कमें अनेक विचार घूम गये — कैकयी, कैकयी तुम्हें छोड़कर कहीं भी जानेका मन नहीं होता। अब संन्यास लूं तो वह शोभा भी क्या देगा? और वनमें जाकर भी भला क्या करना है? चार चार पुत्र और पुत्र-वधुओंकी जोड़ियां आंखोंको कैसी शान्ति और सन्तोष देता है! परन्तु मेरे रामको राजगद्दी पर बैठाकर अपना प्रजाकीय कर्तव्य तो मैं पूरा कर ही दूं। अन्तिम विचारने बड़ी तेजीसे राजाके मन पर अधिकार जमा लिया। जैसे बने वैसे यह काम तुरन्त पूरा कर डालनेके लिए दशरथ अधीर हो उठे। अब इस विचार पर गुरु वसिष्ठकी स्वीकृतिकी मुहर लगना ही बाकी था।

उस जमानेमें व्यक्तिगत बातोंमें भी निःस्पृही गुरुकी प्रेरणा और आशीर्वादकी आशा रखी जाती थी। सामाजिक और राजनीतिक विषयोंमें तो अचूक रूपमें उनकी प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त किये जाते थे। साकेतकी प्रजाको राम जैसे राजा मिलें तो उसमें वसिष्ठ गुरु आनाकानी क्या करते? उन्होंने अपनी स्वीकृति ही नहीं दी दशरथको इसके लिए धन्यवाद भी दिया और थोड़ा भी विलम्ब किये बिना यह काम पूरा करनेकी सलाह दी। दशरथकी आन्तरिक इच्छाको इससे बड़ा प्रोत्साहन मिला। उनका आनन्द अब हृदयमें समाता नहीं था।

परन्तु कुदरतकी गति अगाध है। उसका रहस्य बड़ा गहन है। कोई सर्वथा निर्लेप व्यक्ति ही उस रहस्यको समझ सकता है। किसी वस्तु या व्यक्तिके प्रति रहे प्रेममें जरासी भी राग अथवा मोहकी गन्ध पैठी कि उसकी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रहती। जिस मनुष्यको जल्दी उबारना हो, उस पर कुदरतकी प्रतिक्रिया जल्दी होती है। जिस कैकेयीके

राम सिर झुकाकर खड़े रहे। इस मौनको रामकी स्वीकृति मानकर गुरु समझे कि मेरा धर्मकार्य पूरा हुआ और वे रामसे बिदा होकर दूसरे कार्यमें लग गये।

९

मन्थराका षड्यन्त्र

'आपके चारों ओर आग लगी हुई है और आप सोई हैं! खाना, सोना और राजाका दासत्व करना — इसके सिवा और भी कुछ आपको आता है?' मन्थराने कैकेयीसे कहा। मन्थरा थी तो दासी ही परन्तु कैकेयीको मन्थरा दासी पर बड़ा प्रेम था। प्रेमको न पचा सकने वाले व्यक्ति पर केवल प्रेम ही उंडेला जाय और विवेकपूर्ण सावधानी न रखी जाय तो प्रेममें मलिनता आनेकी और प्रेमपात्रके उद्धत बन जानेकी संभावना अवश्य रहती है। मन्थराके उपरोक्त शब्दोंमें निरी उद्धतता थी, लेकिन कैकेयीको तो इन शब्दोंमें आत्मीयता ही मालूम हुई।

'बोल पगली, तू क्या कहना चाहती है? जरा साफ साफ कह दे न!' कैकेयीके ये शब्द सुनकर मन्थराको लगा कि इस समय अपना जाल फैलानेका पूरा मौका है। वह आँखें मल मलकर ऐसा ढोंग करने लगी मानो रो रही हो। कैकेयीने उसके सिर पर हाथ फेर कर उसे अपनी गोदमें ले लिया। 'लक्ष्मणने तो तेरी मरम्मत नहीं की न?' कहकर थोड़ी देर तो कैकेयी मन्थराके साथ मजाक करती रही, परन्तु जब हंसनेके बदले मन्थरा सिसकती ही रही तो रानीने गंभीरतापूर्वक उससे रोनेका कारण पूछा और उसके मनकी बात सुननेको वह अधीर हो गई। मन्थराकी हिचकियाँ रुकती ही नहीं थीं, उधर कैकेयीकी जिज्ञासा प्रतिक्षण बढ़ रही थी। उसने अधीर होकर पूछा, 'बहन, जल्दी बोल। आखिर हुआ क्या है?'

अब मन्थराने अपनी बातको जरा और चिकनी चुपड़ी बनाना शुरू किया। रानीसे पूछा, 'राजाजी आपका लाड़ला भरत कहाँ है?

"दोनो भाई तो अपने ननिहाल गये ह मौज करने। मेरा प्यारा राम और लक्ष्मण मेरी सेवाके लिए ह ही। ' मन्थराको अपनी बाजी बिगडती दिखाई दी। आसू पाछकर रानीके सामने दखने हुए वह बोली "लेकिन भरतके क्या समाचार ह यह आप जानती ह ?" "मन्थरा, क्या बात है ? कुछ बुरे समाचार ह ? ऐसा हो तो अयाध्यामें बाजे क्या बज रहे ह ? क्या किसीको इस बातका पता नही है ? ककया मन्थरा पर नाटकका प्रयोग कर रही हो इस प्रकार उसकी ओर ताक कर पूछने लगी। भरत और शत्रुघ्नको ननिहाल भेजकर यहा जा नाटक होनेवाला है उसका यह प्रथम प्रवेश ही है। अभी देखिये तो सही आगे क्या क्या होता है!' मन्थराका एक भी शब्द ककेयी समझ नहा पा रही थी। उसने कहा तू क्या कहती है म बिलकुल नहा समझ पाती।" 'रानीजी, आप राजा राजा कहकर अपना मुह सुखाती ह लेकिन आपका राजा तो धागका पुतला है। और वह कौशल्या गाठोकी सरदार है। और राम ? उसे अयाध्याकी राजगद्दी लेनी है राजगद्दी। अब कुछ समझा आप ?" मन्थराकी वाणीकी करतत चल रही थी। इन तीनोने एक षडयन्त्र रचा है। भरत शत्रुघ्नको अयोध्यासे बाहर भेज दिया। आप एक-दो दिनके लिए ही स्वतन्त्र ह ऐसा समझिये। तीसरे दिनसे कौशल्याके पैर दबायेंगी तो ही आपको खाना मिलेगा वना जेल तयार ही है!

मन्थरा अट्टहास करती हुई आगे बोली 'अयोध्यामें जो बाजे बज रहे ह वे इसी बातके बज रहे ह! ' ककेयीका मन थोडी देरके लिए तो मन्थराकी बात माननेको तैयार न हुआ। परन्तु उसके हृदय पर चोट लग चुकी थी। ईर्ष्याका जहर धीरे धीरे उसकी रग रगमें फैलने लगा था। मनमें विचारोकी हलचल मच गई 'मुझे बताया भी नहा और अयोध्यामें रामके राज्याभिषेककी खुशीके बाजे बजने लग गये! महाराजने तो इतने दिनामें मुझे कुछ भी नहा बताया। कौशल्याका भा रुख आजकल कुछ बदला हुआ लगता है। और राम बातामें तो 'मेरा भरत, मेरा भरत' कहता है परन्तु भरतकी अनुपस्थितिमें राज्याभिषेकका मुहूर्त भी न मालूम कब देख लिया और राजगद्दी पर बैठनेको भी

"दोनों भाई तो अपने ननिहाल गये हैं मौज करने। मेरा प्यारा राम और लक्ष्मण मेरी सेवाके लिए हैं ही।" मंथराको अपनी बाजी बिगड़ती दिखाई दी। आखें फाड़कर रानीके सामने देखते हुए वह बोली 'लेकिन भरतके क्या समाचार हैं यह आप जानती हैं?" "मंथरा, क्या बात है? कुछ बुरे समाचार हैं? ऐसा हो तो अयोध्यामें बाजे क्या बज रहे हैं? क्या किसीको इस बातका पता नहीं है?" कैकेयी मंथरा पर नाटकका प्रयोग कर रही हो इस प्रकार उसकी ओर ताककर पूछने लगी। भरत और शत्रुघ्नको ननिहाल भेजकर यहां जो नाटक होनेवाला है उसका यह प्रथम प्रवेश ही है। अभी देखिये तो सही आगे क्या क्या होता है। मंथराका एक भी शब्द कैकेयी समझ नहीं पा रही थी। उसने कहा "तू क्या कहती है मैं बिल्कुल नहीं समझ पाती।" "रानीजी आप राजा राजा कहकर अपना मुंह सुखाती हैं लेकिन आपका राजा तो धागेका पुतला है। और वह कौशल्या शठोकी सरदार है। और राम? उसे अयोध्याकी राजगद्दी लेना है राजगद्दी। अब कुछ समझीं आप?" मंथराकी वाणीकी बरसात चल रही थी। "इन तीनोंने एक षडयंत्र रचा है। भरत शत्रुघ्नको अयोध्यासे बाहर भेज दिया। आप एक-दो दिनके लिए ही स्वतंत्र हैं, ऐसा समझिये। तीसरे दिनसे कौशल्याके पैर दबायेंगी तो ही आपको खाना मिलेगा वर्ना जेल तैयार हो है।"

मंथरा अट्टहास करती हुई आगे बोली "अयोध्यामें जो बाजे बज रहे हैं वे इसी बातके बज रहे हैं।" कैकेयीका मन थोड़ी देरके लिए तो मंथराकी बात माननेको तैयार न हुआ। परन्तु उसके हृदय पर चोट लग चुकी थी। ईर्ष्याका जहर धीरे धीरे उसकी रग रगमें फैलने लगा था। मनमें विचारोंकी हलचल मच गई "मुझे बताया भी नहीं और अयोध्यामें रामके राज्याभिषेककी खुशीके बाजे बजने लग गये। महाराजने तो इतने दिनोंमें मुझे कुछ भी नहीं बताया। कौशल्याका भी रुख आजकल कुछ बदला हुआ लगता है। और राम बातोंमें तो 'मेरा भरत मेरा भरत' कहता है परन्तु भरतकी अनुपस्थितिमें राज्याभिषेकका मुहूर्त भी न मालूम कब देख लिया और राजगद्दी पर बैठनेको भी

गया। उन भी मन अब अच्छा तरह समझ लिया है। आप तीनोंका षड्यन्त्र मुझसे छिपा नहीं रह सका।

यह सुनकर तो महाराजको मूर्च्छा आ गई। कुछ देर बाद स्वस्थ होने पर उन्होंने सोचा कैकेयीके सामने उपदेश व्यर्थ है। जब दुराग्रह आच्छादन मन पर छा जाता है और अश्रद्धाके बादल घिर आते हैं तब सत्यका सूर्य अंधकारमें डूब जाय यह स्वाभाविक है। कैकेयी बोलो तुम क्या चाहती हो? राजाने सीधा प्रश्न किया।

अब आपकी ये चिकनी चुपडी बातें मुझे भुलावेमें नहीं डाल सकतीं समझ गये महाराज।

शुद्ध अन्तःकरणवाले दशरथसे अब नहीं रहा गया। बाले कैकेयी यह सब तुम सच कह रही हो? मजाकमें तो क्या स्वप्नमें भी कैकेयी ऐसा बोल सकती है इस पर मेरा विश्वास नहीं होता। और यदि तुम हृदयसे मानती हो कि हमने कोई षडयन्त्र रचा है तो मैं रामकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम जो चाहो वही मैं करनेके लिए तैयार हूँ।

ठीक अवसर देखकर कैकेयीने मंथराका सिखाया हुआ दाव फेंका अभी तक मुझे दिये हुए दो वचन आपने पूरे नहीं किये हैं। जब उन्हींकी बात आप कभी याद नहीं करते तो नये वचनकी तो बात ही क्या की जाय?

दशरथने किसी तरहकी आनाकानी किये बिना कहा उन दो वचनोंके साथ और भी जो कुछ तुम चाहो वह सब दशरथ इसी समय पूरा करनेको तैयार है। बोलो तुम क्या चाहती हो?

देखी देखी आपकी तैयारी। कहते कहते कैकेयीने वाणी और नेत्र दोनोंके कटाक्ष एकसाथ राजा पर फेंके। दशरथ इस प्रहारसे घायल हो गये उन्हें रोमांच हो आया।

कुछ देर बाद कैकेयीने पूछा रामकी शपथ आपने सोच विचार कर खाई है न? मैं जो मागूंगी वह आप दे सकेंगे? मैं केवल दो ही वस्तुएं मागूंगी तीसरी नहीं।

दशरथ अब आगे बाग हो चुके थे। उन्होंने कैकेयीके हाथ पर हाथ मारकर वचन दिया अपना सर्वस्व निछावर करके भी मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।

कैकेयीने फिर याद दिलाया देखिये फिरसे विचार कर लीजिये। वचन देना तो सरल है परन्तु वचन पालना कठिन होता है।"

भोली कैकेयी मैं रघुकुलका वंशज हूँ। प्राण भले चले जायें, परन्तु मेरा वचन नहीं टल सकता।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाय बरु वचन न जाई॥

तो सुनिये मैं सुनाती हूँ।'

राजाके कान और आँखें दोनों कैकेयीकी ओर एकाग्र हो गये।

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का।
देहु एक बर भरतहि टीका।

मेरा भरत १४ वर्ष तक अयोध्याका राज्य करे। यह है मेरा पहला वचन।

कैकेयीकी बात सुनकर दशरथ उलझनमें पड़ गये — 'राम प्रथम पुत्र है। राम प्रजा हृदयमें सबसे अधिक प्रिय है। रामके राज्यारोहणका निश्चय हो चुका है। अब इस समय रामके स्थान पर भरतको राजगद्दी पर बैठाना बड़ा कठिन है। रामको इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। वह तो यही चाहता था। कौशल्याको भी इससे दुःख न होगा। परन्तु प्रजाको और गुरु वशिष्ठको कैसे समझाया जाये? खैर, १४ वर्ष तो देखते देखते बीत जायेंगे। कभी भी कठिनाईका सामना करके यह वचन तो पूरा करना ही पड़ेगा।'

इस अन्तिम विचारसे दशरथ स्वस्थ हो गये। बोले 'यह तो ठीक है। अब बताओ तुम्हारा दूसरा वचन क्या है?'

पहले वचनमें ही मैंने माप लिया कि आप कितने पानीमें हैं। मैं पूछना चाहती हूँ कि राम ही आपका प्रिय पुत्र है भरत तो नहीं है न?"

अरी पगली मन थोड़ा विचार किया इतनमें ही तुम अधीर हो गई ? मैं खुशीसे तुम्हारा पहला वचन पूरा करूगा। बोलो अब दूसरा वचन क्या है ?

दूसरा वचन और क्या हो सकता है ? इतना ही कि मेरा भरत १४ वर्ष तक सुखसे राज्य कर सके इसके लिए राम १४ वर्ष तक तापस वेश धारण करके वनमें रहे।

इस दूसरे वचनसे दशरथके हृदय पर वज्र प्रहार हो गया। उनके होश-हवास गुम हो गये। अग प्रत्यग शिथिल पड गये। राजा जमीन पर निढाल होकर गिर पडे।

११

माताकी सीख

[कैकेयी निवासमें राम आशीर्वाद लेने आते हैं। वहा उन्हें कुछ दूसरा ही दृश्य दिखाई देता है। दशरथ राजा मूर्च्छित होकर धरती पर लुढक गये हैं। राम पिताकी सेवा करने लगते हैं। कैकयी मातासे पिताकी मूर्च्छाका कारण पूछते हैं। कैकयी अपने मांगे हुए दो वचनोंका कारण बताती है।]

सम्यक दृष्टि और मिथ्या दृष्टि

माता माता तुम्हारे इन दो वचनोंसे पिताजीको इतना भारी दुःख क्या होना चाहिए ? मेरा प्यारा भरत १४ वर्ष अयोध्याका राज्य चलायेगा और मैं शान्तिसे वनमें जानेका सौभाग्य मिलेगा। वाह ! कैसा सुन्दर योग ? अनजान वन प्रदेशमें तापस वेश धारण करके घूमनेमें अनोखे अनुभव होंगे। ऋषि मुनियोंका ज्ञानामृत पान करनेका अवसर मिलेगा। भीलोंकी झोपड़ियोंका स्वागत नसीब होगा। वल्कल धारण करते हिरन मिलेंगे उछलते-कूदते हरिण मिलेंगे कुदरतका अपार सौन्दर्य देखनेका सुयोग प्राप्त होगा। इससे अधिक भला और मेरा क्या हो सकता है ?

राम तुम जानते हो न कि तुम्हारे पिताजीका तुम पर अत्यधिक मोह है? कैकेयीने वाणीका तेज बाण छोड़ा।

'माताजी मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मेरे पिताजी सूर्यवंशके महारथी हैं। कर्तव्यकी वेदी पर सर्वस्वकी आहुति दे देना तो रघुकुलका जीवन मंत्र है। हरिश्चन्द्र शिबि और दिलीप जैसे राजा जिसके पूर्वज हों उस वंशके वंशज पुत्रके मोह कर्तव्यसे भ्रष्ट कैसे कर सकता है? इन्हीं पिताजीने विश्वामित्र ऋषिके चरणोंमें हम दोनों भाइयोंको अर्पण कर दिया था। अभी कलकी ही यह बात है। और माता, तुम्हारे जैसी प्रेरणादायिनीके सामने पिताजी मोहवश हो सकते हैं इस पर मैं कैसे विश्वास करूँ?

रामके एक एक शब्दसे अमृत झर रहा था। कुछ देरमें राजा दशरथ स्वस्थ हो गये और प्रेममूर्ति रामके गलेसे लिपट गये। सारा वातावरण प्रेममय बन गया। केवल कैकेयी ही उससे अलिप्त रही। राजमाता बननेका उसका मनोरथ न मालूम उसे कहाँ खींच ले जाने वाला था? सच है हृदय जब स्वार्थान्ध बन जाता है तब वह पत्थरकी कठोरताको भी शरमा देता है।

कर्तव्यकी विजय

[कौशल्या माता रामको आशीर्वाद देनेके लिए तैयार खड़ी थी। वहाँ राम सीताके साथ आये।]

"मेरे लाल, मुहूर्त बीतनेको आया। इतनी देर तुम्हें क्या लगा? महाराज कहाँ हैं? कैकेयी माता सकुशल तो हैं न?" इतना कह कर माताने रामके मुँह पर हाथ फेर कर उनके कपालको चूम लिया और बलैया ली।

कुछ ही क्षणोंमें रामने माताको सारी बात समझा दी। कहाँ तो राजगद्दीकी तैयारियाँ और कहाँ वन प्रयाण! चौदह चौदह वर्षों तक रामका वियोग! यह सब वात्सल्यमयी माताके लिए असह्य था। परन्तु जब उन्होंने जाना कि इसके पीछे महाराजका वचन और कैकेयी माताका सन्तोष है, तब वे तुरन्त ही बोलीं जाओ बेटा, खुशीसे जाओ।

तुम्हे मेरे अन्तरका आशीर्वाद है। मेरी कोखको निपानेवाले कुलदीपक आज मेरे राम रोममें रूप व्याप्त हो रहा है। तुम्हारी अनुपस्थिति खल नही ऐसी कुशलतासे मेरा भरत राजकाज चलायगा। हम तीनो मातायें ईश्वरसे तुम्हारे कुशल मंगलकी प्रार्थना करेगी। हमारे गुरुदेव वशिष्ठके आशीर्वाद और शुभ कामनासे सर्वत्र आनन्द रहेगा। तुम निश्चिन्त होकर जाओ और वचन-पालन करके सकुशल लौट आओ।

सीतासे कौशल्याने कहा

सीता तुमसे मै क्या कहूं बेटा? राम तो तुम्हे मेरी सेवामें छोड जानेका आग्रह करता है। उसका यह आग्रह उसकी दृष्टिसे ठीक है। मिथिलाकी राजकुमारीको वनमें भेजते हुए मेरा हृदय कांप उठता है। परन्तु तेरी कर्तव्य पालनकी तुम्हारी लगन देखकर तुम्हे रोकते हुए मुझे सकोच होता है। फिर रामकी ओर मुडकर उन्होने कहा तात आर्यनारीकी पतिभक्तिका विचार करके मै कहती हूं कि सीता को तुम अपने साथ ही ले जाओ। इससे साथ आनसे तुम्हारी कठिनाइया बढेंगी जरूर परन्तु जानकीका साथ तुम्हारी विश्व मानवताको सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा देगा। जाओ दोनो एक-दूसरेका जतन करना और एक-दूसरेको सहारा देना।

सुमित्राकी सीख

मां रामको आज्ञा मुझे मिल गई है। कर्तव्यके खातिर राम और सीता दोनो वनमें जा रहे है। मै भी इन दोनोकी सेवाका लाभ उठाना चाहता हूं। अयोध्यामें भरत रहेगा और राजकाज चला येगा। भाई शत्रुघ्न भी यहा रहेगा। मा तुम मुझे आज्ञा दोगी न? कहते कहते उधर लक्ष्मण गद्गद हो गये।

कौन अभागिनी मा अपने पुत्रको कर्तव्य पथ पर जानेसे रोकेगा? प र तु सुमित्राकी वाणी बंद हो गई और वे देर तक लक्ष्मणकी ओर निहारती रही। एक गहरा निश्वास उनके मुहसे निकल गया।

माता, क्या तुम मुझमें कोई कमी देखकर ऐसा कर रही हो ? '

लक्ष्मण इतने अधीर न बनो। तुम्हारी बहादुरीके विषयमें मेरे मनमें जरा भी सन्देह नहीं है। तुम्हारे त्यागसे भी मैं अपरिचित नहीं। बड़े भाईके प्रति तुम्हारा जो प्रेम है वह तुम्हें इस मार्ग पर ले जा रहा है। परन्तु

मां तुम्हें जो भी कहना हो बिना संकोच कहो। क्या उर्मिलाकी तुम्हें कोई चिन्ता है ? "

मेरी आंखके तारे क्षत्रिय माताके सिर दोहरा कर्तव्य होता है इसलिए मनमें थोड़ा संकोच होता है। उर्मिलाकी मुझे बिल्कुल चिन्ता नहीं है। सच्ची पत्नीके लिए कर्तव्यके सामने जगतकी प्रत्येक वस्तु तुच्छ होती है। बेटा बुरा न मान जाना। मुझे तुम्हारी भी चिन्ता नहीं है। केवल दो बातोंकी चिन्ता है। राम सीता और तुम — तीनों वनमें जा रहे हो। चौदह वर्ष तक तीनोंको साथमें रहना है। तात, भाभी माताके स्थान पर होती है। लेकिन जवानी तो दीवानी होती है। और वनमें बार बार एकान्तमें रहनेका अवसर आयेगा। माताकी शारीरिक सेवा भी तुम्हें करनी पड़ेगी। क्या उर्मिला जैसी नवोढा पत्नीका त्यागी लक्ष्मण मन, वचन और कायासे ब्रह्मचर्यका पालन करके सीताकी मेरे समान पूजा कर सकेगा ? दूसरी बात यह है कि राम तो महा शक्तिधर और क्षमामूर्ति है। परन्तु मेरे पुत्र, तुम उतावले हो। रामकी आज्ञा मानकर उनके साथ छायाकी तरह रहते हुए तुम चौदह वर्षका लम्बा समय बिता सकोगे ? "

'तुम्हारे जैसी माताका पुत्र होकर मैं धन्य हो गया हूं। माता हो तो तुम्हारे जैसी हो। मां संस्कृतिकी रक्षक मेरी मां मैं तुम्हारे सामने दो प्रतिज्ञायें लेता हूं। तुम निश्चिन्त हो जाओ। आजसे राम मेरे पिता बनते हैं और सीता मेरी माता बनती है। मैं एक क्षणके लिए भी रामसे अलग नहीं रहूंगा और सीताजीके अंगोपांगोंको केवल देखनेके लिए कभी नहीं देखूंगा। इतना कहकर लक्ष्मण सिर झुकाये खड़े रहे। माता सुमित्रा पुत्रकी इन प्रतिज्ञाओंसे गद्गद हो गई। उनके दोनों वरद हस्त लक्ष्मणके माथे पर छत्रकी तरह फल

गये। माताके अन्तरके आशीर्वाद पाकर लक्ष्मण किसी महान सैनिककी चालसे बाहर निकल गये।

१२

रामके विरहकी व्यथा

तापसोंकी पत्नियाँ ही रामा देखी ? एसा कहकर राम रथ परसे नीचे उतर गये। लक्ष्मण भी छलांग मार कर नीचे कूद पड़े। तब सीता किसलिए बैठें ? सारथि सुमन्त्र बिना दशरथकी इच्छा प्रकट की। परन्तु रामके दृढ़ सरल-चलके सामने किसीकी क्या चल सकती थी ? सबसे आगे राम चल रहे थे। उनके पीछे छायाकी तरह चलनेवाली जानकी थीं। और दोनोंके पीछे थे अनुगामी लक्ष्मण। कैसी अद्भुत थी वह त्रिपुटी!

अयोध्या अब दूर और दूर होती जा रही थी। निकटके मान जानेवाले स्नेहीजन रुक गये थे। जब तक राम सीता और लक्ष्मण आँखोंसे ओझल न हो गये तब तक उन्हें एकटक देखते रहे। बादमें अयोध्याकी ओर लौट पड़े। अन्तरमें उनके राम-सीता-लक्ष्मणकी स्मृतियाँ अंकित हो गई थीं। पाँव उनके धीरे धीरे उठते थे रुकते थे और फिर गति पकड़ लेते थे।

इधर रामने पीछे मुड़कर देखा तो लोगोंके झुंडके झुंड उनके पीछे बातें करते करते चले आ रहे थे। कोई कहते : फिर कहाँ चौदह वर्ष तक रामकी सजीव प्रेममूर्ति देखनेको मिलेगी ? चलो अभी तो उनके पीछे चलते ही रहो। दूसरे कहते : अहा कैसा अद्भुत सौभाग्य प्राप्त हुआ है! राम अनुमति दें तो सदा उनके साथ ही इस तरह चलते रहनेका मन होता है। कुछ कहते : राम भला ऐसी अनुमति देनेवाले हैं ? हम तो उनके पीछे पीछे चलते ही रहें।' खाने पीने और रहनेकी भला क्या चिन्ता ? रामके बिना सारा संसार सूना है।

रामका प्रम और साथ ही रामका सत्सग। तब फिर बाकी क्या रहा?' रामके कुछ और भक्त कहते।

राम इन प्रम-दीवाने भक्तोंको रोक नही सकते थे। उनके प्रेमका चुम्बक ही ऐसा था कि भक्तजन अपने-आप उनके पीछे खिंचते चले जाते थे।

राम जब तक चलते रहे तब तक ये सब भी चलते रहे। न उन्होंने कुछ खाया न पिया और न क्षण भर विश्राम लिया। फिर भी न तो किसीको भूख-प्यास लगी और न किसीको थकावट मालूम हुई!

प्रेम— विशुद्ध प्रेम! तेरी गति न्यारी है!

सन्ध्या हुई। पडाव डाला। थोडी ही देरमें राम अपने तापस कर्ममें लग गये। सीताने उनकी सहायता की। लक्ष्मण सेवाकर्ममें लीन हो गये।

रात बीती जा रही थी। परन्तु रामने देखा कि कोई सोता ही नहीं। सब कोई रामकथाके आनन्दमें लीन हो रहे थे। रामकी छोटी छोटी क्रियाओंको याद कर करके रामनामका पीयूष पान कर रहे थे। जिसकी ओर देखकर रामने मंद स्मित कर दिया अथवा जिस पर एक ही स्नेह-कटाक्ष उनका पड गया, वह बार बार अपने आत्मीय जनोंसे इसका उल्लेख करके ऐसे आत्मानन्दका अनुभव कर रहा था, मानो उसे कोई अमूल्य निधि मिल गई हो।

परन्तु किसे पता था कि सुबह क्या होनेवाला है?

रामने निद्रा पूरी कर ली थी। जागकर प्रभातके पहलेका तापस काम करनेमें वे जुट गये थे। लक्ष्मण भी उठ गये थे। सीताके लिए तो अब रामकी निद्रा अपनी निद्रा थी और रामकी जाग्रति अपनी जाग्रति थी। रामने आसपास नजर दौडाई। देखा कि पीछे पीछे आये हुए प्रेम दीवाने अयोध्याके मानव-समूह रातभरके जागरणसे थक कर चूर हो गये हैं। शरीर अपना धर्म कैसे छोड सकता है? कुछ लोगोंकी नासिका गुंजारव कर रही थी, तो कुछ थककर बैठे बैठे ही वहीं सहारे ऊंघने लगे थे। बिस्तर बिछा कर कोई भी नहीं सोया था। निद्रा देवीकी कामरु गोदके सामने बिस्तरका कौन परवाह करता है?

जल्दी जल्दी कामकाजसे निबट कर रामने सुमंतसे कहा आगे बढनेकी तयारी करनी है।

इतना जल्दी ?

हां। लम्बा सवाद करनेका अवकाश नहीं रह गया था। दलते हां देखते रथ सुमंत लक्ष्मण सीता और राम सब आगके मार्ग पर लग गये।

*

उषाका आगमन हुआ। प्रभात हुआ। अरुणोदय भी हो गया। जब धीरे धीरे जयो यासे आये हुए प्रजाजन एकके बाद एक जगडाई लेते हुए जागने लगे। उठने लगे। इधर उधर देखने लगे। परंतु न तो उन्हें राम दिखाई दिये न सीता। अब क्या था ? कुछ क्षणोंकी व्याकुलताके बाद सब लोग उन्हें ढूंढने लगे और करुण स्वरमें आक्रन्द करने लगे। हे राम हे सीता हे लक्ष्मण। अरे सुमन्त तुम भी हमें छोडकर चले गये ? लेकिन कौन था वहा जो सुनता ? कुछ लोगोंने दौड लगाई। परन्तु कौन मिलता ? जब जगल सबको भयानक लगने लगा। कोलाहल और रुदन क्रन्दन होने लगा।

हे राम आप इतने क्रूर क्या बन गये ? हमसे स्पष्ट कह देना था जाओ तुम्हें अपने साथ नहीं आने दूगा। तो हम जबरदस्ती थोड़े ही आते। और यदि हम आते भी तो आप पर कहा बोझ बननेवाले थे ? भला एक बार तो जानेसे पहले हमें बताया होता। आपकी प्रेम प्रतिमाको हम जी भर कर देख तो लेते। कोई वृक्षोंके पास जाकर पूछते बताओ हमारे रामको तुमने कहा छिपाया है ? कोई शिलाओंके पास जाकर और उन पर सिर पछाडकर विलाप करते हे राम जब हमारे हृदय आप अपने साथ ले गये हैं तो हमारे इन शरीरोंको क्या यहा रहने दिया ? हृदयोंके साथ हमारे प्राणोंको भी आप अपने साथ ले गये होते तो कितना अच्छा होता ? कोई कोई तो हे राम विरहकी मृत्युकी अपेक्षा आपके हाथों अपना प्राणहरण हमें अवश्य प्रिय मालूम होता कहते कहते मूर्च्छित होने लगे। कोई माता कैकयीको याद करके बडबडाते अभागिनी मा तुम्हें यह क्या सूझा ?

और किसी पर नहा ता हम गरीबा पर ता दया की हाती! कुछ लोग चिढ़कर गम्सा करने लगे और कही यह भरतका ता काली करतूत न हो? तुरन्त दूसर कुछ इसका विरोध करके उलाहना देते भरतका नाम लेकर पापमें न पडना। भरत तो प्रमकी मूर्ति है। हम किसीको दोप न दें। यह सब हमार भाग्यका दोप है। कमकी गति अगम्य है। चलो रामकी रज लेकर अयोध्याको लौट चलें।"

धीरे धीर सब एक दूसरेका सान्त्वना दन लगे धीरज बधाने लगे। वातावरण पुन शान्त हुआ। स्वस्थ होकर सब राम-सीता और लक्ष्मणके पडाववाले स्थान पर आये। वहा बठकर सबने प्रेममूर्ति रामका चितन किया। प्राथना अपने-आप हा गई। रामकी चरण रजवाला स्थल उन्हें अयोध्यासे अधिक प्रिय मालूम हान लगा। अयोध्या लौटना किसीको अच्छा नही लगता था परन्तु लौट सिवा कोई चारा न था। गोस्वामी जीने ठीक ही कहा है

बिछुरत एक प्राण हर लेही।

१३

दशरथका अतकाल

मरा राम ता नहा आया परन्तु माता भी नहा आयी? चौदह घडी भी उनके वियागमें काटना कठिन हा रहा है ता चौदह वप भला कसे कटेंगे?' एसा कहत कहत राजा दशरथका शरीर शिथिल पड गया और व जमीन पर लुढक गय। उस समयकी दारुण वेदनाका असर सारे वातावरण पर छा गया। बडा कठिनाईसे उठकर सुमन्त महाराज पर पखा झलने लगा। प्रवासकी कथा कहकर वह राजाको आश्वासन दन और ढाढस बधानका प्रयत्न करन लगा परन्तु सारा प्रयत्न निष्फल जाता मालूम हुआ।

अब मध्यरात्रिका समय बीतन आया था। दशरथकी शय्याके सामने जागती किन्तु निश्चेष्ट प्रतिमाओंके समान दाना ओर दा रानिया

बठी थी। एक थी कौशल्या और दूसरी थी सुमित्रा। इतनेमें राजा दशरथ शय्यासे ही एकदम उठ कर बैठ गये। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो एकाएक उनमें महाचेतनाका संचार हो गया हो। कौशल्याने दशरथके मुखकी ओर सामने देखा तो ऐसा लगा कि राजा उनसे कुछ कहना चाहते हैं। बहुत समीप जाकर राजाके मुखके पास कौशल्याने अपने कान लगा दिये।

राजा बोले "कौशल्या कौशल्या कर्तव्यपालनके खातिर वनमें गये हुए रामका विरह मेरे लिए प्राणघातक क्यों सिद्ध होगा इसका कारण मेरी समझमें आ गया है। मेरी बात तुम सुन लो। मुझे विश्वास है कि दुखी न होकर तुम इसमेंसे ज्ञान ही ग्रहण करोगी।

थोड़ा गला साफ करके रामपिता दशरथने अपनी बात आगे बढ़ाई "एक सुन्दर बावडी थी। अमृतके समान मीठा और निर्मल उसका जल था। मैं जो बात कहने जा रहा हूं वह वर्षों पहलेकी है। मैं मृगयाकी धुनमें आगे और आगे ही दौड़ा जा रहा था। न तो मुझे समयका भान था और न परिस्थितियोंका भान था। दूरसे मेरे कानोंमें एक आवाज सुनाई पड़ी। वह आवाज किसकी है यह जांच करनेके लिए मैं न ठहरा। मेरे पास बाणकी कला थी धनुष था और बाण थे। मृगयाकी लोलुपताने मेरे विवेक और साधनशुद्धिकी भावनाको नष्ट कर दिया था। मैंने शब्दके अनुसंधानमें बाण छोड़ा और शिकार प्राप्त करनेके लिए दौड़ लगाई। अहा तुरंत ही मनुष्यका स्वर मेरे कानोंमें पड़ा। कितना करुण था वह स्वर! 'हा माता हा पिता!' मैं एकदम चौंक पड़ा। यह तो पशुकी नहीं परन्तु किसी मनुष्यकी आवाज है। इस विचारसे मेरे हृदयको भारी आघात पहुंचा। मनुष्यको क्या परन्तु किसी पशुको भी बाण मारनेका मुझे क्या अधिकार था? मुझे अपार वेदना हुई। परन्तु अब क्या हो सकता था? अब तो बाजी हाथसे निकल चुकी थी। मैं बावडीके किनारे पहुंचा। वहां मैंने क्या देखा? मैंने देखा एक युवा ऋषिकुमार। उसकी छातीके पासके मर्मस्थान पर लगे बाणको खींचकर मैंने अपना दुपट्टा फाड़ा और उसकी पट्टी बांधकर बहते रक्तको रोका। फिर उस पर हवा करने लगा। ऋषि

कुमार अंगुलीसे इशारा करके टूटी फूटी भाषामें कहने लगा राजन आप मेरी चिंता न कर। आप यह जलपात्र (तुंबी) लेकर तुरन्त जाइये। थोडी ही दूरी पर कावडके पास मेरे बूढे अपंग माता पिता बैठे है। वे प्यासे और भूखे है। आप उनके पास जाकर उनकी तृषा शांत कीजिये। लेकिन एक बातका ध्यान रखें। जब तक वे पानी न पी लें तब तक आप बिलकुल चुप रहें। नहीं तो मेरे वियोगके दुःखमें वे पानी पिये बिना ही मर जायेंगे। इस प्रकार बोलते बोलते ऋषि-कुमारने वहीं प्राण छोड दिये। वह था कावडमें कंधे पर बैठाकर अपने बूढे, लूले अंधे माता पिताको ६८ तीर्थोंकी यात्रा करानेवाला तथा माता पिताको देवतुल्य माननेवाला सच्चा सपूत श्रवण। तब मैं कांपते हाथों जलतुंबी लेकर ऋषि कुमारके माता पिताके पास गया। अहा कितना करुण था वह दृश्य! राजाकी आज्ञामें जाय हुए आंसू कौशल्याजी पोंछती जाती थीं। कुछ क्षण रुककर दशरथजीने आगे कहा

मेरा पगरव सुनकर दोनों बोल उठे 'बेटा श्रवण बहुत देर लगाई तूने? अहा उनकी वाणीमें कैसा वात्सल्य झर रहा था!

बेटा श्रवण, तू बोलता क्यों नहीं?' कहते कहते बूढी मां रो पडी। बेटा, क्या तू हमसे नाराज हो गया है?' इन शब्दोंके साथ वृद्ध पिताका गला भी भर आया। अब मैं अपनेको रोक न सका। मैंने कहा माताजी आप पानी पी लीजिये। पिताजी जल पी लीजिये।' परंतु उनका अन्तःकरण और आत्मा तो श्रवण पर ही निछावर हो चुके थे, वे दूसरी ओर कैसे आकर्षित हो सकते थे? मेरे अपरिचित स्वरको दोनों पहचान गये। यह श्रवण नहीं है ऐसा जाननेके बाद भला क्या पूछना? तुम कौन हो? मेरा पुत्र श्रवण कहां गया? बेटा श्रवण, हे श्रवण तू कहां छिप गया है? बोल, एक बार तो बोल!' और उसकी बूढी मां जोर जोरसे रोने लगी। वृद्ध पिता भी दहाड मारकर रोने लगे। मैं भला क्या करता? उन्हें क्या उत्तर देता? मेरी उस समयकी स्थितिका विचार मुझे आज भी आकुल व्याकुल कर देता है। मैं चुप न रह सका। अधिक समय तक मैं अपनी भयंकर भूलको छिपा न सका। मैंने कह दिया कि श्रवणकी मृत्यु हो गई है, और वृद्ध माता

पिताकी चरण रज लेकर मैं भी उनके साथ रोने लगा। श्रवणकी मृत्युके समाचार सुनते ही उन दोनों पर मानो संपूर्ण ब्रह्मांड टूट पड़ा। माता-पिताके हृदय विदारक रुदनके सामने मेरा रोना किस गिनतीमें था? मैंने कहा: आप मुझे आजसे अपना बालक स्वीकार कीजिये। लेकिन दोनोंके करुण आक्रन्दमें मेरी यह बात कौन सुनता? दोनोंकी एक ही इच्छा थी। अपने प्यारे पुत्रके पास जल्दीसे जल्दी पहुँचनेकी। दोनोंको कावड़में बैठाकर मैं बावडीके पास ले गया। श्रवणके शरीरका स्पर्श करके दोनोंने अपनी महाव्यथाको शब्दोंमें मूर्त स्वरूप दे दिया। सारा वन शोकाभिभूत हो गया। पशु और पक्षी तो क्या पेड़-पौधे फल फूल जल-थल सब उनके साथ रोने लगे।

बेटा श्रवण! तू हमारी आँखोंका तारा है, कलेजेका टुकड़ा है, हमारी आत्माकी शांति है, तू ही हम अंधोंकी आस है। अरे तू अकेला कैसे चला गया? — उन दोनों वृद्ध माता पिताके हृदयको हिला देनेवाले ये वचन आज भी याद आ जाते हैं और मेरे हृदयके टुकड़े टुकड़े कर देते हैं। केवल मृत्यु ही मेरे इस घावको अच्छा कर सकती है। मैं तुमसे क्या कहूँ? श्रवणके माता पिताने न तो जलपान किया और न मेरे लाये हुए फल खाये। उन्होंने अपने शरीरोंको प्रेमपूर्ण हृदयके साथ पुत्रकी ही चितामें होम दिया। इस प्रकार माता पिता पुत्रकी वह त्रिपुटी देखते ही देखते परलोक सिधार गई। और यह हत्यारा तीनोंका अग्नि-संस्कार करके जीवित घर लौट आया। श्रवण और उसके माता पिताकी भी त्रिपुटी थी और मेरे राम लक्ष्मण और सीताकी भी त्रिपुटी है। इतना कहते कहते ही दशरथ राजाका श्वास रुकने लगा। शरीर खिंचने लगा। और कुछ ही क्षणोंमें उनका प्राण-पखेरू कायाको छोड़कर उड़ गया। गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तन परिहरि रघुबर बिरह राउ गयउ सुरधाम॥

१४

धमच्युत माता

भरत और शत्रुघ्न अपने ननिहाल ककय दशमें राजा युधाजितके यहा आनन्दमें अपन दिन व्यतीत कर रह थे। वहा एक दिन अचानक अयोध्यासे दूत आ पहुचे।

इस प्रकार एकाएक लिवानेके लिए आये हुए दूताको दखकर दोनो भाइयाके मनमें तक वितक उठने लग। पूछने पर उहान एक ही उत्तर दिया — हम लाग अधिक नहीं जानत। आपको तुरन्त अयोध्या बुलाया है।

मामा युधाजितन दोना भानजाको अनक भेंट-सौगातें दकर विदा किया। रथ तज गतिसे अयोध्याके माग पर दौड रहा था। सात दिन और सात रात चलनेके बाद कहीं अयोध्या नगरीके दशन हुए। दूर दूरके मदिरा पर ध्वजा-पताकाए उतरी हुई देखकर भरतको और ज्यादा शका हान लगी। नगरमें प्रवेश करत हा बाग-बगीचे उद्यान-वाटिकायें सब सुनसान दिखाई देने लगें। सारा नगर शोकागार जसा बन गया था। कोई ठाकस बात भी नहीं करता था।

भरत अन्त पुरमें अपनी माताके पास पहुच।

आओ बेटा तुम्हारी बलया लू। तुम्हारी राह दखते दखते मेरा आखें भी थक गई ह।' ननिहालसे लौट हुए भरतको सबस पहले ककेयी माताने ये वचन कह।

मा, सच कहू? मुझे तुम्हारे ये प्यारभरे वचन आज बिल्कुल सूखे मालूम होते ह। आज मुझे तुम्हारा बलैया लेना भी अच्छा नहीं लगता। अयोध्या आज मुझे सूनी सूनी लगती है। मा मेरे राम कहा ह?'

भरतके ये वचन सुनकर ककेयीका चेहरा फीका पड गया। फिर भी वह बालती गई बेटा भरत, मने महाराजसे यह वचन मागा था

कि रामको १४ वर्षका वनवास दिया जाय और भरत १४ वर्ष तक अयोध्याका राज्य करें। इसलिए राम तापस वेश धारण करके वनमें चले गये हैं। साथमें सीता और लक्ष्मण भी गये हैं।

यह सुनकर भरतके हृदयको गहरा आघात लगा। परन्तु हृदयको वज्र जैसा कठोर बना कर उन्होंने पूछा और मेरे पिताजी कहाँ हैं?

जरा श्वास खींचकर कैकेयीने उत्तर दिया वे तो राम विरहकी वेदनासे मूर्च्छित रहे। परन्तु इतना सन्तोष है कि अंतमें रामका नाम लेते लेते उन्होंने शांतिपूर्वक अपने प्राण छोड़े। भरत और शत्रुघ्न दोनों माताके वचन सुनकर और उनका रुख देखकर तमतमा उठे। प्रसंगको बदलनेकी इच्छासे कैकेयीने आगे बात बढ़ाई बेटा भरत हमारे गुरु महाराज वशिष्ठ माता कौशल्या और अयोध्याका एक एक नागरिक चाहता है कि तुम्हारे पिताजीके शवकी अंतिम क्रिया तुम्हारे हाथों पूरी हो और बादमें तुम्हें अयोध्याकी राजगद्दी पर बैठाया जाय।

अब भरतके तन बदनमें आग लग गई। उनका अंग प्रत्यंग आत्म व्यथासे भर गया। पहले तो उन्हें अपने आप पर ही तिरस्कार हो आया

आह मेरे कारण पिताजीकी मृत्यु हुई रामको वनमें जाना पड़ा तथा सीता और लक्ष्मणकी यह दशा हुई। वे मनके मनमें ही बड़बड़ाने लगे ऐसी क्रूर और निर्दय माकी कोखसे जन्म लेनेके बदले मैं पत्थर बन गया होता तो भी दुनियाके काम आता। जन्मके साथ ही यदि इस माके हाथ मेरी मृत्यु हो गई होती तो कैसा अच्छा होता?

परन्तु कुछ स्वस्थ होकर भरत मासे कहने लगे मा क्या तुम वही कैकेयी हो जिसने प्राणोंकी बाजी लगाकर समरांगणमें अपने पतिका साथ दिया था? क्या तुम वही कैकेयी हो जिसने अपने प्रति रहे पतिके अपार प्रेमका कभी दुरुपयोग नहीं किया? क्या तुम

वही माता हो जिसने अपनी अंगज संतानकी अपेक्षा रामको सदा अधिक प्रिय माना?'

भरतके ये वचन सुनकर कैकेयीका मुख शर्मसे काला पड गया। 'और मां अब तुम सुन लो। यह तुम्हारा भरत उस कर्तव्य पालनके मार्ग पर जायगा जो तुमने उसे स्तनपानके साथ ही पिलाया है। रामसे मिले बिना मेरे हृदयको शांति नहीं मिलेगी। जब तक मेरे मनको सन्तोष नहीं होगा तब तक मैं तुम्हारी ऐसी मनोदशामें तुम्हारे साथ खुले मनसे बोलूंगा भी नहीं।' इतना कहते ही भरत और शत्रुघ्न कैकेयी माताके आवाससे बाहर निकल गये।

कैकेयीकी बडी बडी आशाओंकी सारी मीनारें एकाएक टूट पडी। जो चोट राम-सीता और लक्ष्मणके वन गमनसे अयोध्याकी प्रजाको होने वाली राम विरहकी व्यथासे अथवा दशरथकी मृत्युसे भी कैकेयीको नहीं लगी थी वह चोट भरतके उपरोक्त वचनोंके साथ एकाएक आवास छोडकर चले जानेसे कैकेयीको लगी। उसे अपार दुःख हुआ। मानो उसके मनमें मौलिक मंथनकी भूमिकाकी नींव पड गई।

अब वह आकाशकी ओर एकटक देखने लगी। उसको लगा जैसे आकाश भी उसके किये हुए कुकृत्यके लिए उस पर धिक्कार बरसा रहा है। उसने अपने चारों ओर देखा। एक भी व्यक्ति उसे दिखाई नहीं दिया। मंथरा तो कभीकी पलायन कर चुकी थी। दुनियामें कहीं भी उसकी नजर पहुंचती नहीं थी। इसलिए उसने अपने भीतर देखनेका प्रयास किया और वह अधिकाधिक गहराईमें उतरने लगी।

गुहराज तेज गतिसे भरतकी छावनीकी तरफ जाने लगे। सामनेसे उन्हें भरतको आते देखा। भीलोंके राजा निषाद बोल उठे 'मेरे रामको वनवास देकर भी आपका संताप नहीं हुआ? याद रखिये इस जगलमें से एक भी क्षत्रिय वापिस नहीं लौट सकेगा।

रामके प्रति गुहराजकी असीम भक्ति देख कर भरत श्रद्धासे झुक गये। बोले गुहराज उतावले मत बनो। मैं वही भरत हूँ, जो रामका छोटा भाई है। मैंने अपने बड़े भाईकी राजगद्दी पर न बैठनेकी प्रतिज्ञा ली है। मैं उनसे मिलने जा रहा हूँ।

भरतके ये भक्तिपूर्ण वचन सुनकर निषादराजका क्रोध उतर गया। और वे बोले उठें आइये मेरे साथ आइये। मैं आपको रामके पास जानेका मार्ग बताता हूँ।

आगे आगे गुहराज और उनके पीछे भरत और उनकी चतुरंगिणी सेना चल रहा था। रामचन्द्रजी जहां जहां ठहरे थे उन सब स्थानोंका परिचय निषादराज उन्हें कराते जाते थे और सब आगे बढ़ते जाते थे।

जब वह स्थान भी आ गया जहां राम पिछली रातको ठहरे थे। गुहराज आनन्दित होकर बोल उठे देखिये राम इस जगह सोये थे। जानकीजीका बिस्तर इस ओर था। और यहां भाई लक्ष्मणने उनकी सेवा करके रात्रि विश्राम किया था। और मैं इस पेड़के पास बैठकर पहरा दे रहा था। इस प्रकार गुहराज राम सीता और लक्ष्मणकी सारी दिनचर्या भरतको सुनाने लगे। गुरु वशिष्ठ अरुन्धती माता कौशल्या सुमित्रा कैकयी सब बाई गुहराजकी बातें सुनते थे और उनके बताये हुए स्थानोंको नमन करते जाते थे। सारी बातें सुनकर भरतको आनन्दका अनुभव तो होता था परन्तु उनकी स्थिति कुछ विचित्र होती जा रही थी। वे बार-बार राम चरणोंसे पावन बनी हुई रजको चूमते थे और सिर पर चढ़ाते थे। इससे उन्हें साक्षात् रामसे मिलनेका अनुभव होता था। परन्तु इसके साथ ही राम मिलनकी उनकी प्यास बढ़ती जाती थी। कभी वे मातासे बिछुड़े हुए छोटे बालककी तरह रामके वियोगसे विह्वल बनकर जोरसे रो पड़ते थे तो कभी

रामकी विविध लीलाओका स्मरण करके तथा उन लीलास्थलोके दृश्य देखकर खिलखिलाकर हसने लगते थे। कभी कैकेयीके सामने देखकर मुह कडवा बना लेते थे, और कभी लक्ष्मणके अहोभाग्यकी तुलनामे अपने हीनभाग्यका विचार करके विलकुल निराश हो जाते थे।

इस तरह दिन पर दिन बीत रहे थे। सघने गगा-यमुनाके प्रदेश पार किये, घाटिया पार की और पहाडी प्रदेश पार किये। गुहराजका प्रदेश छोडकर अब वह बहुत दूर निकल आया था। मार्गमे भीलोके झुडके झुड मिलते थे, जो अयोध्यावासियोकी इस कूचको एकटक होकर देखते रहते थे। अनेक अनोखे और आकर्षक दृश्य दिखाई देते थे, परन्तु भरतकी आखे केवल वही ठहरती थी जहा रामका स्मरण-चिह्न दिखाया जाता था। भरत गुहराजके विलकुल साथ साथ चलते थे। आज गुहराजकी बाते और उनके हाव-भाव भरतको राममय मालूम होते थे, क्योकि उन सबके पीछे रामके प्रति रही श्रद्धाका महाबल था। बहुत बार व्यक्तिकी अपेक्षा व्यक्तिकी श्रद्धा अधिक महान होती है, और प्रेमीके मिलनकी अपेक्षा प्रेमीका स्मरण अधिक मधुर और अधिक मीठा लगता है।

१७

राम और भरतका मिलाप

राम, सीता और लक्ष्मण जिस मार्गसे गये थे उसी मार्गसे भरत अपनी विशाल सेनाके साथ जा रहे थे। अब वे राम-निवासके समीप जा पहुचे थे।

विशाल सेनाका पदरव सुनकर और धूलके बादल उडते देखकर पहरा देनेवाले लक्ष्मण जाग्रत हो गये। उन्होने अपने धनुष-बाण तैयार कर लिये। इतनेमे उनकी निगाह भरत पर पडी। उनके मनमे प्रश्न उठे "क्या भरत यहा भी हमे शान्ति और सन्तोषके साथ नही रहने देना चाहता? वह किस हेतुसे इतने विशाल सैन्यके साथ यहा आया होगा? परन्तु भरतका स्वभाव तो ऐसा नही है। क्या वह ऐसा

सोचता होगा कि १४ वर्षके बाद मुझे अयोध्याका राज्यासन छोड़ना पड़ेगा, इसलिए अभीसे रामको अपने रास्तेसे दूर हटा दूं।

लक्ष्मणने अपने ये विचार ज्येष्ठ भ्राता रामके समक्ष रखे। रामने आश्वासन देकर उन्हें शान्त किया। परन्तु लक्ष्मणको विश्वास नहीं हुआ। वे घबराकर बोल उठे

'बड़े भैया मुझे लगता है कि आप भरत पर आवश्यकतासे अधिक विश्वास करते हैं। यह सत्य है कि भरत परम स्नेही है। परन्तु पुत्र तो वह माता कैकेयीका ही है न? प्रलोभनोंके सामने महात्याग और परम स्नेह भी टिक नहीं सकते। मुझे तो लगता है कि भरतके मनमें निष्कंटक राजगद्दी भोगनेकी लालसा उत्पन्न हो गई है। यदि आपसे ही मिलनेकी उसकी इच्छा होती तो इतनी भारी धूमधाम किसलिए? इतनी बड़ी सेना लेकर वह क्या आया है? मुझे तो इसमें कोई छिपा रहस्य ही मालूम होता है। कहते कहते लक्ष्मणने सीताजीकी तरफ मुड़ कर पूछा क्या माताजी आपका क्या मत है?

सीताजी कुछ बोलें इसके पूर्व राम ही बोल उठे

लक्ष्मण जल्दबाजी करके किसीके विषयमें कोई मत — और वह भी बुरा मत — बना लेना और उसे तुरंत दूसरोंके सामने रख देना यह अत्यन्त भयंकर बात है। तुम्हारे भक्तिमय समर्पण और सेवाकी मैं प्रशंसा करता हूं। परन्तु मैं देख रहा हूं कि तुम्हारी भक्तिमें आसक्तिका महादोष है इसीलिए भरत जैसे भाई पर तुम्हें ऐसी शंका हो रही है। दूसरी भी एक बात मैं तुमसे कहूं? तुमने भरतके लिए जिस अर्थमें कैकेयीपुत्र शब्दका उपयोग किया है उससे भरतके साथ सचमुच बड़ा अन्याय हुआ है। इस शब्दका उपयोग करके न केवल तुमने कैकेयी माताका अपमान किया है परन्तु मेरा भी अपमान किया है। जिस प्रकार तुम मेरे कारणसे ही वनमें मेरे साथ नहीं आये बल्कि बन्धुभक्तिसे प्रेरित होकर आये हो और मैं केवल उसका निमित्त बन गया हूं उसी प्रकार मैं केवल कैकेयी माताके कारण ही अयोध्या छोड़ कर वनमें नहीं आया हूं। वे तो निमित्त मात्र बन गई हैं। मेरे वन प्रयाणके साथ तो आर्य-संस्कृति और उसके

पीछे यही त्यागमय ईश्वरीय भावनाकी प्रसादी जुडी हुई है। ऐसी स्थितिमें मुझे और तुम्हें कैकेयी माताका उपकार ही मानना चाहिये।" रामके प्रत्येक वचनमें अमृत झर रहा था। लक्ष्मण लज्जित हुए। उनके हाथके धनुष-बाण नीचे गिर गये। और वे धरती पर बैठ कर विचारोंमें लीन हो गये।

इतनेमें ही भरत-शत्रुघ्नकी जोडी और गुहराज आ पहुचे। रामके चरणोंमें भक्तिभावसे साष्टाग दण्डवत् प्रणाम करनेवाले भरतको देखकर लक्ष्मणको रामके उपरोक्त वचनोका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। रामने भरतको अपनी भुजाओंमें बाध लिया। इसी अवस्थामें दोनो आगे बढे कि अयोध्यावासियोंसे उनकी भेंट हुई। सबसे पहले राम कैकेयीके चरणोंमें गिरे। कैकेयीने अत्यन्त प्रेमसे रामकी बलैया ली। उनके मनका सन्ताप मिट गया। उनकी आखोंमें हर्षाश्रु छलक आये। भरत इस दृश्यको देखते ही रहे। अब माताके प्रति उनकी कडवाहट टिक नही सकी। सर्व-प्रथम माता कौशल्याको, यहा तक कि गुरुदेव वशिष्ठको भी, प्रणाम न करके रामने माता कैकेयीके चरणोंमें ही क्यो प्रणाम किया, इसका रहस्य सब लोग बिना बोले ही समझ गये।

१८

प्रभुने पादुकायें दीं

राम और सीता पर्णकुटीमें बातें कर रहे थे। आज्ञाकारी लक्ष्मण अपने दैनिक कार्योंमें व्यस्त थे। ऐसेमे कैकेयी वहा आ पहुची और उचित अवसर देखकर निःसकोच भावसे कहने लगी "जानकी, महाराज जनक और सुनयनाजी कितना समय लगाकर इतनी दूर तुमसे मिलने आये है। अनेक आशाये लेकर आये हुए माता-पितासे थोडी बातें करनेमें कोई दोष थोडे ही लगता है। और बेटा राम, तुम क्यो सीतासे इसका आग्रह नही करते?"

"माताजी, मैंने सीताका ध्यान इस ओर खीचा था। परन्तु उसने जो स्पष्टता की उसके बाद मुझे आग्रह करने जैसा नही लगा।"

सीता नम्रभावसे बोली — माताजी! मैं आज केवल जानकी नहीं हूँ, परन्तु एक तापसकी संगिनी हूँ, वनवासिनी हूँ। आप तो जानती हैं कि वानप्रस्थके लिए अधिक गमीनक शाल-साम्प्रदायी इन झाड़ियोंमें रहनेवाले भील भीलनियां और उन पर्णकुटियोंमें बसनेवाले ऋषि-मुनि ही मेरे सगे हैं। माता पिताजी मैं मिलती हूँ, उनसे बातें भी करती हूँ। परन्तु चाहूँ तो भी आज मुझे नगर और घर-गृहस्थीकी बातोंमें रस नहीं आता।

कैकयी निरुत्तर हो गई। उनका मन बोल उठा — धन्य है यह स्वामिनी! किन्तु उनकी पुत्रीको यह शोभा देता है। इतनेमें गुरु वशिष्ठ आ गये। सबने गुरुजीको प्रणाम किया। रामने उन्हें आसन दिया। रामके बंधु पर अपनी बड़ी हंसते रस कर गरुड़के आसन पर बैठ गये।

राम! गुरु वशिष्ठने आरंभ किया — अयोध्याकी प्रजा चातककी तरह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। भरत अब एक क्षणके लिए भी तुम्हारा वियोग सह नहीं सकता। जिनके वचनके कारण तुम वनमें आये थे, वे माता कैकयी भी तुमसे लौट चलनेके लिए हार्दिक अनुरोध कर रही हैं। तुमने तापस जीवन और वनवासके जीवन दोनोंको अपने आचरणसे सुशोभित किया है। सीता और लक्ष्मण भी इस कसौटीमें खरे उतरे हैं। अब तुम राजमुकुट स्वीकार करो और सबको सुखी बनाओ।'

गुरुजीके वचन सुनकर कैकयीको बड़ी खुशी हुई। रामको अयोध्या ले जानेमें सबसे अधिक हर्ष अब कैकेयीको ही हो रहा था। कौन कह सकता है कि मानव सदा पापी ही रहता है? इसीलिए सन्त जन कहते हैं — पापसे भले घृणा करो परन्तु पापीसे कभी घृणा मत करो। इसी वातावरणमें राजा जनक, सुनयना, कौशल्या, सुमित्रा और भरत आ पहुंचे। अब बाहरके मण्डपमें सब लोग आकर व्यवस्थित बैठ गये। कुछ दूरी पर वनजन तथा मिथिला और अयोध्याके नगरजन भी पास पास बैठ गये। मानो ग्रामीण और नागरिक संस्कृतियोंका संगम हो गया। वनजन मनमें चाहते थे — राम वनमें

रहे।' नगरजन चाहते थे . 'राम अयोध्या लौट कर राज्यको सभाले।' दोनो अपने अपने ढगसे राम और सीताको अपनी ओर आर्कपित कर रहे थे। भरतके मन अयोध्या जैसी नगरी और अटपटे अरण्यके बीच समानता थी । उनका आकर्षण-स्थान एकमात्र रामचन्द्र थे। रामका आकर्पण-स्थान इन सबसे निराला और अगम्य ही था।

राम गहरे मनोमन्थनके अतमे बोले·

"गुरुजनो, नगरजनो और वन्यजनो!

"आप सबके आशीर्वाद, स्नेह और सिखावनके लिए मै आप लोगोका आभारी हू। गुरु वशिष्ठ जैसे इस युगके मेरे जीवन-गुरुका आभार मै शब्दोमे कैसे व्यक्त करू? माता कौशल्या अथवा मेरे पूज्य सास-ससुरकी कर्तव्य-परायणताका मै किन शब्दोमे वर्णन करू? यह सब देख कर मेरा मन बासो उछलने लगता है। सीता जैसी सन्नारी और भरत-लक्ष्मण जैसे सद्बाधव प्राप्त करनेका सौभाग्य मुझे मिला है। जगतमे मेरे जैसा भाग्यशाली दूसरा कौन होगा? परन्तु इस सारे पुण्यको मै सत्य भगवानकी प्रसादी मानता हू और उन्ही भगवानको साक्षी रख कर आज बोलनेके लिए प्रेरित होता हू। मेरी वाणीमे कोई दोप न रहे इसकी मै सावधानी रखूगा। फिर भी आप सब उदारतासे मुझे निवाह लीजिये। मै भलीभाति जानता हू कि यहा भी बहुसख्यक लोग इस मतके है कि मै अयोध्या लौट जाऊ। ये वन्यजन मेरे सान्निध्यके लिए लालायित है। फिर भी नगरवासियोने उनमें से बहुतेरे लोगोके मत अपनी ओर कर लिये है। सीता और लक्ष्मणको भी उन्होने अपने मतमे खीचनेका प्रयत्न किया है, परन्तु इन दोनोने सर्व कुछ मुझ पर छोड दिया है। और मैने सत्य भगवानकी वेदी पर अपने आपको अर्पण कर दिया है। मुझे सबसे प्रथम यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि मै वनमें माता कैकेयी अथवा पिता दशरथके कारणसे नही आया हू। बेशक, वे इसमे निमित्त बन गये है, परन्तु मै आया हू सत्यकी टेकके खातिर। और यहा आकर ज्यो ज्यो मै गहरा विचार करता हू त्यो त्यो मेरे सामने यह स्पष्ट होता जाता है कि हमारे देशका मूल तथा हमारे अतरग सत्यकी साधनाका आधार इस ग्राम्य

संस्कृतिके उत्थानमें और ग्रामजनोंके शान्ति सम्पर्कमें है। इन भागोंके जंगलवासी भोलेभाले लोगोंमें स्नेह है, भक्ति है, गुरुजनोंमें निष्ठा है तथा स्वाभाविक तप और त्याग जैसे अनेक सद्गुण हैं।

रामने आगे कहा — गुरुजनो और अन्य माननीय बन्धुओ! इन वनवासियोंमें यदि कोई दोष है तो इतना ही कि उन्हें अपनी इस अपूर्व कुदरती सम्पत्तिका भान नहीं है और वे अपनी शक्तिका मूल्यांकन करना नहीं जानते। वे अपनी दशाको हीन मानते हैं। इसमें हम नागरिकोंका बहुत बड़ा हाथ है। इसके लिए हम लोग ही बड़ी हद तक जिम्मेदार हैं। अतः हमें इसके लिए कठोर प्रायश्चित्त करना ही होगा। इस वनमें रहकर केवल तप और त्यागसे मेरा काम पूरा नहीं होगा। ज्ञान और प्रेमकी उपासनाके साथ ही मुझे अनेक संकटों और प्रलोभनोंको पार करना होगा। इसके लिए मुझे घनघोर कानन-खोहोंमें पहुंचना होगा और सब वनवासियोंका सम्पर्क साधना होगा। कदाचित् महान युद्ध भी मुझे लड़ना पड़े। परन्तु वह युद्ध बड़े बड़े संहारक शस्त्रास्त्रोंसे नहीं लड़ा जायगा, न उसमें बड़ी सेनाकी आवश्यकता होगी। वह युद्ध तो सच्चे नीतिमान, निःस्वार्थ और प्राकृत माने जानेवाले कुछ लोगोंके सहयोगसे लड़ा जायगा। आशा है आप सब इस संकल्पको अपनी प्रेरणाके जलसे सींचेंगे और मैं अयोध्या लौट चलनेके आपके आग्रहको स्वीकार नहीं करता इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

महाराज जनकको अपने राम और सीताके इस आचरणसे अपार हर्ष हुआ। उनकी वृत्ति और रामके इस विशिष्ट नीतियोगको देखकर गुरु वशिष्ठ बोले — राम माताओ तथा अयोध्या और मिथिलाके निवासियो! राम सच्चे मार्ग पर हैं। अतः आप सबको मेरी सलाह है कि रामको इस कार्यमें आप प्रोत्साहन ही दीजिये। गुरुदेवके ये वचन सुनकर सब लोग स्तब्ध हो गये। परन्तु दुःखके बदले सबके मनमें रामके सत्याग्रह और नम्रताके लिए आदर पैदा हुआ।

भरतकी स्थितिका समझना बड़ा कठिन था। उनके मनोमन्थनका तुरंत कोई हल निकालनेकी दृष्टिसे गुरुजीने रामसे पूछा — भरतके लिए तुमने कुछ सोचा है?

"गुरुदेव, आपकी छत्रछायामे भरत अयोध्याका राज्य चलाये, यह मेरी अन्तिम अभिलाषा है।"

"राम, तुम्हारा कहना तो ठीक है। भरतका आतरिक और बाह्य जीवन भी भव्य और दिव्य है। प्रजाप्रेम और कार्य-कुशलताकी भी उनमे कमी नही है। परन्तु इसमे केवल एक ही कठिनाई है। भरत तुम्हारे वियोगको सहन करके टिक सकेगे?"

"गुरुदेव, भरत और मै साथ रहे यह हम दोनोको अच्छा लगेगा। आप तो जानते ही है कि हमारे शरीर भिन्न है, परन्तु अन्तर —आत्मा— तो एक ही है। परन्तु गुरुजी, मुझे विश्वास है कि मेरे प्रति अपार स्नेह होते हुए भी कर्तव्यके खातिर भरत मेरा वियोग सहनेको तैयार हो जायगे।"

तुरन्त भरतका सिर नीचे झुक गया। मानो रामाज्ञाको शिरोधार्य करके कोई योद्धा अपना सिर कर्तव्यकी वेदी पर चढानेको तैयार हो गया हो! परन्तु विरहकी वेदनाने उनके हृदय पर जो तीव्र आघात किया, वह स्पष्ट दिखाई देता था। अब माता कौशल्यासे नही रहा गया। उन्होने कहा "बेटा राम, मेरा प्यारा भरत तुम्हारी अनुपस्थितिमे साकेतके शासन-तन्त्रका भारी बोझ उठा कर तुम्हारे वियोगमे टिका रहे, ऐसी कोई निशानी उसे दे दो।" माताके इन वचनोने भरतमे नये प्राणोका सचार कर दिया। उन्होने रामके सामने देखा और रामने अपनी पादुकाओ पर नजर डाली। दोनोकी चार आखोने इस रहस्यको समझ लिया। वे मुस्करा उठी।

रामने अपनी पादुकाये निकाली, भरतने मस्तक नवा कर अपने हाथ फैलाये। पादुकाये हाथोमे आई। भरतने उन्हे आखो और हृदयसे चूम कर आदरपूर्वक अपने झोलेमे रख लिया।

कर्तव्यकी वेदी पर चढते हुए प्रेमीका प्रतीक भी विरहको सहनेकी शक्ति प्रदान करके मनुष्यको जीवित रख सकता है।

१९

साकेतवासियोंसे

अयोध्यावासी आतुरतासे भगवान रामके लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। राम कब आयेंगे राम कब आयेंगे? गुरु वशिष्ठ विदेह जनक माता कौशल्या कैकयी भरत शत्रुघ्न — इतने सारे स्नेहीजन गये हैं वे क्या रामको अपने साथ लाये बिना लौटेंगे?

एक पुरवासी बोल उठा क्या हम पुरवासियों पर रामका कम स्नेह है? राम अवश्य लौट आयेंगे।

रामको लिवाने गये हुए गुरुजन वापिस आ रहे हैं यह शुभ समाचार सुनकर नगरजन नगरके बाहर उमड़ पड़े। दूर दूर उड़ने वाली धूलके गुबारकी ओर सब एकटक देखते थे और एक-दूसरको दिखाते थे

देखो वे गुरु महाराज वशिष्ठ दिखाई देते हैं। दाहिनी ओर जानेवाली माता कौशल्याजी हैं। उनके बाद और महाराज जनक हैं। भरत और शत्रुघ्न भी दिखाई देते हैं। परन्तु राम लक्ष्मण और जानकी कहाँ हैं? रामचन्द्र कहाँ हैं? जहाँ सुना वहाँ एक ही ध्वनि सुनाई देती थी। आँखें चारों ओर घूम आईं परन्तु जिसे देखना था वह न दिखाई दिया। सबके मन व्याकुल हो गये। क्या हुआ होगा? राम लौटे क्यों नहीं? सकुशल तो होंगे न?

अयोध्यामें लौटनेवाले शानियोंके विश्राम लेनेके पहले ही चारों ओरसे पूछताछ होने लगी। नगरीकी इस व्याकुलता और प्रजाके रामप्रेमको देख कर जनक जैसे विरक्त पुरुषकी भी आँखें छलछला आई। शुद्ध स्नेहसे बढ़कर दूसरी वस्तु इस क्षणभंगुर और नाशवान जगतमें क्या हो सकती है?

जब सारे प्रजाजन सभाके रूपमें व्यवस्थित हो गये तब गुरु वशिष्ठ बोले नगरजनों आपके सबके खिन्न और उदास चेहरे देख

कर हम लोग परेशानीमे पड गये है। आपको इस वातका तो विश्वास होगा ही कि राम-सीताको अयोध्या लानेके प्रयत्नमे हमने कोई कसर वाकी नही रखी। मै आगे कुछ कहू इससे पहले मै आपसे इतना पूछ लू कि रामके ऊपर हमे केवल साकेतका ही अधिकार रखना है, अथवा उन्हे सारे विश्वके राम वनने देना है? आप सव समझदार है, इसलिए मै आशा रखता हू कि मेरे प्रश्नका उत्तर आप गहरा विचार करके ही देगे।" वशिष्ठजीका अतिम वाक्य पूरा हुआ इसके पहले ही सभामे से एकके वाद एक उत्तर आने लगे "राम सारे जगत-के है; केवल हमारे ही नही है।" मिलनकी आतुरता पर विश्वैक्यकी व्यापक उदात्त भावनाने विजय प्राप्त कर ली। सारा वातावरण वदल गया। सवके चेहरो पर स्मित फैल गया और हृदयोमे उल्लास और हर्ष भर गया। गुरु वशिष्ठकी वाणी अव अस्खलित रूपमे वहने लगी

"राम चौदह वर्ष पूरे होनेके वाद ही अयोध्या लौटेगे। हमारे सौभाग्यसे उनकी पादुकाये हमे मिल गई है। आजसे रामकी ये पादु-काये विधिवत् राजसिंहासन पर विराजमान होगी।" हर्षनादसे सारा वातावरण गूज उठा। इससे पता चला कि सारी सभाने इस वातका स्वागत किया है। "और याद रखिये," गुरु वशिष्ठ आगे वोले, "रामके प्रतिनिधिके रूपमे भरत अयोध्याका राज्य चलायेगे। भरतकी सरक्षकता (ट्रस्टीशिप)मे रामको जितना विश्वास है उतना हमे न हो, तो भरतके लिए राज्यतत्र चलाना असभव हो जायेगा।" चारो ओरसे ध्वनि उठी· "हमे विश्वास है, पूरा विश्वास है!"

"साकेतके लिए रामने एक महत्त्वपूर्ण सन्देश भेजा है।" गुरुजीके ये शब्द सुनकर सवके कान और आखे गुरु वशिष्ठके मुख-कमल पर केन्द्रित हो गई।

वशिष्ठ महाराजने भगवान रामका सन्देश सुनाया: "आज तक हमने गावोमे और वहाके झोपडोमे रहनेवाले लोगोको अज्ञानी, अनाडी और पशु जैसे माना है। यह भयकर भूल है। उनके हृदयोमे जो निस्वार्थ प्रेम छलकता है, उसका नगरोमें हमें दर्शन हो सकता है?

आप क्या उन्हीं लोगोंके कठोर परिश्रमसे उत्पन्न हुई वस्तुओं पर ही हमारा निर्वाह नहीं होता? सहज निःस्वार्थ प्रेम नानके बिना संभव नहीं होता इस परसे आप समझ लें कि उनमें नानकी भूमिका है। इनका ही नाम मानवताका परोपकार करनेकी स्वाभाविक भावना भी उनके भीतर मौजूद है। ऐसे योग्य जनोंको आज तक हमने कभी क्या सच्चा सगा माना है—उनकी स्थिति सुधारनेका कोई प्रयत्न किया है? कभी इस बातका विचार भी किया है? इसलिए मैं यहां वनमें जा रहकर आप सबकी ओरसे इस अपराधका प्रायश्चित्त करूंगा। आप सब अयोध्यामें रहकर अपनी शुभ कामनायें भेजते रहिये। और आजसे ही अपने इन चिर उपेक्षित बंधुओंके प्रति दयाकी ही नहीं परन्तु कृतज्ञताकी दृष्टिसे देखना आरंभ कीजिये।

सरयू नदीके तट पर एकत्र हुए नगरजनोंकी विशाल सभा गुरु श्री वसिष्ठ मुखारविन्दसे रामकी यह सन्देश सुनकर गहरे विचारमें पड़ गई। सभा पूरी हुई। लोग घर लौटने लगे। नई होते हुए भी गहरे विचारके फलस्वरूप यह बात लोगोंके मनमें भलीभांति बस गई कि वनके प्रवासमें रहनेवाले लोगोंके हृदय ज्ञान और परोपकारसे पूर्ण हैं। सरयूका नीर भी मानो इस बातसे गौरव लेता जान पड़ा। रामायणकार इसलिए कहते होंगे

एक निमिष सरयू बन तुम न तुलसीदास।

२०

नन्दीग्राममें भरतजी

प्रभातके समय माता कैकेयीको सदाकी तरह प्रणाम करके भरतजी उनके आशीर्वाद पानेके लिए खडे रहे। पुत्रको आशीर्वाद देते हुए माता वोली "वेटा भरत, राज्यकी व्यवस्था तो अच्छी तरह चलती मालूम होती है। अधिकारी लोग भी सच्चे उत्साह, लगन और प्रामाणिकतासे काम करते हैं। फिर भी मुझे ऐसा दिखाई देता है कि तुम्हारे मन पर वडा वोझ रहता है। मेरा अनुमान सही हो तो वेटा, मुझे इसका कारण जानना है। रामके विरह-दु खसे तो तुम्हारा मन पीडित नही है न?"

"मा, मै स्वय ही तुमसे कहना चाहता था। परन्तु तुम्हीने पूछ लिया, यह मेरा सद्भाग्य है। राज्यतत्रकी मुझे कोई चिन्ता नही है। प्रजा और अधिकारीगण सभी अपने-अपने कर्म-धर्मका भलीभाति पालन करते हैं। और यह सारा प्रताप रामका है, ऐसा मै मानता हू। जवसे उनकी पादुकाये प्राप्त हुई है, तवसे मै रामकी प्रत्यक्ष उपस्थितिका अनुभव करता हू। इसलिए उनके विरहकी पीडा मुझे लेशमात्र भी नहीं है। ऐसा होते हुए भी पता नहीं क्यो मुझे चैन नही पडता। मा, सच कहू तो यह राजमहल मुझे खानेको दौडता है। श्रुतिकीर्तिकी समति मुझे मिल गई है। हम दोनो सयमका पालन करते हैं। मै प्रतिदिन ही वनकी कल्पना करता हू। प्रात काल जव मै मदिरमें वैठकर रामका चिन्तन करता हू, तव राम नही किन्तु वनवासी भीलोके झोपड़े और उनका निर्मल स्नेह, अतिथि-सत्कार और सद्भाव याद आता है। मै वनमे जानेकी स्थितिमे तो नहीं हू। और यहा महलमे वैठे वैठे मै उनके साथ एकता अनुभव नही कर सकता। मै क्या करूं, मा? मेरा मनोमन्थन प्रतिदिन वढता ही जाता है।"

"वेटा भरत, तुम्हारी वेदना सच्ची है। रामके सन्देशके पीछे जो भावना है, उसे तुम्हे मूर्तरूप देना होगा। 'यथा राजा तथा प्रजा'

—यह हमारा आजका युगमंत्र है। बड छाट सब तुम्हारा अनुकरण करनके लिए प्ररित हाग और तुम्हारा ही आन्श ग्रहण करग। तुम तो जानते ही हा कि मनुष्य बाह्री वाताका अनुकरण करनक लिए जल्दी ललचाता है।

मा म तपस्वीका वेश धारण करके नंदीग्राममें रहू तो? वहा वैयजन नही ह परतु वन जरूर है। वहा म छोटसे छोट और पिछड हुए दीखनवाले लोगाके साथ रहूगा और उनके साथ एकता साधगा। तुम्हारे आशीर्वाद मुझ मिलेग न?

बटा म यही तुमस कहना चाहती थी। तुम्हारी यह उदात्त भावना सफल हो। लो वह श्रुतिकीर्ति भी आ गई। श्रुतिकीर्तिको ओर देखकर माता कैकेयी बोली बटी तुमन भरतके नदीग्राम जानकी बात सुनी है। बोलो तुम्हारी भी इसमें समति है न?

आपकी और आपके पुत्रकी एसी बात सुनकर वधूके नाते मेरा मन प्रसन्नतासे नाचन लगा है। श्रुतिकीर्तिके य वचन सुनकर भरतके आनदका पार न रहा। एसी त्यागमूर्ति पत्नीको पाकर वे धन्य हो गय।

कुछ समय पश्चात भरत नदीग्राममें रहन लग। बढ हुए केश वाल भस्म चर्चित अगावाले और वल्कल-वस्त्र धारण करनवाल नदी ग्रामवासी भरत अयोध्याके राज भवनमें बठकर जब राज्यतंत्र चलाते उस समयका दश्य एसा भव्य मालूम होता था मानो काई सिद्ध सन्यासी राज्यासन पर विराजमान होकर राज्यतंत्र चला रहे हा। इस प्रकार रामराज्यकी नीव पडी। तपोमूर्ति भरतके हाथ नीचे चलन वाला साकेतका राज्य धमराज्य वन गया। लाग आज भी कहत ह कि भरतके समयमें प्रजास कमस कम कर लिया जाता था। गास्वामी तुलसीदासजीन योग्य वाणीमें कहा है

जो न होत जग जनम भरतको।
सकल धरम धुर धरणी धरत को॥

अब भरत अयोध्यामें बठकर भी ग्रामीण सस्कृतिके साथ पूरी तरह सम्पर्क साध सकते थ। हमें कहना चाहिय कि राम लक्ष्मण

और जानकी यदि वनवासी तपस्वी थे, तो भरत राजभवनवासी तपस्वी थे। एकान्तमे रहकर मौनका पालन करना सरल है, परन्तु अनेक लोगोके बीच रहकर बोलनेकी शक्ति रखते हुए भी मौन धारण करना अत्यन्त कठिन है।

'घरमे वनवासीकी तरह रहो'—ऋषिवरोके इस सूत्रको प्रत्यक्ष आचरणमे उतारकर भरतने सच्चा सुराज्य चला कर दिखा दिया।

२१

अत्रि ऋषिके आश्रममे

एक समय राम, सीता और लक्ष्मण तीनो प्रकृतिकी शोभाका पान कर रहे थे। इतनेमे राम एकाएक बोल उठे. "क्यो देवी, अब तुम्हे यह स्थान कैसा लगता है? लक्ष्मण, तुम भी इस विषयमे अपना मत बताओ।" "मुझे तो जहा राम है वहा सर्वत्र अयोध्या ही अयोध्या दिखाई देती है।" लक्ष्मणने कहा। "फिर भी जब आप मेरा मत जानना चाहते है, तो मुझे कहना चाहिये कि यह स्थान मुझे अधिक प्रिय लगता है। कारण, मेरी पूज्य माता सीताजीको मुनिपत्नियोका और भील बहनोका अधिक परिचय हो जानेसे यहा उन्हे सब प्रकारसे निश्चिन्तता अनुभव होती है।"

लक्ष्मणके उत्तरके बाद सती सीता बोली "देव, वीर लक्ष्मणकी बात सच है। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि जब हमारा इन लोगोके साथ अधिक परिचय नही था, तब इन सबसे जो निर्दोष प्रेमामृत पीनेको मिलता था उसका अनुभव अब जैसे कम होता जाता है।"

"जानकी, तुम्हारा कहना ठीक है। अयोध्या-मिथिला आदिके लोग इस स्थानको जान गये है। इसलिए अब किसी न किसी बहानेसे उनका आना-जाना यहा होता रहता है। आसपासके शहरोके लोगोका आना-जाना भी बढ गया है। वे जब आते है तब अपने प्रेमके साथ शहरकी कृत्रिम सभ्यता और शिष्टता तथा यहांकी वन्य संस्कृतिको

शोभा न देनेवाली बहुतसी बातें भी ले जाते हैं। हमारे आसपासके वनजनों पर उनका हानिकारक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। हमारे तापस व्रत और एकान्तको भी इससे हानि पहुंचती है। चाहे जितना बड़ा मनुष्य क्यों न हो, परन्तु जिस वस्तुका त्याग करके वह निकला हो उससे आरम्भमें बहुत समय तक उसे दूर ही रहना चाहिये। इसके अभावमें सच्ची तटस्थ वृत्तिका विकास संभव नहीं होता। हमें अपने पूर्व-स्नेहियों तथा नये स्नेहियोंके बीच और वन तथा नगरोंके बीच अटूट और अखंड एकता स्थापित करनी है और यह तभी हो सकता है जब पूर्व-स्नेहियोंसे नगरके लोगोंसे और नगरोंसे काफी हद तक अलग रहा जाय। लक्ष्मण, इतना सच है कि इस स्थानमें सीताके विषयमें अधिक निश्चिन्तता रहती है। परन्तु वह तो महाशक्ति है। जबसे उसने वनमें प्रवेश किया है तबसे तुमने अनुभव किया होगा कि वह सदा हमसे आगे ही रहती है। इतने इतने सगे सम्बन्धी आये, इतने नगरजन आये परन्तु माताओंका ध्यान तो प्रथम मुझमें और उसके पश्चात मेरे प्रिय बन्धुओंमें ही केन्द्रित रहता है। हम माताओंकी जितनी चिन्ता करते हैं उससे अधिक चिन्ता सीताको ही हम लोगोंकी रहती है। जो फल अंकुर या अन्य वस्तुएं तुम लाते हो उनकी सारी व्यवस्था स्नेह और सुघड़तासे कौन करता है? प्रातःकालसे लेकर रात्रिके सोने तक लगातार चलनेवाले हम तीनोंके कार्यक्रमकी उचित रीतिसे पूरा करनेकी चिन्ता सीतासे अधिक किसको है? अभ्यागतों अथवा वनवासियोंके हमारे व्यवहारमें कोई कमी मालूम हो तो उसे पूरा करनेका काम सीताके सिवा और कौन करता है?

ठीक है प्रभु! मुझे माताके वात्सल्यकी जो कमी अनुभव होती है उसकी पूर्ति भी तो मेरी माता सीता ही करती हैं। लक्ष्मणने स्वीकार किया।

इसके बाद एक प्रसंग ऐसा आया जब आसपासके किसी आश्रमको अपने प्रस्थानकी अन्तिम सूचना दिये बिना यह त्रिपुटी आगे बढ़ गई। वह एक ऋषि-आश्रममें पहुंचे। यह आश्रम आज प्रेममय

वातावरणसे महक उठा। क्या प्रेममूर्तिया इसी प्रकार अपने प्रेमकी सुगन्ध फैलाते हुए चारो ओर घूमा करती है?

*

[स्थान अत्रि ऋषिका आश्रम। अनसूया माता और सीताजीकी वातचीत।]

"वहन, तुम्हारा लावण्य देखते हुए आखें थकती ही नही। मन करता है, तुम्हारे एक एक अगको देखा ही करू। इस जीवनमे मैंने अनेक सुन्दर स्त्रिया देखी हैं। परन्तु तुम्हारे जैसी सोलह कलाओसे दीप्त और तेजस्वी सुन्दरता मैंने किसीमे नही देखी। मेरी समझमे नही आता कि ये तुम्हारे अत्यन्त कोमल अग घोर अरण्यके अनेक प्रकारके दु खो पर किस शक्तिसे विजय प्राप्त करते होगे।

"वेटी सीता, क्या तुम्हे मिथिला या अयोध्या याद ही नही आती? वनमे रहते हुए भी, मुनिपत्नी होने पर भी कौन जाने क्यो तुम पर हृदयमे सगी पुत्रीसे भी अधिक वात्सल्य उमड आता है।"

सीताजी नतमस्तक होकर माता अनसूयाके ये उद्गार सुनती रही।

"तुम्हारी पति-परायणता, सेवा, नम्रता, तपस्या, त्याग, जिज्ञासा आदि अद्भुत गुणोको देखकर तुम्हारे चरणोमे सिर झुकानेका मन हो जाता है," अनसूया बोलती रही।

सीता "नही, नही, माताजी! मै तो एक ससारी अल्प प्राणी हू। मुझमे आज आप जो कुछ देख रही हैं वह सव रामकी छायाका ही प्रताप है। उस पर आप जैसोका नि स्वार्थ प्रेम और वात्सल्य मुझे नव-जीवन प्रदान करता है। परन्तु आज तो माताजी, मुझे आपसे ऐसी कठोर सीख और मधुर आशीर्वाद ही चाहिये, जिससे मेरे अरण्य-वासके जीवनमे आत्मज्योति अखड जलती रहे।"

कुछ देर तो अनसूया माता मौन होकर आखें बन्द किये रही। वादमे जरा गम्भीर होकर उन्होने अपनी वाग्धारा चलायी "सीता वेटी, नगरके नगरजनोके, वनके वन्यजनोके और कुल मिलाकर इस ससारके

बहुत मार्ग खुला। इसके कारण अनुभव मुझे हुए हैं। जिन [illegible]में तुम आज आश्रममें यहां दूसरी कोई स्त्रियां नहीं हैं। और हों भी तो तुम्हारा पद क्या विचार करती है? [illegible] सा और स्वभाव [illegible] हो तो [illegible]में [illegible] पास मिलेंगे। आश्रमके [illegible] और शांति [illegible] अवश्य यहां कम है। परन्तु वे भी मिलेंगे अवश्य। [illegible] आप [illegible] परन्तु [illegible] गुरुतर किया है। यह [illegible] कि [illegible]में [illegible] दूर दूसरा आया करता हूं। [illegible] विचार करता है [illegible] तुम्हारा! परन्तु राम-लक्ष्मण जैसे महावीरोंका आदर्श तुम्हारे साथ होनेके कारण बहुत चिंताकी बात नहीं है। परन्तु यहां आश्रम [illegible] इसमें स्वयं ही अपना रक्षण करना सीखना चाहिये। तुम महासतीके समान हो। सतियोंको मृत्युका बिल्कुल भय नहीं होता। परन्तु स्त्रियोंका स्त्री-शरीर ही ऐसा है कि इस तरहके नरपिशाचोंसे अपने शील और सतीत्वकी रक्षा करना बड़ा कठिन हो जाता है। इसका अर्थ है कि ऐसे विकारियोंकी शक्ति सतीके सामने शिथिल पड़ जाती है। परन्तु जहां धाक धमकीसे काम नहीं बनता वहां वे लोग प्रलोभनोंसे और दूसरी अनेक चालाकियोंसे काम लेते हैं तथा स्त्रियोंके कोमल स्वभावका अनुचित लाभ उठाकर उन्हें पतित बनाते हैं और इस प्रकार अनेक स्त्रियोंके जीवनको धूलमें मिला देते हैं।

'माताजी, आपकी बातका मर्म मैं समझ गई। आप हमारे आशीर्वादसे सदा जाग्रत रहनेका प्रयत्न करूंगी। अन्तमें तो मैं भी एक मानव प्राणी ही हूं। परन्तु मुझे ऐसा भी लगता है कि हमारी बहनोंको ऐसे अवस्थाओंको आखिरमें किसी स्त्री या स्त्रियोंका ही सम करना होगा। जाग्रत रहनेकी दृष्टिसे यह भय भले रहे परन्तु वह हमारी प्रगतिमें कभी बाधक नहीं होना चाहिए। इसे आप भी अवश्य स्वीकार करेंगी। इसके सिवा अपने अल्प अनुभव परसे मैंने भी इतना तो सीखा ही है कि ऐसे नराधम हृदयसे अत्यन्त दुर्बल होते हैं। वे दूर रहकर चाहे जितनी बकवक करते रहें परंतु सतीत्वकी अग्निका स्पर्श करनेकी

हिम्मत उनमे नही होती। इसलिए उनका शिकार बननेसे पहले स्त्री यदि दृढ सकल्प कर ले, तो वह मार कर या मर कर भी अपने शील और सतीत्वकी रक्षा कर सकती है।" सीताके प्रत्येक शब्दसे सती अनसूयाका हृदय आनन्द अनुभव कर रहा था। उन्हे पक्का विश्वास हो गया कि सीता कोई सामान्य स्त्री नही है।

सीता जैसी सच्ची नारियोका रक्षण उनका सतीत्व स्वय करता है। इसके सिवा जो स्त्री सती होती है, उसे सकटके समय अपना कर्तव्य अपने-आप सूझ जाता है। यह रहस्य सती अनसूयाको इस अवसर पर अधिक समझमे आया। अत्रि-आश्रममे दो तीन दिन बीत चुके थे। अत अत्रि और अनसूयाके आतिथ्यका मधुर स्वाद चखकर राम, सीता ओर लक्ष्मणकी त्रिपुटीने दण्डकारण्यकी ओर प्रयाण किया।

२२

सुतीक्ष्णसे भेट

दण्डकारण्यमे स्थित पचवटी नामक स्थानकी कल्पना करते करते राम चले जा रहे थे। उनके पीछे सीता छायाकी तरह उनका अनुसरण कर रही थी। और सीताके पीछे लक्ष्मण नीची आखे किये चल रहे थे। इतनेमे "अहो मुनिराज, मुनिराज, ऐसा कभी हो सकता है?" कहकर रामने अपने पावोमे पडे हुए मुनिवरको आदरसे खडा किया। मुनिकी आखे रामके मुख पर जम गई। रामके नेत्र मुनिके नेत्रोसे मिले और मुनिके नेत्रोसे आसुओकी धारा बहने लगी। कुछ क्षणोमें मुनिकी काया चित्रवत् स्थिर हो गई। कैसी अनुपम भक्ति! सीता और लक्ष्मणकी आखे भी मुनिवरकी यह दशा देखनेके लिए आकर्षित हुई। जहा आत्माके साथ आत्माका मिलन होता है, वहा लिंग, देश-काल अथवा वेशभूषाके भेद कैसे टिक सकते है? राम अपने हाथोसे मुनिके नेत्र और मुख पोछने लगे। कहा जाता है कि सती सखुबाईके साथ अनाज पीसनेमें भगवानको कोई सकोच नही हुआ था। सचमुच जब प्रेम-भक्तिपूर्ण हृदय मिलते

ह तब लिंग वेश अथवा देशके भेद बाधक बनकर उन्हे अलग नही कर सकते।

इन मुनिराजका नाम सुतीक्ष्ण था। वे प्रसिद्ध अगस्त्य ऋषिके शिष्य थे। रामचद्र गृहस्थ है उनके साथ उनकी पत्नी भी है ऐसा कोई भेदभाव उनके मनमें पैदा नही हुआ। उन्हे तो राम साक्षात भगवान ही मालूम हुए। प्रेम ही भगवान है। और श्रद्धा ही परम बल है। जसी जिसकी श्रद्धा वसा ही वह होता है। इसी प्रकार जिस पर हमारी जसी श्रद्धा होती है वसा ही वह हमें लगता भी है।

अब राम सुतीक्ष्ण मुनिको साथ लेकर आगे बढे। मुनि थोड थोडे अतरके बाद रामके समक्ष खडे हो जाते और एकटक उनका मुख निहारने लगने। कभी वे नाचते कभी कूदते तो कभी जोरसे रो पडते और कभी फिरसे भावस्थ तथा स्थिर हो जाते। राम सीता और लक्ष्मणके लिए मुनिकी यह दशा कभी कभी एक पहेली बन जाती। परन्तु तीनोके चित्त प्रसन्नतासे उमड रहे थे। वातावरणसे एसा लगता था मानो वनके पशु और तरुवर भी मुनिकी यह बाललीला देखनेको अधीर हो उठे हो। मार्गमें अनेकविध मनोहर दृश्य आखोके सामनसे गुजर रहे थे परन्तु सुतीक्ष्ण मुनि तो केवल रामके मुखारविन्दको ही अनिमेष दृष्टिसे देखते रहे। और राम सीता तथा लक्ष्मण भी मुनिकी लीलाको देखकर मनमें तरह तरहके विचार करते हुए आगे बढ रहे थे।

२३

अशुभकी सूचना

तीनो चलते चलते अगत्स्य ऋषिके आश्रममे आ पहुचे। शिष्यने दौडकर गुरुजीको रामके आगमनके समाचार सुनाये। रामका नाम सुनते ही गुरुजी हर्षोन्मत्त हो गये। प्रेमका साम्राज्य कहा कहा पहुचता है! अगत्स्य ऋषिके मधुर स्वागतका आनन्द लेकर तथा सुतीक्ष्ण मुनिकी भक्तिसुधाका पान करके यह त्रिपुटी आगे वढी और गोदावरीके तट पर स्थित पाच वटवृक्षोके सामने पहुच गयी। कुछ ही समयमे वटवृक्षोकी छायामे उन्होने पर्णकुटिया वना ली और वही पडाव डाल दिया।

एक दिन राम, सीता और लक्ष्मण वैठे थे। प्रकृतिकी रम्य शोभा देखते देखते लक्ष्मण प्रश्न पूछते जाते थे और राम उनके प्रश्नोका उत्तर देते थे। रामके उत्तरोमे मानो ज्ञानका स्रोत वह रहा था! इतनेमे एक अपरिचित स्त्री वहा आई। उसकी आखोमे वशीकरणका जादू था। उसका मुख मोहक था। उसकी नाकसे अभिमान झलक उठता था। उसका लावण्य अनोखा था, किन्तु लावण्यसे अधिक लावण्यका मद उसके भीतर है, यह उसकी चाल परसे मालूम हुए विना नही रहता था। उसके कुछ अग यदि मोहक थे, तो कुछ अग घृणा उत्पन्न करनेवाले भी थे। उदाहरणके लिए, उसकी भवरो और शरीरके वाल कडे और घने थे। नखोकी वक्रता और पावोकी एडिया वेडौल लगती थी।

आकर वह राम और लक्ष्मणके पास खडी हो गई। राम कौन है और उनकी स्त्री कैसी है, ऐसा कोई विचार किये विना ही वह निर्लज्जके समान रामसे विलकुल सट कर खडी हो गई। उसके हावभाव और नाज-नखरो पर रामने जरा भी ध्यान नही दिया। फिर भी वह लज्जित होनेके वदले अधिक उद्धत वनने लगी, तव सीताको सहन नही हुआ। वे वोली

बहन, तुम मेरी ही जातिकी हो इसलिए दो शब्द तुमसे कहनेका मन होता है। लावण्य ईश्वरका देन है। ईश्वरकी इस देनका सदुपयोग ही शोभा देता है।

वह स्त्री कहने लगी, "मैं तुझे खूब जानती हूँ। चाहे जैसी स्त्री हो तो भी ईर्ष्या उसका जाति-स्वभाव है।" कैसी विचित्र बात थी? जैसा कविने कहा है ठीक वैसा ही हुआ, 'उपदेशो हि मूर्खाणाम् प्रकोपाय न शान्तये।' वह स्त्री अब मर्यादासे आगे बढ़ने लगी। सीताजीसे उसने कहा, "तेरे जैसी कितनी ही स्त्रियाँ मैंने देखी हैं। बड़ी सती बनने चली है। हमारी जातिमें खुली और स्पष्ट बात कहनेकी आदत होती है। हम किसीसे डरते नहीं। और हम ऐसा भी मानते हैं कि कुदरतकी किसी भी वस्तुका मनचाहा उपयोग करनेकी हमें स्वतन्त्रता और शक्ति मिली है। सदुपयोगकी हमारी व्याख्या यह है, इच्छाके अनुसार व्यवहार करना।" अब उसने रामकी ओर अपनी आँखें घुमाईं परन्तु वे रामके तेजको सह न सकीं। इसलिए नीचा मुँह करके वह आगे बोली, "मैंने सैकड़ों नर भ्रमरोंको मेरे पर पागल कर दिये हैं। परन्तु तुम्हारी मैं मनुहार कर रही हूँ। मेरा दुर्भाग्य है कि यह स्त्री मेरी प्रतिद्वन्द्विनी है।" अब लक्ष्मणकी ओर देखकर वह कहने लगी, "देखो, मैं आजीवन कुमारी हूँ। मेरे भाई समर्थ और शक्तिशाली हैं। मुझे किसी प्रकारकी कमी नहीं है। मैं मेरी स्वतन्त्रतामें विश्वास रखती हूँ। परन्तु तुम्हारे साथ लग्न जीवन स्वीकार करनेमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं [illegible] बनकर तुम्हारा मनोरंजन करनेमें अपनी सारी शक्ति लगा दूँगी। क्या करते हो? मेरा स्वीकार करो।"

इस स्त्रीकी यह धृष्टता और निर्लज्जता देखकर सीताजी क्षुब्ध हो गईं। रामका मौन बढ़ता गया, "मेरे कुछ पाप ही होंगे वर्ना क्या यह स्त्री मेरे सामने ऐसा बोल सकती थी? हे भगवान्, इस स्त्रीको निर्लज्ज बनाकर इस हद तक नीचे उतार और उसे दो। उच्छृंखलताको बारबार सहन कर लिया जाय तो समाजका कितना अधःपतन हो जाए? नारी तो परिवारका भूषण और राष्ट्रका

रत्न है। स्त्रीके व्रत, टेक और शील——सतीत्व——पर प्रजाकी उन्नतिका मुख्य आधार है। स्त्रीके लावण्यका, सुन्दरताका यह कैसा दुरुपयोग है!" राम किसी निश्चय पर पहुचे, इसके पहले ही लक्ष्मणका पुण्य-प्रकोप भडक उठा। कुछ ही क्षणोमे उन्होने उस स्त्रीके नाक-कान काट डाले। 'हाय, हाय' करती वह जमीन पर गिर पडी। रक्तसे धरती लाल हो गई।

"अरे, अरे लक्ष्मण, यह क्या करते हो?" ये शब्द रामके मुहसे निकले इसके पहले ही यह घटना हो गई। लक्ष्मणने ऐसा मान लिया था कि मेरे इस कामसे राम प्रसन्न होगे। परन्तु उनकी यह मान्यता गलत सिद्ध हुई। लक्ष्मण रामके चरणोमे गिरकर क्षमा मागने लगे। सीता मनमे यह सोचकर खुश हुई कि जो स्त्री अपने लावण्यका दुरुपयोग कर रही थी, उसका लावण्य छीन लेनेमे कुदरतकी वफादारी है।

प्रेममूर्ति रामने अन्तरके उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा. "लक्ष्मण, स्त्री चाहे जैसी हो, उस पर किसी भी कारणसे पुरुप हाथ उठावे यह सच्चा मार्ग नही है। फिर, हम तो इससे दूरके पुरुप हैं, इसलिए हमे इस पर अधिक विचार करना चाहिये। इस कृत्यके पीछे तुम्हारी जो शुभेच्छा है, उसका विचार करके ही तुम्हारी इस भूलके लिए मैं तुम्हे क्षमा करता हू। सीता और तुम दोनो यह समझ लो कि हमने अपने हाथो अपने अशुभका आजसे आरम्भ कर दिया है! यद्यपि इस स्त्रीको तो इसकी करतूतका ही बदला मिला है और सारा स्त्री-समाज यदि इससे सबक लेगा, तो कुल मिलाकर जगतको लाभ ही होगा, परन्तु ऐसी सजा देनेका सब कोई अपना अधिकार मान बैठें, तो जगतमे प्रेमके साम्राज्यके बदले ताडनका साम्राज्य फैल जायगा। कभी कभी कुदरतकी सजा मानवके द्वारा मिलती है यह सच है, परन्तु निमित्तमात्र बननेवाले मानवको तो पश्चात्ताप ही करना चाहिये। तभी अहिंसाकी प्रतिष्ठा जगतमे बनी रहेगी और मानव-समाज मानवताके मगलकारी मार्ग पर आगे बढ सकेगा।"

२४

रामके साथ लडनेकी तैयारी

नाक कान कटवाकर अपमानसे आहत हुई शूपणखा नथुन फुलाती और सिरके बालोंको नाचती हुई रावणके निवासमें आ पहुंची। उसके चेहरे पर रक्तकी बूंदें जम गई थी। नाकके सामने रखा हुई हथेली उसने हटा ली। अपने भाईको देखत ही उसकी आखोंसे चौधार आसू बहने लगे।

अपनी बहन शूपणखाको एसी खिन्न और कुरूप अवस्थामें देखकर रावणका क्रोध भडक उठा।

अरे शूपणखा यह क्या हुआ? कौनसा आदमी तेरी यह दुर्दशा करके भी जीवित बच सका है? भाई खर और दूषण कहा गय? अधीर बना हुआ रावण अपनी बहन शूपणखाके आसू पोछते पोछते बोला।

वे दो ही भाई ह और उनके साथ एक सुन्दर स्त्री है। उन तीनोके नाम क्रमश राम लक्ष्मण और सीता ह। दण्डकवनकी पंचवटीमें वे लोग रहते ह। मेरे नाक-कान लक्ष्मणने काट ह। और सीताने अपने देवरको ऐसा करनेसे रोका नही बल्कि इसमें रस लिया। खर-दूषण और हमारे सकडो सनिकोको उन दो भाइयोने मौतके घाट उतार दिया है। आज खर या दूषण कोई जीवित नहीं है। कहते कहते शूपणखा जोरसे रो पडी।

रावणके गुस्सेका पार न रहा। वह बोला उन भटकनेवाले साधुओंके पुजारी नवयुवकोंको म पहचान गया हू। मिथिलामें राजा जनकका शिव धनुष तोडनेवाले भी वे ही थ। उस स्त्रीको भी मने पहचान लिया है। अहा उसकी छवि और सुन्दरताको म आज भी भूला नहीं हू। इतना कहकर रावण कुछ क्षण रुक गया। फिर बोला उन दोनो भाइयोको पकडकर जलमें बन्द कर दू तभी मेरे मनको

शाति मिलेगी।" यह कहते हुए उसने अपने दात कटकटाये और एक हाथ पर दूसरे हाथका मुक्का मारकर अपना क्रोध भी प्रकट किया।

"भाई, इतना याद रखना कि वे लोग दूसरे सामान्य मनुष्योकी तरह नही है। मेरे हृदयकी वेदना तुमसे कैसे कहू? कान और नाक कट जानेके वाद अव इस शरीरमे वाकी क्या रहा? मेरा जीवन मुझे जहरके समान कडवा लगने लगा है। मै कैसे जीऊ? किसके वल पर जीऊ?"

वहनके हृदयकी आगको प्रकट करनेवाले ये शव्द सुनकर उसे ढाढस वधाते हुए रावण गरजा "मै भी समझता हू कि लक्ष्मणने तेरे नाक-कान नही काटे है, परन्तु मेरे काटे है। उसने हमारे सारे पौलस्त्य कुलकी प्रतिष्ठा पर हाथ डाला है। तेरा यह भाई जीवित है तव तक तुझे कोई चिन्ता नही करनी चाहिये। वोल वहन, तू क्या चाहती है? वालि जैसे महावलीके साथ टक्कर लेनेवाला मै उन लोगोसे दवनेवाला नही हू।" इतना कहकर उसने जोरसे धरती पर पैर पछाडा और आसपासकी धरतीको हिला दिया।

"भाई, मेरी इच्छाकी वात यदि तुम पूछते हो, तो मै यही चाहती हू कि तुम उस सीताको पकडकर लकामे ले आओ। मै उसे लकामे देखूगी, तभी मुझे शाति मिलेगी, तभी उन दो भाइयोकी आख खुलेगी। वैसे, उन दोनोको दूसरी किसी वातकी परवाह नही है। मृत्युको तो वे लोग हथेली पर लेकर घूमते है। उन दोनोको तुम कैद करो या मार डालो, उससे मेरे मनको शाति नही मिलेगी। मेरा मन तो तभी प्रसन्न होगा जव तुम सीताको लकामे ले आओगे।"

अव मन्दोदरीसे चुप न रहा गया। वह वोली "ननदजी, कोई स्त्री दूसरी किसी स्त्रीकी लाज-मर्यादा नष्ट करनेके लिए किसी भी पुरुषको उत्तेजित करे यह उचित नही है। इसे मै हमारी समस्त स्त्री-जातिका द्रोह मानती हूं। कुछ दीर्घ दृष्टिसे सोचकर और चाहे जो करनेको कहो, परन्तु ऐसी वात कभी न कहो।" रावणसे मन्दोदरीने कहा· "जिस पुरुपकी शक्तिसे स्त्रियोकी रक्षा नही होती, उसकी शक्तिको दुनियामे आदर नही मिलता, तिरस्कार ही मिलता है। आपकी

अर्धांगिनीके नाते आपको धर्म बतानेका कठोर कर्तव्य पालन करनेमें यदि आपके प्रति अविनय हो रहा हो तो मैं आपसे क्षमा मांगती हूं। आज आप भले राक्षस कहलाते हों परन्तु मूलतः आप पुलस्त्य मुनिके वंशज हैं। आपको मुझे यह भी याद दिलाना चाहिये कि काम विकारको जलाकर भस्म करनेवाले और उस भस्मको अंग प्रत्यंग पर लेप करनेवाले सौम्यमूर्ति भगवान शिवके आप परम भक्त हैं। आपको जो समृद्धियां प्राप्त हुई हैं उनका उपयोग जगतके कल्याणमें करनेकी ही आपको भगवान शंकरकी अनुमति हो सकती है।

शूर्पणखाने मंदोदरीके सामने अपनी लाल लाल आंखें निकालीं। वह कुछ बोले इससे पहले ही रावण बोल उठा — मंदोदरी मन्दोदरी अब बस हो गया। तुम्हारी समझदारीको मैं अच्छी तरह जानता हूं। लेकिन इस समय वह मेरे कामकी नहीं। अपनी शक्तियोंका मैं कहां और कैसे उपयोग करूं इसकी सलाह मैं तुमसे मांगू तब तुम मुझे अपनी सलाह देना। मेरी अर्धांगिनीके नाते तुम्हारा जो अधिकार है उसे मैं सुरक्षित रखता हूं। परन्तु पद पद पर यदि तुम इस प्रकार हस्तक्षेप करती रहोगी तो मैं उसे सहन नहीं करूंगा। तुम्हें मेरा आचरण पसन्द न हो तो तुम मुझसे अलग हो सकती हो। एक पराया पुरुष तुम्हारी सगी ननदके नाक-कान काटता है इसकी तुम्हें कोई चिंता और दुःख नहीं होता लेकिन उस परायी स्त्रीकी शूर्पणखा जरा बात ही करती है वह भी तुमसे सहन नहीं होती। यह तुम्हारा कैसा धर्म और पातिव्रत्य है?

शूर्पणखाके चेहरे पर अब समाधानके फूल खिल गए। उसने अपने भाईको पाकर समर्थनमें मंदोदरीके सामने जीभ निकाल दी और अपने विचारको यह भाव बताया कि मेरा भाई तेरे भुलावेमें आ जाय ऐसा नहीं है।

मंदोदरीने समयको पहचान लिया। परन्तु अलग हो जानेकी बातसे उसके हृदयको गहरा धक्का लगा। उसकी आंखें छलछला आईं। विनम्र स्वरमें वह बोली — आज अलग हो जानेकी बात आपने कही सो कही परन्तु आगे कभी कृपा करके ऐसी बात न कहें। मन

अपना यह शरीर एक पुरुषको ही सौंपा है, इस जीवनमें वह दूसरेको नही सौंपा जा सकता। पतिव्रता स्त्रीके इस अधिकारको आपने स्वीकार किया है कि वह अपना मत स्वतत्रतासे पतिके सामने प्रकट कर सकती है। इसीलिए मै इतना कहती हू और जब तक आप इस अधिकारको वापिस नही ले लेते, तब तक मै ऐसी बात आगे भी कहूगी। इतना मै जरूर कहूगी कि अपनी वाणीमे मैने अधिकसे अधिक शिष्टता, सभ्यता और नम्रताका पालन किया है, और सदा ही इनका पालन करूगी। हमारी शूर्पणखा बहनने उन दोनो भाइयोके साथ जो व्यवहार किया, उसका सारा वर्णन मैंने अपनी इन ननदजीसे सुन लिया है। इनके नाक-कान काटे गये, इसका मुझे एक भौजाईके नाते ही नहीं परन्तु एक स्त्रीके नाते भी बडा दु ख हुआ है। परन्तु एक ओर चरित्र-भगको रखू और दूसरी ओर ससारके किसी भी सुख-दु ख या वस्तुको रखू, तो दोनोमे मै चरित्रके पालनको ही प्रधानता दूगी। राम, लक्ष्मण और सीताके चरित्रकी बाते स्वय शूर्पणखा बहनसे आप सुनेगे, तो मेरी बात आपके गले उतरनेमें देर नही लगेगी। न्यायकी तराजूमे अपने या परायेका भेद नही होता। बस, मैंने अपनी शक्ति और मर्यादाके अनुसार अपने धर्मका पालन कर दिया। मेरी बाते आपको अनुचित लगती हों, तो मै बार-बार आप दोनोसे क्षमा मागती हू।" इतना कहकर मन्दोदरी भीतरी खडमे चली गई और अपने गृहकार्यमें लग गई।

अब केवल भाई-बहन दोनो ही रह गये। मन्दोदरीके वचन वातावरणमे गूज रहे थे। रावण थोडी देरके लिए तो विचार-मन्थनमे पड गया, परन्तु शूर्पणखाका कुरूप चेहरा देखकर वह फिरसे क्रोधावेशमे बहने लगा "बहन शूर्पणखा, जब तक तुझे चैन नही पडेगा तब तक मुझे भी चैन नही पडेगा। लक्ष्मणने जैसे हाल तेरे किये वैसे मै सीताके भले न करू और उसे आदरके साथ लंकामे रखू, परन्तु हमारे कुलकी प्रतिष्ठा और इज्जतके खातिर सीताको एक बार तो लकामें लाना ही होगा। मुझे खर, दूषण और दूसरे चुने हुए साथियोकी मृत्युका इतना दु ख नही होता, जितना तेरी मनोवेदनाको देखकर होता है।" इतना कहकर रावणने एक दीर्घ नि श्वास लिया। भाईके कपाल पर जमी हुई

पसीनेकी बूँदें अपने आँचलसे पोंछते पोंछते शूर्पणखा बोली। "तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है, भाई! कहो भी क्यों न हो। आखिर तो तुम मेरी माँके ही बेटे हो न!" और उसने अपने भाईकी कन्धेको उसकी पीठ थपथपाई और कहा, "भाई सावधान रहना। उन लोगोंके सामने केवल बल या बलसे भी काम नहीं चलेगा। छलकी भी आवश्यकता होगी। दोनों भाई जब तक साथमें साथ होंगे तब तो तुम्हारा कोई वश नहीं चलेगा। और वह सीता भी शक्तिशालिनी और चतुर है। अतः उनमें छलके साथ काम और शक्ति लगेगी तो ही मनचाहा काम पूरा होगा। इन सब बातोंका विचार करते हुए मुझे लगता है कि मामा मारीच हमारे इस काममें बड़े सहायक सिद्ध होंगे।" इतना कहकर शूर्पणखा यह मानकर वहाँसे चली गई कि मेरी दुराशा सफल होगी। और रावण सीताके अपहरणके काममें मामाकी सहायता लेनेके विचारमें डूब गया। कविने ठीक ही कहा है, "विनाशकाले विपरीतबुद्धि।"

२५

मायावी मृग

"भाई रावण, तुम अभी भी समझ जाओ तो हमारा लाभ है। रामके साथ शत्रुता बाँध कर हम अपनी ही जातिके नाशको निमंत्रण देंगे।" मामा मारीचने अनुरोधके स्वरमें रावणसे कहा।

"मामाजी, बस कीजिये। मैं यह सब उपदेश सुननेको तैयार नहीं। मुझे सीताको लंकामें लाना ही है। यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

"सीताको लंकामें लाना तो बायें हाथका खेल है। परन्तु उसके परिणामकी कल्पना करके मैं काँप उठता हूँ। हम साक्षात् अग्निसे लड़ाई मोल लेनेको तैयार हुए हैं।"

रावण बीचमें ही बोल उठा, "मामाजी, मामाजी, मैं सारा खतरा उठानेको तैयार हूँ। आप, मैं और सारी लंका भी भले नष्ट हो जाय परन्तु जब तक मैं सीताको लंकामें नहीं लाऊँगा तब तक मुझे चैन नहीं

पडेगा। परलोककी मुझे लेशमात्र भी चिन्ता नही है। सत्य-असत्यकी भी मुझे बिलकुल परवाह नही है।"

रावणके इन वचनोने मारीचको निरुत्तर कर दिया। मामा-भानजे दोनोने योजना बना ली, उस पर अमल करनेकी युक्ति सोच ली और दोनोने रामके निवास-स्थानके पास पडाव डाला। 'जो दूध सन्तके पेटमे जाकर अमृतका सर्जन करता है, वही दूध सापके पेटमे जाकर जहर उत्पन्न करता है।'

एक बार सीताजीने रामचन्द्रसे कहा "आर्यपुत्र, पता नही क्यो आजकल मेरे मनमे ग्लानि रहा करती है। मेरी आखोको आकर्पित करनेवाली यह वनलक्ष्मी भी मुझे उतनी मोहक नही लगती। इन फलोकी मीठी सुगन्ध और मनोहारिता कहा चली गई? इस नदीकी वह मोहकता कहा चली गई? रातमे मै एकटक आकाशके इन तारोको निहारा करती हू, परन्तु उनमे भी पहले जैसा प्रकाश मुझे नही दिखाई देता। मेरे अग-प्रत्यगमे कपकपी-सी छूटती रहती है। मेरा हृदय किसी अज्ञात भयसे काप उठता है। वैसे सोचती हू तो जीवनमे कोई कमी मालूम नही होती। जहा आपके जैसे शिरच्छत्र हो और लक्ष्मण जैसे लाल हो, वहा मुझे किस बातकी कमी हो सकती है?"

लक्ष्मण भी बोल उठे "बडे भैया, मेरे मनमे भी कोई अगम्य चिन्ता आजकल बनी रहती है।" शूर्पणखाके प्रसगके बाद रामके हृदयमे तो मन्थन चला ही करता था। परन्तु वे राष्ट्रके उस युगके घड-वैया थे। निराशाकी दुनियामे आशाका प्राण फूकनेवाले राम थकावट अथवा घबराहटका अनुभव करे, तो कैसे चल सकता था! उन्होने सीता और लक्ष्मणको अपने वचनोसे धीरज बंधाया।

दिन तेज गतिसे बीत रहे थे। पवित्र त्रिवेणीके समान राम, सीता और लक्ष्मण जगलमे मगलका आनन्द भोग रहे थे। देवराज इन्द्रको भी ईर्ष्या हो, ऐसा आनन्दमय उनका जीवन था। त्यागकी भावनामे निरन्तर ओतप्रोत रहनेवालोको किस बातका अभाव हो सकता है? त्रिलोककी सम्पदा उनके चरण चूमे तो कोई आश्चर्य नही। एक

हाथ तो वापिस नही ही लौटूगा। मृगके सिर पर वाण लगे या पाव पर, परन्तु उसे गिराऊगा जरूर।" इस तरह राम जैसे समर्थ सत्यार्थीको भी इस वातका भान न रहा कि अयोध्या छोडकर वे किसलिए वनमे आये हैं? कौनसे कामके लिए धनुष-वाणका उपयोग करना उचित है? और यहा किस कामके लिए वे कर रहे हैं? अपनी धुन ही धुनमे वे दौडते दौडते छलागे भरते हुए मृगके पीछे वहुत दूर निकल गये।

लक्ष्मणकी चिन्ता वढने लगी। एक ओर वे सोचते थे कि सीताजीकी सेवाको छोडकर यहासे कैसे जाऊ? दूसरी ओर, रामकी सेवाका जो अवसर प्राप्त हुआ था उसका लाभ उठानेको दौड़ जानेका उनका मन होता था। इस तरह लक्ष्मण दुविधामे पड गये थे। परन्तु वे वहासे हटे नही।

इतनेमे ही रामके वाणसे स्वर्णमृग घायल हो गया। घायल होते ही उसने ऐसी भयकर चीख मारी कि सीताजीका धैर्य खूट गया। अकुलाकर वे वोली "लक्ष्मण, तुम कुछ सुनते हो या कानोमे उगली डालकर वैठे हो?"

"माताजी, सुनता तो हू। परन्तु इसी विचार-मन्थनमे पडा हू कि आपकी सेवाको छोडकर रामके पास जाऊ या न जाऊ।"

"ससुरजीको तो खो दिया, अव कही पतिको भी न खो वैठू"—इस आशकामे पडी हुई सीताने पुत्रके वजाय देवर मानकर लक्ष्मणको गभीर ताना मारा "मैं सव कुछ समझती हू, लक्ष्मण! उगलीसे नख जुडे हुए हो तो भी आखिर उनसे अलग ही है न?" लक्ष्मणमें उग्रता तो थी ही। सीतामाताके ऐसे वचन जीवनमे उन्होने पहली वार सुने। उन्होने क्रोधमे ही शस्त्र धारण किये और जिस दिशामे राम गये थे उसी दिशामें दौडे। कुछ दूर जाकर मानो कुछ याद आया हो इस तरह वापस आये। सीताको प्रणाम करके उन्होने इतना कहा "मा, प्रभुतापूर्ण रामचन्द्र यहा नही है, मैं भी जा रहा हू। यहा विरोधियोकी ओरसे गुप्त धमकिया मिलती रहती हैं। लम्वे समयसे खतरेकी आगाही भी मिलती रहती है। आप सावधान रहिये।"

जवाबमें सीताजीने गुस्सेमें उत्तर दिया 'तुम अपने बड़े भाईकी चिंता करो। मेरी चिंताकी जरूरत नहीं। अपनी रक्षा करनेकी शक्ति और कुशलता मुझमें है।" ये प्राणघातक बाणोंके समान तीखे वचन पूरे सुननेसे पहले ही लक्ष्मण सीताकी आंखोंसे ओझल हो गये। सीताको इसका विचार ही नहीं आया कि मेरे मुंहसे क्या निकल गया। उन्हें तो केवल रामकी और रामसे भी अधिक उस स्वर्णमृगकी कायाके कोमल स्पर्शकी लगन लगी हुई थी। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।' ठीक यही बात हुई। वह कैसा करुण और कठोर प्रसंग था!

२६

सीता-हरण

रावणको अपनी चालबाजीके पासे सीधे पड़ते मालूम हुए। राम और लक्ष्मणके चले जानेके बाद रावण संन्यासीका वेश धारण करके पंचवटीके पास आ पहुंचा।

'भिक्षां देहि' कहते हुए उसने अपना करपात्र आगे बढ़ाया।

संन्यासीको आया देखकर सीताजी सुन्दर ताजे फल और शाक-भाजी लाईं और सिर झुकाकर नम्रभावसे संन्यासीके वशमें आये हुए पुरुषके भिक्षापात्रमें सब चीजें उंड़ेल डाल दीं।

'यह क्या है? वह क्या है?' पूछते पूछते रावणने ऐसा ढोंग किया मानो वह अमुक ही जातिके फल खाता हो और उसने सीताजीको बातोंमें लगा दिया।

'इस उमरमें आपने संन्यास क्यों लेना पड़ा?' सीताजीने सरल भावसे पूछा। उस जमानेमें वानप्रस्थाश्रमके बाद ही संन्यास ग्रहण करनेकी प्रथा प्रचलित थी।

रावण बोला 'मैंने एक प्रकारकी विद्या सिद्ध करनेके लिए यह दीक्षाव्रत धारण किया है।' इस उत्तरसे सीताजीको कुतूहल

हुआ। अवसर देखकर रावणने कहा "तुम यहा अन्य दो पुरुषोके साथ रहती हो और वे दोनो रघुकुलके वशज है। वे राज्य, धन-दौलत और परिवारको छोडकर इस वनमे क्यो दुख भोग रहे है?"

"यह सब आपने कैसे जाना?" सीताने आश्चर्यसे पूछा।

"मै उन्हे बचपनसे जानता हू। उनमें जो बडा भाई है, उसे तो मै नखसे शिख तक जानता हू। आज वह कहा है और क्या कर रहा है, यह भी मै जानता हू।" यह सुनकर सीताजी चमक उठी। बोली. "सन्यासी होकर ऐसी बाते करते तुम्हे लज्जा नही आती? हा, मै समझी। जगलके सन्यासी आखिर जगली ही होगे न!"

"अरी माई, अपनी विद्या-साधनाके बल पर तुम्हारे भलेके लिए ही मै ये बाते कह रहा हू। तुम सुनना न चाहो तो मै यह चला।" कहकर रावणने चलनेका ढोग किया।

"नही, नही, सन्यासी महाराज! मेरी गलती हो गई। आप क्षमा करे। आप प्रसन्न हो। मेरी आपसे बहुत कुछ सुननेकी इच्छा है। आप विराजिये।" इतना कहकर सीताजीने उसके बैठनेके लिए आसन रखा। सीताके इस कथनमे भोलापन था। सन्यास-स्वरूपके प्रति भक्तिभाव था। कुछ भय था और कुछ प्रलोभन भी था।

सीताकी इस भाषासे रावणने यह निष्कर्ष निकाला कि यह मेरे प्रति आकृष्ट हो गई है। जैसी जिसकी दृष्टि वैसा ही वह जगतको देखता है! उसे तो यही चाहिये था। वह आसन पर बैठनेके बदले थोडा आगे बढा। सीता भी अनुनय-विनय करती हुई कुछ दूर तक उसके पीछे पीछे गईं। राम-लक्ष्मण-सीताकी त्रिवेणीके आश्रम-वातावरणकी सीमा समाप्त हुई। अब रावणने सन्यास-वेश उतार कर अपना सच्चा वेश धारण किया। देखते ही देखते एक विमान वहा आ पहुचा। सीताजी स्वस्थ हो इसके पहले ही रावणने आज्ञा की "बैठ जाओ विमानमे।" पता नही क्यो, सीताजी बिना किसी आनाकानीके यन्त्रवत् विमानमे बैठ गईं और विमान उडने लगा।

अब सीताको होश आया। वे स्वस्थ हुईं तब उन्हे रावणकी धोखेबाजी समझमें आई। अब उन्हे भान हुआ कि यह सन्यास-वेशधारी

पुरुष दूसरा कोई नहीं राक्षसी वृत्तिवाला महान राजा रावण है। मुझसे बडी भूल हुई। अब मैं क्या करूं? क्या विमानसे कूद पडूं? परन्तु यह तो आत्महत्या होगी और आत्महत्या महापाप माना जाता है। मेरे राम अब मुझे कहां मिलेंगे? मैं राससे कहां मिल सकूंगी? कहां अयोध्या, कहां मिथिला और कहां दण्डकारण्य! और कहां यह विमान वास! ठेठ स्वयंवर-समारोहसे लेकर आज तककी सारी घटनायें एक एक करके सीताकी आंखोंके सामनेसे चलचित्रकी तरह गुजरने लगी। सारे चित्रपटमें राम, राम और केवल रामके सिवा उन्हें दूसरा कुछ भी दिखाई नहीं दिया। आंखें बंद करके सीताने रामकी छवि मनमें खडी की। परन्तु आंखें खोलते ही सामने रावण बैठा दिखाई दिया। कहां पवित्र मूर्ति सत्यनिष्ठ राम और कहां कपटवेशधारी अधम मूर्ति रावण! किस पापके कारण आज मुझे रावणके साथ एक ही वाहनमें बैठना पड रहा है? अब वह स्वर्णमृग सीताकी आंखोंके सामने आ खडा हुआ। अहा उस मृगकी माया पर मुझे कैसे मोह हो आया? मिथिला और अयोध्याका वैभव विलास छोडते समय मुझे जरा भी आघात नहीं लगा, एक क्षणमें मैंने प्राणप्रिय सगे सम्बन्धियोंका त्याग कर दिया। तब यह तुच्छ-सा लोभ मेरे मनमें कैसे पैदा हो गया?

क्षणभरकी असावधानी और अजागरूकता भी मनुष्यको कहांसे कहां ला पटकती है!

और फिर तो रामको स्वर्णमृगके पीछे भेजनेकी बात, लक्ष्मणको उकसानेकी बात, अपने कडवे वचन, रावणके दंभ और छलको पहचाननेकी अक्षमता, संन्यासीके साथ हुए अपने वार्तालापकी क्षतियां और विमानमें बैठने तककी भूल-परम्परा सीताको याद आई। उनके पश्चातापका पार न रहा। अब क्या किया जाय यह सोचते सोचते सीताने अपना सिर दो हाथोंके बीच रख लिया।

प्रथम उन्होंने स्त्री-सुलभ स्वभावसे रावणको खूब मनाया, भाई मुझे अपने आश्रममें छोड आओ। ऐसा न करो तो इसी जगह विमान नीचे उतार दो। रामके बिना मुझे एक क्षणके लिए भी चैन नहीं

पडेगा।" आचल पसार पसार कर सीता रावणसे अनुनय-विनय करने लगी। रावण मुसकराता रहा। उसने कोई उत्तर नही दिया।

सीताने भी समयको पहचान लिया। उन्होने अपने वन्य-आभूषण विमानसे नीचे फेकना शुरू किया। वे रावणके सामने अपने सतीत्वका प्रताप दिखाने लगी "रावण, सबसे पहले मै तुझसे कह देती हू कि इस शरीरमे प्राण होगे तब तक तू इस शरीरके सामने एकटक देख ही नही सकेगा। याद रखना, हम सतियोके शरीर आगकी धधकती ज्वालाओके समान होते है। ये ज्वालाए कुदृष्टि रखनेवालेको दूरसे भी जलाकर भस्मीभूत कर सकती है।"

परन्तु रावणका अभिमान उसे ये बाते समझने नही देता था। सीताजी अकुलाई "क्या सतीत्व पर छलकी जीत होगी?"

पाठक जानते है कि लोभके अशके कारण ही अभी तक छलकी जीत हुई है।

२७

गृध्रराज जटायु

घरर . घरर आवाज करता विमान आकाशमे दौडा जा रहा था। सीताजी रावणसे टक्कर ले रही थी। इतनेमे विमानका यह दृश्य आकाशमे ऊचे उड रहे एक विशालकाय गिद्धने देखा। उस गिद्धका नाम जटायु था। वह एक पक्षी था और मासभोजी पक्षी था, परन्तु उसे भी अपनी स्वाभाविक बुद्धिसे इतना समझमे आ गया कि अन्यायका सामना करना मेरा धर्म है और इस धर्मके पालनका अवसर मुझे मिला है। जटायु प्राणोकी बाजी लगाकर इस धर्मकार्यमे जुट गया और उसने विमानको रोक दिया। जटायुका यह विचार था कि सीताजीको अपने कधे पर बैठा लूगा और विमानको नीचे गिराकर चकनाचूर कर दूगा। उसने अपने पख फैलाये। गृध्रराज अपनी तीखी चोचसे विमान पर प्रहार करनेमे लग गया। सीताजी यह बात समझ न पाईं कि उन्हे गिद्धके फैलाये हुए पंखों पर बैठ

जाना है। इतना जरूर उन्होंने समझ लिया कि यह रावण ही सीता को हर कर लिये जाता है। रावण जटायु पर और विमान पर आई आपत्ति को ताड़ गया। उसने एक हाथसे विमान पर अच्छी तरह नियंत्रण रखा और दूसरा हाथ जटायुके मुखमें सीधा घुसेड़ दिया। गृध्रराजने अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने मुहसे उसे पकड़ लिया, परन्तु इस झपटा झपटीमें उसका एक पंख कट गया। मुंहसे हा प्रभु! वह कर अपना प्राण त्यागते हुए वह धरती पर गिर पड़ा।

रावणने आपत्ति टल जानेकी निश्चिन्तता अनुभव की। दीर्घ निश्वास खींचा सीताकी ओर देखकर अट्टहास किया विमानको गति बढ़ाई और उसे अधिक ऊंचाई पर ले जा कर पूरी गतिसे छोड़ दिया। सीताजीकी चिंता बढ़ती जा रही थी।

गृध्रराजकी इस करुण मृत्युसे सीताके हृदयको बड़ी वेदना हुई। मन ही मन वे बोल उठीं भाई गिद्ध तूने भी मेरे लिए प्राण खोये। मैं तेरी अंतिम क्रिया भी नहीं कर सकी। राम राम! कर्मकी गति न्यारी है।

रावणका विमान सीताको लेकर तेज गतिसे आगे बढ़ रहा था। मार्गमें अनेक रमणीय दृश्य दिखाई देते थे परन्तु रामकी मधुराकृति कहीं दिखाई नहीं पड़ती थी। रामके बिना सारा जगत सीताको सूना सूना लगता था। जो कुछ प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता उसे कल्पनामें देखनेका सीताजी प्रयास करती थी। पर्णकुटी स्वर्णमृग राम लक्ष्मण!

मिथिला अयोध्या दण्डकारण्य! इस तरह अनेक कल्पना चित्र सीताके स्मृतिपट पर उठते और विलीन होते थे। जटायुकी करुण मृत्युको भी वे कैसे भूल पाती? निर्भयता और मानवताकी मूर्ति गृध्रराज! क्या वह जीयेगा? कोई आशा नहीं। बेचारेने मेरे लिए अपने प्राण गवाये। लेकिन मरते समय मैं उसके पास न रह सकी। राम ऐसे समय उसके पास पहुंच जायें तो उसे कितनी सांत्वना कितनी शान्ति मिले!

इस प्रकार अनेक विचार विमानकी गतिसे भी कहीं तेज गतिसे सीताके मानस पट पर उठते और विलीन हो जाते थे। अन्तमें उनका

मन राम पर जाकर टिक गया। वे राममय हो गई। मुखमे राम, स्मृतिमें राम, कल्पनामे राम, हृदयमे राम! केवल दृश्य जगतमें ही रामका दर्शन दुर्लभ हो गया था।

उधर रावणके प्रहारोसे आहत होकर धरती पर मरणासन्न पडे हुए गृध्रराज जटायुके प्राण किसी भी तरह शरीरको छोड नहीं रहे थे। सारा शरीर घावोसे लहू-लुहान हो गया था। इस अत्यन्त वेदना-पूर्ण अतिम स्थितिमे भी जटायुकी आत्माका आनन्द उसके मुह पर दिखाई देता था। उसका शरीर मुरझाकर फीका पड़ गया था, परन्तु मुख पर प्रसन्न मुसकान फैली हुई थी। वह ऐसा दिखाई देता था, मानो कर्तव्यकी वलिवेदी पर स्वेच्छासे चढा हुए कोई महारथी योद्धा हो, और स्वर्गकी वरमालाको इसीलिए अस्वीकार कर रहा हो कि उसके उदात्त त्यागकी कदर करनेवाला कोई वैसा ही महासेनापति आकर उसके माथे पर अपना मीठा हाथ फेरे!

२८

रावणके अन्तःपुरमे

यह कथन सर्वथा सत्य है कि चित्त स्वस्थ होता हे तभी अन्त करणसे कोई उदात्त विचार वाहर आता है, और कोई भव्य आदर्श सामने उपस्थित होता हे तभी चित्त स्वस्थता अनुभव करता हे। जानकीके सामने अव रामके शरीरकी अपेक्षा रामकी विशेप उज्ज्वल टेक हमेशा वनी रहती थी। इस कारणसे उनमें विलकुल नया उत्साह और नई स्फूर्ति आ गई। उन्होंने मनमें दृढ निश्चय कर लिया कि अव रावणके सामने रोने-गिडगिड़ाने या उसकी खुशामद करनेकी विलकुल जरूरत नहीं। रामसे तुरन्त मेरा मिलाप होनेकी अव कोई सभावना नहीं हैं। मुझे अकेले ही न केवल रावणका परन्तु उनके सारे समाजका सामना करना होगा। इसमें प्रलोभनोके आकर्पण और मुसीवतोके काटे दोनो पार करने होंगे। एक दृष्टिसे तो जो हुआ अच्छा

ही हुआ। आज तक मने पति या अय सम्बन्धी-जनाके सहारे अपन शाल अपन सतीत्वकी रक्षा का है, अब नाल्की रक्षा मेरी कडी कसौटी करनवाली है। एक ओर राम जस प्रममूर्ति गिरच्छत्रका और लक्ष्मण जस पुत्रका वियोग दिन रात मुझे सतायेगा। दूसरी ओर इस नर राक्षसके आक्रमणस अपन स्त्री गरीरकी पद पद पर रक्षा करनी होगी। अब समझमें आता है कि प्रमपथमें केवल त्याग अथवा समपण ही पर्याप्त नहा होता। सम्पूण ननिक साहस और किसी भी परिस्थितिमें चित्तकी समता बनाये रखनका याग भी आवश्यक होता है।

एस ऐसे अनक विचारा और निश्चयास सीताकी सकल्प गक्ति दृढ़ हाती गई। आत्माकी गहराईस प्राप्त इस सहज सातके कारण उनका मन मेरु पवतकी दृढ़ता और स्थिरता अनुभव करन लगा। उ ह जगतके सारे भौतिक सम्बन्धाम परे रहनवाली अव्यक्त चेतनाका स्पग होन लगा और कुछ ही क्षणामें उनके मुख पर तेजपुज चमकने लगा। उनक अन्नमय और प्राणमय कोगकी गक्तिया उनक मन पर आक्रमण करनके बदले दासी बनकर उनका आज्ञाका पालन करन लगा। रावणने सीताजीके सामन कुछ दर एकटक दखना चाहा परन्तु उनके तेजके सामने उसकी आखें चौधिया कर बन्द हो गइ। किसी अगम्य रीतिसे उसकी आत्मा सीताजीकी गुद्ध आत्माके समक्ष पराभूत हो गई नत हो गई। क्षणभर तो उसके मनमें यह भय पठ गया कि इस प्रबल ज्योतिकी ज्वालामें जलकर वह वहीं भस्मीभूत न हो जाय? परन्तु य भाव रावणके मनमें अधिक समय तक नहीं टिके। तामस गुणकी अधोमुखी गक्तिका न्हराने उस चारो ओरस घेर लिया और वह अकडकर अपनी मूछा पर ताव देने लगा। सती सीताके स्वाभाविक प्रभावने रावणके सच्चे तेज पर पूरी तरह अधिकार जमा लिया था। इसका भान उस हुआ भी था।

यह प्रश्न उठ सकता है कि यह भान हो जानेके बाद भी रावण बाहरी रोब दिखानका मूखता क्या करता होगा? प्रकृतिके दुबल तत्त्व इसी प्रकार अपना अस्तित्व सिद्ध करनक लिए मिथ्या प्रयत्न करत हैं। हम अपन भीतरके और अपने आसपासके सयाने समझनकी और

असत्योसे मुक्त रहनेकी थोडी भी शक्ति अपनेमे वढाये तो कितना लाभ हो! सीताजीका यह प्रसग केवल स्त्री-समाजको ही नही, परन्तु समस्त मानव-समाजको आध्यात्मिक शक्तिकी एक अद्‌भुत प्रतीति करानेवाला प्रसग है।

सीताजीने अव अपने वन्य आभूषण भी उतार डाले। उन्होने अधिकसे अधिक सादगी अपना ली। भावनाका तेज अव इस सादगी-मे भी नया सौन्दर्य प्रकट कर रहा था। विपरीत परिस्थितियोमे जव एक वार सत्य हाथमे आ जाता है, तव जहा देखो वहा कल्याण और सच्चा सौन्दर्य ही लहराता दृष्टिगोचर होता है। कदाचित् इसी-लिए अनुभवी महापुरुषोने 'सत्य शिव सुन्दरम्'को आत्म-स्वरूपके विशेषण माना होगा। इस स्थितिमे भी सीताकी आत्मा सहज रूपमे निजानन्दका अनुभव करने लगी। कुछ समय वाद सीताने एक वार फिर अपने तेजस्वी नेत्रो द्वारा रावणकी शक्तिका अन्दाज निकाला और विमानकी खिडकीसे नीचे भूमितल पर देखा। अव तो यह सारा भूमि-जगत उन्हे अपना ही लगने लगा। नीचेके विभिन्न दृश्य निहारती हुई सीता विमानमे आगे वढ रही थी। एक स्थान पर वन्यजनोका एक समूह विचार-विमर्श करता हुआ उन्हे दिखाई पडा। उस समूहकी नजर भी विमान पर जम गई। दोनोने परस्पर आत्मीयता अनुभव की। सीताजीके मनमे एक क्षणके लिए यह भाव उठ आया कि वन्यजनोका यह समूह मेरी सहायता करे तो कितना अच्छा हो! परन्तु उन्होने तुरन्त इस विचारको दवा दिया और केवल अपने आभूषण नीचे डालकर ही सन्तोष माना। नीचेके समूहमे से एक चपल और चतुर आदमी उठा। उसने विमानकी ओर दृष्टि गडाकर सीताजीको प्रणाम किया और उनके आभूषण उठाकर अपने समूहके पास ले गया। सव लोगोने आभूषणोकी पूजा की और उन्हे सभाल कर उचित स्थान पर रख दिया।

अव विमान पम्पा सरोवर पार कर चुका था। उसकी गति वढ़ गई थी। पर्वत-मालाको देखकर लकाके नजदीक आ पहुचनेके विचारसे रावण आनन्दित हुआ। कुछ ही समयमे अक्षय जलसे भरा महासागर

दिखाई पडा और विमान उसके विशाल पट पर उडने लगा। महा सागरकी उत्तुग लहर गर्जनाके साथ उठती और पुन उसमें समा जाती थी मानो वह अपनी सहस्रो जिह्वाओसे रावण पर धिक्कार बरसाता हो और सीताजीकी ज्योतिर्मयी शक्तिको नमस्कार कर रहा हो। परन्तु रावणको महासागरके धिक्कार और तिरस्कारकी चिता कहा थी? अतमें लका नगरी आई। विमान रावणके अन्त पुरके समीप आकर रुक गया। रावणको अपने इस कृत्यके कारण अपने परिजनोका भी डर लग रहा था। उसने अत पुरके एक दूरके खडमें सीताको प्रवेश कराया। रानी या दूसरी कोई परिचारिका यहा न आने पाये एसी कडी आज्ञाके साथ रावणने सीताके खडके चारो ओर राक्षसियोका पहरा बठा दिया। ये राक्षसिया स्त्रीजातिकी होते हुए भी बडी विचित्र और भयकर थी। सीताजीने अत्यन्त वात्सल्यपूर्वक उनकी ओर देखा, परन्तु उनमें कहा भी आत्मीयताका भाव दृष्टिगोचर न हुआ। बस वे रावणकी आज्ञासे सीताकी कोई भी बात सिर आखो पर उठानेके लिए सदा तयार रहती थी। तरह तरहके पक्वान्न विविध प्रकारके रत्नजडित आभूषणो और अनेक प्रकारके सुदर वस्त्रोका सीताके सामने ढेर लगा रहता। परतु सीताका हृदय एक क्षणके लिए यह सब देखकर व्यथा अनुभव करता और दूसरे ही क्षण व्यथाको भूलकर नई परिस्थितिका सामना करनेकी उन्हे प्रेरणा देता।

२९

सीताकी शोधकी चिन्तामे

रामके वाणके प्रहारसे गिरते ही मायावी स्वर्णमृगने जिस तरहकी आवाज निकाली और जो चेप्टाये की, उनसे रामको ऐसा विश्वास हो गया था कि यह मृग सामान्य मृग नही परन्तु राक्षसी माया ही था। रामके मनमे रह रहकर यही विचार घूमने लगा कि "मै उस मायाके पीछे क्यो दौड़ा ?" कौन जाने भविष्यके गर्भमे क्या रहस्य छिपा है। ऐसा सोचते सोचते राम पर्णकुटीकी दिशामे लौटे ही थे कि सामनेसे लक्ष्मण आते दिखाई पडे। पास आकर उन्होने रामके चरणोमें प्रणाम किया।

"अरे भाई लक्ष्मण, तुम यहा कैसे आये ? किसलिए आये ? किसके कहनेसे आये ? सीताका क्या हुआ ? मुझे तुरन्त बताओ। जानकी तो सकुशल है न ?" रामके शब्द शब्दसे उनके मनकी व्याकुलता प्रकट हो रही थी। पहले हुई अनेक अशुभ आगाहियोकी रामने अभी तक कोई परवाह नही की थी। परन्तु अब उन सबने एकसाथ राम पर आक्रमण कर दिया। समयको परखकर उतावले लक्ष्मणने शान्तिसे उत्तर दिया

"वडे भैया, मैंने वहुत वडी गलती की। मातातुल्य सीताजीके ताने मै सह न सका और उनके अत्यन्त आग्रहके कारण मै आपकी सहायताके लिए दौड आया। मै कैसा मूर्ख हू ! आपको मेरी सहायताकी क्या आवश्यकता हो सकती है ? मैंने अपने धर्मका पालन नहीं किया। सौपा हुआ काम छोडकर मै यहा चला आया। मेरी कर्तव्य-निष्ठा शिथिल हो गई। अपने इस भारी अपराधके लिए मै आपसे क्षमा-याचना करता हू, दीनानाथ !"

"यह अधिक बाते करनेका समय नही" — कहकर रामने अपने क्रोधको हृदयमें दवा दिया और नीची निगाह करके चलने लगे।

परन्तु रामके मौन रहने पर भी उनके चेहरेकी रेखायें सब कुछ कह रही थी। लक्ष्मण बार बार रामके उदास चेहरेको देखते जाते थे और अधिकाधिक दीन हीन बनते जाते थे। इस तरह दोनों भाई दौड़ दौड़ आश्रमके पास आ पहुंचे।

मनकी शंका सच्ची निकली। सीताजी स्वागत करनेके लिए पर्णकुटीके द्वार पर उपस्थित नहीं थी। शायद नाराज हो अन्दर छिप कर बैठ गई हों ऐसा सोचकर राम एकदम पर्णकुटीमें घुसे और जोरसे पुकारने लगे — सीता जानकी! बोलो तुम कहां हो? प्रेमियोंके हृदय भी कैसे विचित्र होते हैं! प्रतिक्षण निराशा घिरे रहते हैं, फिर भी घोर निराशाके बीच भी कैसी आशा उनके मनमें लहराती रहती है! रामकी दशा बड़ी विचित्र हो गई थी। अनेकोंको पागल बनानेवाले राम स्वयं पागल बन गये। अनेकोंको मार्ग दिखानेवाले राम आज स्वयं अपना मार्ग भूल गये। सीता, ओ सीता जानकी आ जानकी! पुकार पुकार कर रामने सारी पंचवटीको गुंजा दिया। लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राताकी यह स्थिति देखकर स्तब्ध हो गये। रामके पीछे पीछे उन्होंने एक बार नहीं दो बार नहीं पांच पांच बार सारी पर्णकुटियोंका कोना कोना छान डाला। परन्तु सीता कहां मिलती? रामफल और सीताफलके कुंजोंमें वटवृक्षके आसपासके बागोंमें तुलसीकी क्यारियोंमें—इस प्रकार आश्रमकी चप्पा चप्पा भूमि छानने खोज डाली। गोदावरीके समीप जाकर राम बोले — हे पावनी तूने तो मेरी जानकीको छिपाया है! दूसरे ही क्षण कहने लगे — मैथिली तुम कब तक गोदावरीमें डुबकी लगाये छिपी रहोगी? बोलती क्यों नहीं प्रिये!

इस प्रकार पंचवटीका कोई कोना ऐसा न रहा जहां दोनों भाइयोंने सीताकी खोज न की हो। परन्तु सीता नहीं मिली। हो तभी तो मिले न? अन्तमें निराश होकर राम पर्णकुटीके चबूतरे पर हार-थक कर बैठ गये। उनका हृदय भर आया। आंखोंसे आंसुओंकी अविरल धारा बह चली। अब लक्ष्मण भी मनको वशमें न रख सके। दोनों भाई फूट-फूट कर रोने लगे। तीसरा वहां कौन बैठा था जो

इन दोनो भाइयोको सान्त्वना देकर चुप करता? अन्तमे लक्ष्मण कुछ सभले। मनको थोडा पक्का करके अत्यन्त सकोचके साथ उन्होने वडे भाईसे कहा "प्रभु, आप तो सारे जगतके आदर्श है। . . विश्वके त्राता है। . .मेरे जैसे अनेक निराधारोके आधार है। आप ही यदि इस प्रकार भावुक वन जायेगे, शोकाभिभूत हो जायगे, तो मेरे जैसे सामान्य जनोकी क्या दशा होगी?" कहते कहते लक्ष्मण फिर रो पडे। लम्बे समयके वाद रामकी अश्रुधारा थमी। मन विचारोके भवरमे फस गया. "किसीने वैदेहीकी हत्या तो नही कर डाली? तो उसका शव कहा गया? मलिन विद्या और मलिन शक्तिके गर्वमे भान भूले हुए ये नर-भक्षक सीताको कही खा तो नही गये? नही, नही, वे दुष्ट स्त्रीके शरीरको नष्ट करके ही छोडनेवाले नही है। तव क्या वे जानकीका अपहरण कर गये होगे?" इस अतिम वाक्यने रामके पुण्य-प्रकोपको उग्र वना दिया। वे वोल उठे "अरे नराधमो, यदि तुम्हे अपनी शक्तिका ही परिचय देना था, तो मेरा यह भाई था, मै भी था, परन्तु एक अवला पर तुमने यह अत्याचार किया? धिक्कार है तुम्हे !" उनका मनोमन्थन किसी तरह रुकता नही था "यदि कोई अपहरण करने आये, तो क्या जानकी भुलावेमे आ सकती है? उसकी असहाय स्थितिका लाभ उठाकर कोई नराधम ऐसा कर भी सकता है, परन्तु अपहरण करके भी जानकीको आखिर वह ले कहा जायगा? नही, नही, मै भूलता हू। मायावी मृग, उस पर सीताका मोह, मेरा भी सोचे-विचारे विना उसके पीछे दौडना, मरते समय मृगकी आवाज और चेष्टाये, सीताके कहनेसे लक्ष्मणका मेरे पीछे आना—इन सव वातोको देखते हुए यह एक व्यवस्थित षड्यन्त्र ही मालूम होता है।

"ऐसे षड्यन्त्रकारी तो हमारे विषयमें सव कुछ जानते होगे। मै मानता हू कि वे यह भी जानते होगे कि राम १४ वर्ष तक किसी नगरमे प्रवेश नही कर सकेगे। तव यदि उन्होने जानकीका अपहरण करके किसी नगर या नगरीमे उसे छिपा दिया हो तो?" कभी राम सोचते कि स्थूल नियम आखिर सूक्ष्म नियमोके पालनके लिए

ही होते ह न ? कभी विचार आता कि अब सीताकी खोजमें निकल पड़ना ही हमारा एकमात्र धर्म है। और कभी ऐसा भी विचार उठता कि प्रिया विरहके शोकमें मैं कहीं अपना धर्म न भूल जाऊँ ? अहा दैव तेरी भी अनोखी लीला है ! कहाँ माता कैकयीका वचन, कहाँ अयोध्या कहाँ मिथिला कहाँ दण्डकारण्य और कहाँ यह पंचवटी ! अब ऋषि मुनियों और सज्जनोंके साथ रहकर १४ वर्ष पूरे करना मेरा धर्म है या सीताकी खोज करना मेरा धर्म है ? शायद भले हों परन्तु ये सवाल होने चाहिए विवेक होना चाहिए। इन नराधमोंका तो न कोई धर्म है न कोई सिद्धान्त। इनसे वैर मोल लेकर हमने ठीक नहीं किया। सत्याग्रहीके भाग्यमें ये सब कष्ट लिखे ही होते हैं परन्तु शूर्पणखाके नाक-कान लक्ष्मणने काट लिये यह भारी गल्ती हो गई। सुननेमें आया है कि रावण भी उसका भाई होता है। और रावणके पास साहस सम्पत्ति और राज्य सेना है। शायद वही सीता को हर कर ले गया हो ! अब मैं कौशल्या माताको क्या उत्तर दूँगा ? सीता मेरे साथ वनमें न आई होती तो यह आपत्ति खड़ी न होती। परन्तु यदि सीता हमारे साथ न आई होती तो इतना त्याग सम्भव कैसे होता ? सीताने हम दोनोंकी सेवामें भी कब कोई कसर रखी है ? अहा वैदेही तो वैदेही ही है ! दीर्घ निःश्वास लेकर राम मन ही मन बोल उठे — जानकी तुम जहाँ भी हो वहाँसे एक बार तो बोलो। तुम कहाँ हो प्रिये ? '

इस लम्बे मनोमन्थनके बाद रामने आँखें खोलीं और लक्ष्मणके सामने देखा। लक्ष्मण नीचा मुँह करके खिन्न मुद्रामें चित्रवत बैठे थे। उनकी पीठ पर हाथ घुमाते घुमाते रामने पूछा — भाई लक्ष्मण तुम सीताके सम्बन्धमें क्या मानते हो ?

भाई सच कहूँ तो मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही है फिर भी इतना निश्चित है कि यह सारा करतूत रावणकी या उसके आदमियोंकी ही हो सकती है। हम जिस सिद्धान्तकी रक्षाके लिए वनमें आये हैं उसी सिद्धान्तकी रक्षाके लिए हमें सीताजीकी खोज निकलना चाहिये। इसमें एक क्षणका भी विलम्ब नहीं करना चाहिये।

"यह केवल मेरी सीतामाताका ही प्रश्न नही है; यह तो नराधमो द्वारा सदियोसे पीडित, दलित और शोषित समूची स्त्रीजातिके उद्धारका प्रश्न है। मैं तो यही मानता हू कि मेरी पवित्र सीतामाताको रावण ही हर कर लकाकी ओर ले गया होगा।"

इतना कह कर दात कटकटाते हुए लक्ष्मणने दक्षिण दिशाकी ओर कापते हाथकी अगुलीसे सकेत किया।

३०

जटायुकी मुक्ति

राम और लक्ष्मण धीरे धीरे पागलोकी तरह आगे वढ रहे थे। चलते चलते राम एकाएक वोल उठे: "हे वनके वृक्षो, तुमने मेरी सीताको देखा है? नदी माता, तुमने तो अपनी गोदमे मेरी जानकीको नही छिपा लिया न? हे करेणु और कदलीके वनो, तुम्हे तो सीता अत्यन्त प्रिय थी, तुम्हारे कुजोमें तो सीता नही खो गई न?"

राम सीताका नाम रटते रटते वनके झरनो, नदी-नालो और एक एक झाडसे सीताकी खोज-खवर पूछते हुए आगे वढ रहे थे। इतनेमे दूरसे करुण स्वरमे 'राम . . राम!' शब्द सुनाई पडे।

रामने सोचा, यहा कौन मेरा नाम पुकार रहा है? "लक्ष्मण, इधर आना। क्या तुमने 'राम राम' की करुण ध्वनि सुनी?"

"वडे भैया, आप इस तरह वीच वीचमे रुकते रहेगे, तो हम सीताकी शोध कव कर सकेगे?"

"अरे भाई, तुम सुनो तो। अव तो वह ध्वनि कपित होने लगी है।"

"वडे भैया, शत्रु किसी तेज गतिवाले वाहनमे मेरी पूज्य भाभीको ले गया है। हम जिस कामके लिए निकले है, उसी काममे हमारे शरीर, मन, वुद्धि और प्राण लगे रहने चाहिये। मार्गमे ऐसे अनेक काम पैदा हो सकते हैं। लेकिन हम रुक कैसे सकते है?"

वीर लक्ष्मण तुम्हारा कहना इस दृष्टिसे तो ठीक है कि मनुष्य अपने प्राप्त कर्तव्यकी हानि पहुंचाकर हर कहीं अन्य कार्यमें पड़ जाय, तो वह एक भी काम पूरा नहीं कर सकता। परन्तु भाई तुम्हें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि जिस कर्तव्यके लिए हम निकले हों उस कर्तव्यकी रक्षाके लिए यदि स्वार्थत्यागका यत्न अनिवार्य हो जाय तो हमें उसका स्वागत करना चाहिये। देखो, सामने वह गिद्ध लहू-लुहान स्थितिमें पड़ा है। उसकी थोड़ी भी देखभाल किये बिना — उसकी कुछ न कुछ मरहम पट्टी किये बिना — हम आगे कैसे बढ़ सकते हैं? ऐसा मुझसे कभी नहीं होगा।

इतना कहकर राम गिद्धके पास दौड़ गये और उसके क्षत विक्षत शरीर पर उन्होंने अपने दयामय हाथ फेरे। लक्ष्मण भी ज्येष्ठ भ्राताके साथ उसके पास पहुंच गये। जटायुके घावों पर वनौषधि लगाई और थोड़ा थोड़ा बहनेवाले खूनको बिल्कुल बन्द कर दिया। गिद्ध कुछ ही देरमें सचेत हो गया। तुरत ही उसने रामके चरणोंमें अपना सिर रखकर शरीर भूमि पर डाल दिया। राम बैठ गये। उन्होंने अपनी गोदमें जटायुका सिर रख लिया। जटायु थोड़ी देरके लिए अपना सारा दुःख भूल गया। वह यही सोचता रहा कि मैं वैकुण्ठ-लोकमें विहार कर रहा हूं। उसकी दशा समाधिस्थ योगीके समान हो गई। गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है

> गीध अधम खग आमिषभोगी।
> गति तेहि दीन्ह जो याचत योगी॥

राम भी मनका भाव प्रकट किये बिना न रह सके। बोले 'लक्ष्मण, पता नहीं क्यों मेरे हृदयमें इस पक्षी पर अत्यन्त प्रेम उमड़ आया है।' इतनेमें तो जटायु दोनोंको आश्चर्यमें डालते हुए मनुष्यकी वाणीमें बोला। आत्मीयता आत्मीयताको जन्म देती है। 'भगवन् सीतामाताको दुष्ट रावण हर कर ले जा रहा था। पहले तो मुझे इसका कोई पता नहीं था। मैं केवल पूर्व-संस्कारोंके प्रतापसे निद्रा में पड़ी हुई स्त्रीको बचाने गया था। बादमें सच्ची बात मालूम हुई। मैंने सीताजीको बचानेमें अपनी सारी शक्ति लगा दी। परन्तु उस

राक्षसके सामने मेरी क्या चलती ?" कहते कहते जटायुकी आखे छलछला उठी। राम अपने दोनो हाथ स्नेहसे गिद्धके शरीर पर फेर रहे थे। एक हाथसे उन्होने जटायुके आसू पोछ डाले।

अव लक्ष्मण वोले : "वडे भैया, हम रुक गये यह वहुत अच्छा हुआ। इससे मात्र सेवायज्ञको ही नही, परन्तु हमारे मुख्य कार्यको भी वेग मिला है। अव यह भी मेरी समझमे आ गया है कि जिस कर्तव्यमे हमारा समीपका स्वजन मुख्य पात्र हो, उस कर्तव्यके पालनमें स्वजनके प्रति रही हमारी ममता अपना काम करती है। ऐसी परिस्थितिमे सच्चे कर्तव्य-प्रेमीको ममतारहित वनकर अपने कर्तव्यकी परीक्षा कर लेनी चाहिये और ऐसे सहज ही आ पडनेवाले अन्य कर्तव्योकी उपेक्षा नही करनी चाहिये।"

"प्रिय लक्ष्मण, इस पक्षीके लिए मेरा मन प्रेमसे भर जाता है। नीच माने जानेवाले इस पक्षीने मानवताका कितना सुन्दर उदाहरण हमारे सामने रखा है। इसने न तो अपने भाई-वन्धुओकी चिन्ता की और न मौतकी परवाह की। धन्य है गृध्रराज जटायु।" कहते कहते राम उर्मिल हो गये। "और सच कहू तो मेरे मनमे इस जटायुके प्रति पितृ-भाव स्फुरित होता है।" यह कहकर रामने जटायुको प्रेमसे चूम लिया।

जटायु अव आखिरी हिचकिया ले रहा था। उसका कठ रुध रहा था। मुह सूख रहा था। उसका अन्त करण तो शान्त था, परन्तु देहके भीतर जीवन और मृत्युका सघर्ष छिड गया था।

राम अत्यन्त प्रेमभावसे जटायुकी सेवा कर रहे थे। लक्ष्मण इस अद्भुत दृश्यको देखते हुए कल्पनातीत सवेदनाका अनुभव करते करते इस सेवामे अपनी आत्मा उडेल रहे थे।

इतनेमे 'हे राम' कहते हुए जटायुने अपने प्राण छोड दिये। लक्ष्मणने चिता तैयार की और रामने अपने हाथसे जटायुका अग्नि-सस्कार किया। पिण्डदानकी विधि भी पूरी की।

अन्त्येष्टि-सस्कार समाप्त करनेके वाद रामने स्नान किया। फिर थोडी दूर पर एक वृक्षकी छायामे राम और लक्ष्मणने वैठकर शान्तिमत्रका जप किया। प्रार्थनाके वाद रामकी वाग्धारा वहने लगी :

हम सब एक ही ईश्वरीय तत्त्वके विभिन्न अंग हैं। सारे देहधारियोंमें कम या अधिक मात्रामें जो तेज दिखाई पड़ता है वह ईश्वरीय तेज है। इस दृष्टिसे ईश्वर ही सबका पिता अथवा पितामह है ऐसा कहा जाता है। पशु पक्षी कीट-पतंग या मनुष्य सबमें परस्पर प्रेम-सम्बन्ध हो सकता है भले उनमें कोई निकटका रक्त-सम्बन्ध न भी हो। लक्ष्मण इस नाते मैं उस गिद्धराजको ही अपना और भार पित हो गया था। यद्यपि यहां सबोंका शत्रु तो था ही परन्तु साथ ही किसी अतर्क्य और अगम्य रीतिसे मैं उस स्थानकी ओर खिंच रहा था जहां वह गिद्ध घायल होकर पड़ा था। उसके पास पहुंच कर मेरा स्नेह उसके प्रति अधिकाधिक बढ़ने लगा। अन्यायका विरोध करनेवाला प्रत्येक मनुष्य मुझे आत्मीय जन जैसा ही लगता है। मैं जहां भी अन्यायीको देखता हूं वहां मुझे उसका विरोध करनेमें उससे लड़नेमें एक प्रकारका स्वाभाविक आनन्द आता है। प्रिय लक्ष्मण गृध्रराज जटायुके प्रति तो अन्त अन्तमें ऐसा भाव मेरे मनमें पैदा होने लगा मानो वह स्वयं महाराज दशरथ हों। पिताजीके अन्तिम समयमें तो मैं उनके पास नहीं रह सका परन्तु जटायुकी अंतिम क्रिया अपने हाथसे करके मुझे पूरा सन्तोष हो गया।

लक्ष्मण रामचन्द्रजीकी यह वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि पंचमहाभूतोंके चलते फिरते पुतलोंका प्रेम सम्बन्ध केवल औपचारिक है। सच्चा प्रेम सम्बन्ध तो सद्गुणों और शुद्ध प्रेमके पारस्परिक निःस्वार्थ आकर्षणसे ही अपने-आप निर्माण होता है। इसमें बहुधा आकस्मिक मिलनका — प्रकृति द्वारा प्रेरित मिलनका — ही मुख्य भाग होता है।

सूर्य पश्चिम दिशामें अस्त होने लगा था। आकाश रंग बिरंगे चित्र चित्रित कर रहा था। दोनों भाई थक गये थे। अतः रात उस वृक्षके नीचे ही बितानेका उन्होंने निश्चय किया और दूध सी श्वेत स्निग्ध चांदनीका पान करते करते दोनों सो गये।

३१

कबन्धसे भेट

सवेरे राम-लक्ष्मण दोनो भाई उठे और शौचादि क्रियाओसे निवट-कर आगे वढे। कुछ ही देर वाद एक ऐसा दुर्गम मार्ग आया, जिसने दोनो भाइयोकी प्रगतिको रोक दिया। निगाह इधर-उधर दौडाई तो एक जुगुप्सा उपजानेवाला दृश्य दिखाई दिया।

"वडे भैया, इधर देखिये," कहकर लक्ष्मण दूर ही खडे रहे और एकटक उस प्राणीको देखते रहे। परन्तु राम निर्भयतासे उसके पास जाकर खड़े हो गये।

"हाथ कितने लम्बे है! अरे, इसका तो सिर ही नही है! यह खाता कैसे होगा?" इतनेमे पेटके भीतरसे उसका मुंह दिखाई दिया। उसकी जाघे भी नही दिखाई पडती थी।

"अरे भाई, तुम कौन हो?" रामकी मधुर आवाज सुनते ही धडके सिरेसे और पेटके मध्य भागसे गहरी आवाज निकली: "अहो-भाग्य है मेरा! मै आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था।" कुछ क्षणके लिए तो लक्ष्मणको लगा कि हमारी शामत आ गई। परन्तु वह कुरूप भद्दा आदमी साष्टाग प्रणाम करता हुआ वोला: "मैने अपनी सुन्दरताका वडा अभिमान किया, उसीका यह परिणाम है। आप मेरे अन्तर्यामी है। मुझे अपने चरणोमे लीजिये और पावन कीजिये।"

रामचन्द्रजीके वरद हस्तका स्पर्श होते ही उसकी काया वैसे ही नीरोग और सुन्दर-सुडौल वन गई, जैसे पारस-मणिका स्पर्श होते ही लोहा सुवर्ण वन जाता है।

इस मानव-प्राणीका नाम कवध था। उसने अनेक ऋषि-मुनियोको सताया था, अनेक निरपराधियोको पीडा पहुचाई थी। इस राक्षसी भावनाका अत्यन्त कष्टदायी फल चखकर वह अव अघा चुका था। 'जैसा करे वैसा भरे' यह कहावत कवधके वारेमें चरितार्थ सिद्ध हुई थी।

दयामूर्ति जानकीनाथने दया और स्नेह दानकी उस पर वर्षा की। इससे आनन्दसे कबंधके नेत्र छलछला उठे। उसने रामसे आत्म-वृत्तान्त सुनाकर आगे कहा — मैं जानता हूँ कि लंकापति रावण जनकनन्दिनी सीतामाताका अपहरण करके उन्हें लंका ले गया है। उसके पास अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ और शक्तियाँ हैं। परन्तु स्त्रियोंके सन्मानके मान पर इस प्रकार कुठाराघात वह निःसंकोच होकर करने लगा है। परन्तु अति सर्वत्र वर्जयेत्। अब आप जैसे उदात्त पुरुषको भी उसने सतानेकी धृष्टता की। इससे मैं निश्चित रूपसे मानता हूँ कि उसकी मृत्यु समीप आ गई है। उस रावणके निवास-स्थान दक्षिण दिशामें रहते हैं। उसका ठीक पता तो आपको सुग्रीव ही दे सकेगा।

आश्चर्यचकित रामने कबंधकी ये बातें प्रेमसे सुनीं। फिर पूछा 'यह सुग्रीव कौन है? वह कहाँ रहता है?"

भगवन् सुग्रीव भी आपके जैसा समय भिन्नका भूला है। उसे, बड़े भाई वालिने उसे अपने राज्यसे निकाल दिया है और उसकी पत्नी पर अपना अधिकार जमा लिया है।

छोटे भाईकी पत्नी पर ऐसी कुदृष्टि ! ' लक्ष्मणको

क्या हो सकता है?" इतना कहते-कहते कवधका हृदय भावाभिभूत हो गया।

उसे कुछ याद आया हो, इस तरह वह उठा और एक कमडलमे मीठा जल लाकर राम-लक्ष्मणके सामने रखते हुए बोला "मै मानता हू कि अब आप आगे बढनेके लिए अधीर हो चले है। परन्तु मै आपका थोडा समय और लूगा।" इतना कहकर उसने चुटकी बजाकर सकेत बताया. "यहासे पश्चिममे थोडी दूर चलकर एक वन शुरू होगा। उस वनमे जामुन, प्रियाल, कटहल, अशोक और आमके सुन्दर वृक्ष है। उस वनके समाप्त होते ही दूसरा वन शुरू होगा। वहाके वृक्षोके फल इतने मीठे और सुगधित है कि उन्हे खाते खाते हमारा मन कभी तृप्त ही नही होता। आप दोनो बन्धु वहा रुककर उन्ही फलोका भोजन कीजिये।

"इन दोनो वनोको पार करनेके बाद छोटी-बड़ी पहाडिया शुरू होगी। पहाडिया पार करते हुए बीचमें वन-प्रदेश भी आयेगे। इन सबको पार करते करते अतमे आप पपा सरोवरके पास पहुच जायेगे।

"अहा, पपा सरोवरका वर्णन मै किन शब्दोमे करू? पपाके मोहक कमलो, उसके सुन्दर तटो और उसके जलमे सदा खेलते हसो, सारसो आदि विश्वके उत्तम पक्षियोका वर्णन प्रत्यक्ष देखे बिना कभी समझमे नही आ सकता। इस पपा सरोवरके पास ही एक सुन्दर गुफा है। और उसीके पास शीतल जलसे भरे और कद-मूल-फलसे समृद्ध हरेभरे प्रदेश है।

"इसी पपाके पश्चिमी तट पर महामुनि मतगका आश्रम है। उन मतग ऋषिके नाम पर ही उस वनका नाम मतग-वन पडा है। यद्यपि आज उस वनमे मतग मुनि नही है, न उनके कोई शिष्य ही वहा है, परन्तु तपस्यामे उन सबसे आगे बढ जाय ऐसी एक भीलनी वहा रहती है। उसका नाम शबरी है। वह मतग ऋषिकी महाशिष्या है। उस भक्तहृदया नारीका परिचय तो आपको उसका आचरण ही करायेगा। उसका वर्णन करनेके लिए मेरे पास शब्द ही नही है। उस तपस्विनीके स्वागत और अतिथि-सत्कारको देखना मेरे जैसेके लिए तो परम सौभाग्य-

की बात है। आप उसका अनुपम शरीर ग्रहण करके जरा आगे बढ़ेंगे कि तुरंत आपको ऋष्यमूक पवन दिखाई देगा। वहीं आपके भावी परम मित्र सुग्रीवसे आपकी भेंट होगी। इतना कहकर वह कबन्ध भाव मग्न हो गया। कुछ क्षण बाद जाग्रत होने पर वह उठा और उसने दोनों भ्राताओंसे उठनेकी प्रार्थना की। अब तीनों साथ साथ चलने लगे। वनमें आरंभ होने तकका मार्ग दिखाकर कबंधने दोनों भाइयोंसे गद्गद होकर विदा किया और वापस लौटा।

दोनों भाई तपस्विनी शबरी कैसी होगी इसकी कल्पना करते करते आगे बढ़ने लगे।

३२

रामभक्त शबरी

कोई स्त्री बड़े सवेरे पूर्व दिशाकी ओर देख रही थी। उसकी आंखोंमें, उसके रोम रोममें अधीरताने अपना वास कर लिया मालूम होता था। कभी वह पांवोंके अंगूठों पर खड़ी होकर दूर दूर तक लम्बी निगाह दौड़ाती थी तो कभी पेड़ पर चढ़कर एकटक चारों ओर देखने लगती थी। उस स्त्रीका नाम था शबरी।

शबरी सवेरे बड़ी जल्दी उठती थी। आश्रम तथा आसपासकी कितनी ही धरतीको झाड़-बुहारकर साफ-सुथरी बना देती थी। उसकी सफाई अनोखी थी। दो बार झाड़ू लगानेके बाद भी उसे सन्तोष न होता इसलिए वह कपड़ेके टुकड़ोंसे धूल उड़ाकर जमीनको बिलकुल स्वच्छ कर देती और फिर पानीका छिड़काव कर देती थी। पानीके छिड़कावसे सारी धरती अत्यंत रमणीय और सुगंधित बन जाती थी।

शौच-स्नानसे निवटनेके बाद शबरी तुरंत फल बीन-बीनकर एकत्र करती और इस बातकी पूरी जांच कर लेती थी कि एक भी फल खट्टा या सड़ा-गला न हो। इसके बाद वह फिर पेड़ पर चढ़ जाती और

रामको उसने प्रत्यक्ष कभी देखा भी नहीं था। केवल उनके बारेमें सुना ही था। फिर भी रामके प्रति इतनी भक्ति उसमें कैसे उत्पन्न हुई? उस भीलनीको समझानेकी यह शिक्षा किसने दी होगी? वह मतंग ऋषिकी एकमात्र स्नेहपात्र थी। इसीलिए तो उसमें यह सहज ज्ञान जाग्रत न हुआ हो? रामका हृदय दिव्यमय था। वे युवक व परम-पुरुष थे। वे निर्मल और शुद्ध प्रेमवाले थे और उनका समभाव अद्वितीय था। इसी कारणसे शबरीमें यह आकर्षण उत्पन्न हुआ होगा। जगत मनुष्योंसे खचाखच भरा है फिर भी प्रेमीजन प्रेमीको कहाँ और कैसे पहचानकर पकड़ लेते हैं, उसका यह एक उत्तम उदाहरण है।

शबरीके श्वासोच्छ्वासमें रमी हुई इस भावनाका रामके अन्तर पर कैसा असर हुआ? चलते चलते राम लक्ष्मणसे कहने लगे, "भाई लक्ष्मण तुमसे क्या कहूँ? उस वनमें अकेले तपस्विनी शबरीका नाम लिया, तबसे निरंतर मेरे मनमें उसका स्मरण बना रहता है। जानकीके विरहकी वेदना जैसे शबरीके स्मरणमें विलीन हो जाती है। अहा शबरी, शबरी! शबरी कैसा मीठा नाम है?" कहते कहते राम एकाएक कुछ क्षणोंके लिए खड़े हो गये और उनके नेत्र मिच गये। फिरसे खुले तब उनमें से प्रेमका प्रवाह झरता दिखाई दिया और लक्ष्मणको भरत मिलापका दृश्य याद हो आया। भरत और राम यद्यपि एक ही पिताके पुत्र थे, एक ही रघुकुलके वंशज थे, साथ ही दोनोंका पालन पोषण हुआ था, दोनों साथ साथ खेले-कूदे थे, फिर भी दोनोंका प्रेम केवल रक्त सम्बन्धके कारण ही नहीं था। दोनोंके बीचका स्नेह भौतिक जगतसे पर किसी अगम्य आकर्षणसे उत्पन्न हुआ था।

सन्त पुरुषोंने सत्य ही कहा है कि सत्प्रेमकी सगाईमें जाति पाँति वर्ग-वर्ण लिंग देश अथवा काल जैसे कोई भी कारण मुख्य नहीं होते। उसमें मुख्य कारण होते हैं सद्गुण। अतः एकाध बारके मिलन या निरीक्षणसे ही अथवा सुनी हुई बातों पर से ही ऐसी मजबूत प्रेमगाँठ बंध जाती है कि वह दोनों पक्षोंको परस्पर जीवन भर जोड़े रहती है। कभी कभी तो इस प्रेमके बल पर अनेक जन्मों

तक लगातार एक-दूसरेका योग किसी न किसी तरह हो ही जाता है। जैसे आत्मा अनन्त है, वैसे ही प्रेमका तत्त्वज्ञान भी अनन्त है। उसके कोई निश्चित विधि-विधान नही है। प्रेम स्वयभू है। वह बिना किसी आधारके फूलता-फलता है। प्रेमका तार बहुत पतला होता है, परन्तु वह कभी टूटता नही। वह अटूट होता है। इसीलिए एक भक्तकविने गाया है · 'सबसे ऊची प्रेम सगाई।' इसके सिवा, यह कथन भी उतना ही सत्य है कि प्रेमपन्थ अग्निकी ज्वाला है। सामान्य भूमिकावाले पामर जीवोकी यह शक्ति नही कि वे वहा पहुच-कर उसमे लीन हो सके। प्रेममे आत्म-समर्पण अथवा आत्म-विलोपनके सिवा दूसरी कोई ध्वनि ही नही है। उसमे देनेका ही मत्र होता है, लेनेका तो प्रश्न ही नही उठता। सर्वस्व निछावर कर देने पर भी प्रेमीको ऐसा लगता है, मानो उसने कुछ दिया ही नही है। प्रेमियोके बीच भक्त और भगवान, समर्पक और समर्पण स्वीकार करनेवाला — ऐसे भेद भी हम ही करते है। वास्तवमे ऐसे भेद भी प्रेममे नही होते।

शबरी यदि रामकी धुनमे आनन्द-मग्न थी, तो राम भी शबरीकी कल्पनामे लीन थे। यह सवेदन कैसा तीव्र और आनन्दप्रद था!

आजकी शबरी कुछ अलग ही दिखाई देती थी।

जाको जा पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत न कछु सदेहू॥

इस वाक्य पर शबरीका पूर्ण विश्वास था। आज उसे पूरा भरोसा था कि "मेरा राजा अवश्य आयेगा।" आज निराशा उसे छू भी न सकी। उसके अग-प्रत्यगमे नव चेतनाका सचार हो गया था। उसका बुढापा मानो उसे छोडकर चला गया था! वह उस ऊचे वृक्षकी अतिम शाखा पर सीधी तनकर बैठी बैठी रामके आगमनकी दिशामे ताकती रहती थी। कुछ समय बाद उसने दूरसे दोनो भ्राताओको आश्रमकी ओर आते देखा। "अहा, मेरे राम आ गये!" इस प्रकार स्वगत बोलते बोलते शबरी अवाक् हो गई। उसका शरीर उसके वशमे न रहा। परन्तु वृक्षने उसे संभाल लिया। कैसी अनुपम थी शबरीकी यह दशा?

स्वस्थ होने पर शबरी नीचे उतरी और अपनी झोंपड़ीमें जाकर फुलवारी टोकरीको फिरसे देख आई। बाहर आते ही उसने राम और लक्ष्मणको अपनी ओर आते देखा। और कुछ ही क्षणोंमें वह तपस्विनी चित्रवत बन गई।

लक्ष्मण, अब हम उस स्थान पर आ पहुंचे हैं जिसका वर्णन कबंधने किया था। यह है पंपा सरोवरका पश्चिमी किनारा। ये रंग बिरंगे फूल कितने सुगंधित हैं और मनोरम फल लगे हुए ये तरुवर कैसे सुहावने लगते हैं! कैसी मंद मधुर और सुगंधित वायु बह रही है! यहां देखो यह सिंहनी और मृग शावक दोनों स्नेहिल लोचनोंसे एक-दूसरेको देखते हुए कैसे पास पास बैठे हैं। उधर वनका महाराज दिखाई पड़ता है और इस ओर किलकिलाते और कूदते-फांदते खरगोश गिलहरियां और वानर दिखाई दे रहे हैं। वह है फणिधर सांप और ये हैं मयूर वृन्द।' रामके प्रत्येक वचनसे प्रेमामृत झर रहा था। लक्ष्मण भी इस स्थानमें प्रवेश करते ही कोई अभिनव संवेदन अनुभव करने लगे। वातावरण स्वयं ही मतंग ऋषिकी महिमाका गान कर रहा था। प्राणीमात्रमें जो अखंड चैतन्य विलसित होता है उसका सहज दर्शन यहां हो रहा था।

शबरीकी आंखें स्थिर हो गई थीं। उनसे धीरे धीरे मोतियोंके समान अश्रुबिन्दु टपक रहे थे। शबरीके रोम रोमसे जो भाव झर रहा था, उसे समझनेका लक्ष्मण सतत भावसे प्रयत्न कर रहे थे। पर पलमें व्यक्त होनेवाले भक्तके भावावेशोंको किन शब्दोंमें प्रकट किया जाय?

रामके बिल्कुल पास आते ही शबरीका शरीर उनके चरणोंमें लुढ़क गया। पहले तो रामने दोनों हाथ जोड़कर उस तपस्विनीको प्रणाम किया और फिर प्रेमपूर्ण प्रभुतावाला अपना वरद हस्त उसके सिर पर रखा।

तुरत चैतन्यके प्रवाहमें स्नान करके चैतन्यमय बनी हुई तपस्विनी शबरीने अपने नेत्र रामके मुख-कमल पर स्थिर कर दिये। चारों नयन परस्पर अपनी अपनी भाषामें अगम्य बातें करने लगे। कुछ क्षणके लिए तो राम भी अवाक् हो रहे, फिर उनकी वाणी फूटी

"हे तपस्विनी, तुम स्त्री होकर भी यहा अकेली ही रहती हो? तुम्हारा तन, मन और आत्मा प्रसन्न तो है न?"

"अनेक पशु-पक्षियो, जल, वृक्षो, लताओ तथा इस झोपडीके बीच मै अकेली कहा हू? हा, मेरे रामके प्रत्यक्ष दर्शनके अभावमे मै अकेली थी, ऐसा कहा जाय तो मै जरूर अकेली थी। परन्तु आज प्रेमनिधिमे मग्न होकर मै सचमुच सनाथ हो गई हू। परम प्रभु, आपके सामने मै न तो वृद्धा हू और न तपस्विनी हू। मै तो आपकी एक लघुतम बालिका मात्र हूं। सद्‌गुणोमे भी प्रेम ही सबका पिता है। आप मुझे 'तुम' क्यो कहते है? क्या यह भेदभावकी भाषा नही है?" शबरीकी ऐसी मीठी मोहक वाणी सुनकर राम मुसकराने लगे।

"शबरी, तू जीती और मै हारा।" रामका यह वाक्य सुनते ही वाचाल शबरी बोली "प्रेमकी दुनियामे यदि शरीर-भेद या अवस्था-भेद नही होते, तो हार-जीतके भेद भी कैसे हो सकते है?"

प्रेमकी छडीसे रास्ता बताते हुए शबरी दोनो अतिथियोको अपनी झोपडीमे ले गई। प्रक्षालन और जलपानके पश्चात् शबरीने अपने संग्रह किये हुए स्वादिष्ट फल राम-लक्ष्मणके सामने रखे।

"लक्ष्मण, आजके भोजनमे कोई अनोखी मिठास मालूम होती है। ऐसा लगता है कि खाते ही रहे, खाते ही रहे।" दर्भासन पर बैठकर भोजन कर रहे रामके ऐसे उद्‌गारोका लक्ष्मण समर्थन करते जाते थे। और पास बैठी हुई शबरी अतिथियोको प्रेमसे भोजन करते देखकर ऐसा सन्तोष अनुभव कर रही थी, मानो अमृतके मीठे घूट पी रही हो। उसके नयन दोनो अतिथियोके हाव-भावोके निरीक्षणमे लीन हो गये थे। और उसके कान दोनोकी रसकथाका पान कर रहे थे।

कभी तो वह माताका वात्सल्य बरसाती मालूम होती थी, और कभी नम्र दासी बनकर अतिथि मागे उसके पहले ही उनकी मनचाही वस्तु परोस देती थी।

कहा तो अयोध्याके भव्य राज-प्रासाद और कहा घास-पातसे छाई हुई शबरीकी छोटीसी पर्णकुटी? फिर, कहा जानकीजीकी प्रेममय परिचर्या और कहा इस तपस्विनीके बीने हुए बेर?

फिर भी आजका दिन और आजका भोजन अनुपम था। दीर्घ कालसे प्रतीक्षा करनेवाले विशुद्ध प्रेमपूर्ण हृदयोंका यह अनोखा मिलन था। एकको उद्धलनका स्नेहपात्र मिला था और दूसरेको क्षुधातृप्तिका साधन प्राप्त हुआ था। दोनोंने परस्पर खूब लिया भी और दिया भी।

भोजनके बाद कुछ देर आराम करके अतिथि स्वस्थ हुए और आश्रमवासिनी शबरीसे उन्होंने अपने लिए कुछ काम मांगा। शबरीने उत्साहसे उनकी यह मांग स्वीकार की। तीनों पर्णकुटीसे बाहर आये और चलने लगे। चलते चलते बहुत दूर निकल गये। शबरी विभिन्न स्थान उन्हें दिखाती रही। अतिथियोंने समुद्र सगम देखा अनेक झरने और नदियां देखीं पहाड़ियां देखीं। मतंग मुनि और उनके शिष्योंके स्मारक देखे। एक स्थान पर ताजे ही सुखाये हुए तापस-वस्त्र देखकर लक्ष्मण बोल उठे यहां कौन रहता है? अभी अभी ये वस्त्र किसने धोये हैं?'

तपस्विनी उत्तर दे इसके पहले ही राम बोले ये मतंग मुनिके धुले हुए वस्त्र हैं। तुम्हारे मनमें प्रश्न उठता कि इतनी धूप और इतनी हवाके होते हुए भी इतने दिनों तक ये वस्त्र जैसेके वैसे क्या रह सके? भाई यह भी एक विधान है। दुनियामें सब सामान्य माने जानेवाले नियमोंमें भी कहीं न कहीं अपवादका अवकाश रहता है। सूर्य चन्द्रके गजसे नापी जानेवाली कालगणनाकी अपेक्षा इस अपवाद-रूप स्थानोंकी कालगणना कुछ अलग ही होती है। ससारको जो माया मय या स्वप्नसृष्टि कहा जाता है वह इसी दृष्टिसे कहा जाता है।'

मैं जब जब इन वस्त्रोंको देखती हूं तब तब मुझे ऐसा लगता है मानो इसी समय मेरे गुरुदेव स्नान करके पधारे हों। इस वनमें जो भी प्रेमका प्रभाव है वह सब गुरुत्वका ही है। मेरा राम जैसा अतिथि भी मुझे उसी प्रेमके प्रतापसे प्राप्त हुआ है। आज मेरा जीवन पूरी तरह कृतार्थ हो गया है। शबरीके मुंहसे ये वचन निकलते ही उन वस्त्रों पर धूप और हवाका असर होने लगा। मानो आज तक किसीने सूर्यकी किरणोंको और हवाकी लहरोंको मतंग ऋषिके वस्त्रोंका स्पर्श करनेसे रोका हो और अब वे मुक्त कर दिये गये हों।

"वस, प्रभु ! मेरा कार्य पूरा हो गया। अब मुझे आज्ञा दीजिये। मेरे गुरुदेवके पास जानेकी मुझे आज्ञा दीजिये।" कहते कहते शबरी निर्जीव होकर गिर पडी।

अन्त समयमे भी शबरीके शरीरको रामके हाथोका स्पर्श मिला। कैसा अहोभाग्य था उस भीलनीका! शबरीके शरीरमे से ही अग्नि प्रदीप्त हुई और उस अग्निमे परिशुद्ध बना उसका पवित्र आत्मतेज अन्तरिक्षकी ओर प्रयाण कर गया। रामके मुहसे यह उद्‌गार निकल पडा. "धन्य है प्रेमपुज, तुझे धन्य है!"

लक्ष्मण तो आश्चर्यचकित होकर यह सब देखते ही रहे। चरित्रके जादूसे बढकर अन्य किस चमत्कारका जादू हो सकता है? वे मन ही मन कहने लगे. "प्रेमकी शक्ति विश्वके प्रचलित नियमोको बदल देती है। प्रेमका विज्ञान जगतमे अनेक चमत्कारोका सर्जन करता है।"

३३

मधुर संवेदन

शबरीकी दिनचर्या, उसकी अद्‌भुत भक्ति आदिका चिन्तन करते करते राम-लक्ष्मण आगे बढ रहे थे। चिन्तनमे लगे हुए चित्तने पावोकी गतिको अत्यन्त मद कर दिया था। समुद्रके समान विशाल सरोवरके तट पर चलते चलते दोनो भाइयोकी प्रत्येक इन्द्रिय अपना उचित भोजन पाकर आनन्द अनुभव कर रही थी। इतनेमे सरोवरसे ही निकला हुआ सरिताके जैसा एक बडा झरना आया। दोनो भाई अब उसी मार्ग पर आगे बढे। आगे जाने पर एक मनोहर जलाशय मिला। उसे देखकर राम बोल उठे

"प्रिय लक्ष्मण, इसमे स्नान करनेकी इच्छा होती है।"

रामका यह वचन सुनकर लक्ष्मण भी रुक गये। दोनो भाइयोने विधिपूर्वक स्नान किया। बादमे पास ही एक ऊची जगह पर पडी महाशिला पर आकर बैठ गये। वातावरण मधुर और आह्लादक था।

लोनाका मन प्रसन्न था और चित्त शान्त था। ऐसे समय राम अपना मनोव्यथा पर नियन्त्रण न रख सके।

प्रिय लक्ष्मण मैं आज तुमसे कुछ अन्तरकी बातें पूछना चाहता हूँ। लक्ष्मणके कन्धे पर हाथ रखकर और उन्हें हृदयसे लगाकर पीठ थपथपाते हुए राम बोले।

लक्ष्मणने सिर झुकाकर उत्तर दिया 'हां पितातुल्य बड़े भैया, जरूर पूछिये।

लक्ष्मण इस समय पितभावसे अथवा भ्रातृभावसे भी नहीं परन्तु एक घनिष्ठ मित्रके नाते मैं पूछना चाहता हूँ। यद्यपि प्रतिदिनके सतत और अत्यन्त निकट सहवासके कारण तुम मुझसे कोई संकोच नहीं रखते, फिर भी एक कुछ अधिक नाजुक प्रश्न पर अधिक स्पष्टतासे मैं तुम्हारे साथ चर्चा करना चाहता हूँ। आशा है तुम किसी संकोचके बिना मेरे प्रश्नका उत्तर दोगे।' इस तरह बोलते बोलते मानो अपने अकल्प्य मवन्नको हल्का करनेके लिए पूछते हों इस प्रकार रामने सीधा प्रश्न किया तुम्हें उर्मिला कभी याद आती है?'

इस प्रश्नका उत्तर देनेमें संकोच होना स्वाभाविक था। ज्येष्ठ भ्राता यह प्रश्न क्यों पूछते हैं ऐसी शंका भी हो सकती थी। परन्तु शुद्ध हृदयवाले लक्ष्मणको तो अपना हृदय उंडेलनेका अवसर मिल गया। इसलिए दूसरे कोई विचार किये बिना उन्होंने बोलना आरंभ कर दिया बड़े भैया सच कहूं तो उर्मिलाकी स्मृतिको मैंने जान-बूझकर दबा रखा है। पत्नीकी याद्को ताजी रखकर १४ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य-पालनका संकल्प पूरा करना मेरे जैसे भावनाशील युवकके लिए कठिन है। हे महापुरुष जनक-सुताके साथ रहते हुए भी आप दोनोंने जिस तरह अविरत व्रत पालन किया है उसे याद करके तो आपकी प्रभुताके सामने अन्तःकरण पुलकित होकर द्रवित होने लगता है।'

जान-बूझकर पत्नीकी स्मृतिको दबानेका मार्ग सहज मार्ग नहीं किन्तु हठमार्ग है ऐसा कहनेकी आवश्यकता होने पर भी रामने यह सोचकर बातका रूप पलट दिया कि यह अवसर उपदेशका नहीं बल्कि

अन्तरकी कथा कहनेका है। कुछ मुसकराकर उन्होंने लक्ष्मणसे पूछा "अयोध्या याद आती है या नही ?"

"वडे भैया, अयोध्याकी याद आवे, ऐसी स्थिति आपने रहने ही कहा दी है ? माता सुमित्राने विदाके समय 'अयोध्याम् अटवी विद्धि' यह सीख दी, तव तो मन पर इस तरहकी साधना करनेका भारी वोझ मालूम होता था। मनमें विचार उठते थे अटवी (वन) जाने कितनी भयकर होगी और उस भयकरतामें अटवीको अयोध्यारूप वनानेके लिए मुझे न मालूम कितनी कल्पनायें करके मनको मारना पडेगा। परन्तु जव प्रत्यक्ष अटवीमें आये और यहा उदारतासे विखेरी हुई विभुकी विभूतियोका दर्शन किया, तवसे अयोध्याको तो क्या, मै आपके स्नेहके वल पर पितृ-वियोगको भी भूल गया हू।"

कुछ क्षण रुककर लक्ष्मण फिर वोले: "वडे भैया, कुछ दिनोसे यदि वार वार किसीकी याद आती हो तो वह माता सुमित्राकी आती है। वह सच्ची माता है।" पलभरमे लक्ष्मणकी आखे छलछला उठी। रुधे कण्ठसे भी उन्होने वोलना जारी रखा "सीतामाताके प्रत्यक्ष वियोगके वाद माता सुमित्राका स्मरण पद पद पर हुआ ही करता है। भैया, माताके विना सारा जगत सूना सूना लगा करता है। वार-वारकी इस स्मृतिके कारण माता जानकीके अभावमे आपकी सेवामे जो कमी आ गई है, उसे पूरा करनेकी प्रवल इच्छा होते हुए भी मै आपकी सेवामे वहुत पिछड गया हू। भक्त-शिरोमणि शवरी माताका जीवन देखा, तवसे अपनी तुच्छता और अपने इस दोषके कारण मुझे रोना आ जाता है।" लक्ष्मण आगे कुछ न वोल सके। उन्होने कदाचित् यह भी मान लिया कि उनके आसू देखकर ही रामने उनसे ऐसा प्रश्न पूछा होगा। सव अपनी अपनी मान्यताके मापदडसे ही दूसरोको मापते है। भोले लक्ष्मणको इस वातका पता कैसे चलता कि रामको अपने साथीके दिलको गहराईमे छूकर सीता-विरहकी अपनी वेदना कम करनी थी। एक हृदय दूसरे हृदयको छूते छूते करुणा, सघर्ष अथवा दु ख अनुभव करे, तो भी उसमे अवर्णनीय आनन्द उमड आता है। इसे कोई गहरा अनुभवी ही समझ सकता है। लक्ष्मणका ज्ञान और भान ऐसा नही

था, जो रामकी बराबरी कर सके। परन्तु उस समयके सदनमय वातावरणका आह्लाद तो लक्ष्मण अनुभव कर ही रहे थे। रामको विचारमग्न देखकर लक्ष्मण कुछ देरके लिए रुक गये फिर कहने लगे

बड़े भैया शबरीको देखकर आप आनन्दमग्न हो गये थे। वह दृश्य मुझे अतिशय भव्य मालूम हुआ था। परन्तु जब हम शबरीके साथ घूमने निकले तब आपकी आंखोंमें आंसू आ गये और आप भावाभिभूत से मालूम हुए। ऐसा क्यों? मैंने पहले कभी भी आपको ऐसी दशामें नहीं देखा था।

लक्ष्मण, तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है। पहले तो मेरे मनमें यह भाव आया कि मैं कितना स्वार्थी हूं। अपनी प्राणप्रिय सीताके बिना मैं यह सुख भोग रहा हूं। इस विचारसे अतिशय भव्यतामें भी मुझमें तुच्छताका भाव पैदा हुआ। अतिसुख और अतिदुःखमें निकटका स्वजन याद आये बिना नहीं रहता। परन्तु भाई मुझे अपने विषयमें तुच्छताका भाव अधिक तो इसलिए अनुभव हुआ कि मैंने सीताको अबला मानकर यह भय मनमें खड़ा कर लिया था कि रावण जैसे राक्षसके पास रहकर सीता अपने शीलकी अपने सतीत्वकी रक्षा कैसे कर सकेगी? स्त्री अबला है वह अकेली कैसे रह सकती है? --ऐसी अनेक बातें मेरे मनमें भरी थीं। इस महावनमें शबरीको अकेली और बलवती देख कर पुष्पके नाते मुझमें थोड़ा जो गर्व था वह गल गया। मुझे विचार आया कि जानकीके सतीत्व और अबलापनकी मिथ्या चिन्ता करनेवाला मैं कौन होता हूं? मेरा काम केवल अपने धर्मका पालन करना है। जानकीका सच्चा रक्षक तो उसके हृदयमें बैठा हुआ भगवान ही है। इस विचारसे अपनी कमजोरी मुझे अधिक खटकने लगी और मेरा शरीर जलने लगा। मेरी आंखें गीली हो गईं। परन्तु यह स्थिति कुछ ही देर तक रही। मैं जल्दी ही पुनः स्वस्थ हो गया।

आजका वार्तालाप लक्ष्मणको अनुपम मालूम हुआ। जानकी और प्रेमकी गंभीर बातोंकी अपना ताज और विरल अनुभवके बाद तुरन्त प्रकट होनेवाली वाणीमें कोई अगाध सत्य भरा होता है। कहनेवाला और सुननेवाला दोनों उसमें ओतप्रोत हो जाते हैं।

सूर्य अब डूबनेकी तैयारी कर रहा था। जाते जाते थोडा रुक-कर रामकी यह वाणी सुननेका लोभ उसे हो रहा था। कर्तव्य-पालनकी भावना उसे पश्चिम दिशामे खीचकर डुबानेका प्रयत्न कर रही थी। वह उधर गया भी, परन्तु उसकी किरणे बहुत समय तक दिखाई देती रही। आजकी सन्ध्या कोई अनोखी शोभा प्रकट कर रही थी। दोनो नरवीर आज बाते करते करते अघाते ही नही थे। आजका रात्रिवास दोनो भ्राताओने उस महाशिला पर ही दर्भशय्याए बिछाकर शातिपूर्वक किया।

३४

सुग्रीव और हनुमान

ऋष्यमूक पर्वतके शिखर पर एक मडली बैठी थी। उस मडलीके बीचमे एक बुद्धिशाली और प्रेमल पुरुष अपनी आभा फैला रहा था। उसके समीप एक चतुर, वफादार और ज्ञानी मित्र बैठा था। इनका नाम सुग्रीव और हनुमान था। इन दोनोकी बाते चल रही थी और मडलीके दूसरे साथी मौन धारण करके एकचित्तसे दोनोकी बाते सुन रहे थे।

"भाई हनुमान, तुम और ये साथी मेरा आश्वासन और मेरी सान्त्वना हो और यह ऋष्यमूक पर्वत मेरा विश्राम-स्थान है। मनुष्य पर चाहे जितनी बड़ी आपत्ति आये, परन्तु यदि इसके साथ आश्वासन और विश्राम-स्थान उसे मिल जाये, तो बडीसे बडी आपत्ति भी साधारण आपत्तिमे बदल जाती है। मित्र, तुम्हारा ज्ञान और चातुर्य आन्तरिक सुखमे मेरे सहायक होते हैं और यह गिरिवर बाहरी सुखमें मेरा सहायक बनता है। यहा न तो रीछ, बाघ, सिह या भेडियेका त्रास है, और न सर्दी-गर्मीका अतिरेक है। रुरु जातिके मृग कैसा मनोरजन करते हैं! उस पर कन्द, मूल, फल, अकुर आदि अनुकूल भोजन, स्वच्छ मधुर शीतल जल और रहनेके लिए सुन्दर गुफा। इससे अधिक और क्या चाहिये? केवल एक कमी है, और वह है मेरी 'रूमा' (सुग्रीवकी

पत्नी) की। यद्यपि रूमाके प्रति मेरा मोह अब लगभग दूर हो गया है, फिर भी इतनी बात मुझे जरूर खटकती है कि बडे भाईने छोटे भाईकी पत्नी पर कुदृष्टि डाली और उसे अपने अधिकारमें ले लिया। दु खकी बात तो यह है कि रूमाने भी इस अत्याचारको चुपचाप सह लिया और अब पतिभावसे वह वालिको भजन लगी है। इतना म समझता हू कि उसने केवल देहका ही सम्बध वालिके साथ जोडा है अपना आत्मा उसके हाथ नही बेची है। परन्तु रूमाके अय दोषोको हम एक ओर रख दें तो भी कायरताका दोष तो उसमें है ही। इसके लिए म रूमाकी अपेक्षा उसके पतिको ही अधिक बडा अपराधी मानता हू। और उसकी यह कायरता मुझे हजार हजार विच्छुओके डक जसी वेदना पहुचाती है।

हनुमान बाले ' जिस प्रजामें शठ जन नतृत्व प्राप्त कर लें उस प्रजाको नीच समझना चाहिये। एसी प्रजामें यदि अनीतिकी जीत हो तो इसमें आश्चय क्या? महापापाके प्रति भी व्यक्ति-द्वेष नही रखना चाहिए, हमें पापी और पापके भेदको कभी न भूलना चाहिए।

' जिस समाजमें चारा ओर अयाय और कायरताका बोलबाला हो उसी समाजमें अनीतिवान मनुष्य नेतत्व प्राप्त कर सकते ह। अनीतिवान नताओंके बीच पल पुस कर बडी हुई प्रजामें ऐसी स्त्रियोंकी आशा कम ही रखी जा सकती है जो प्राणोकी बाजी लगाकर भी अपने शीलकी रक्षा करके एकपतिव्रतका पालन करें। फिर भी रूमा बहनका हृदय यदि आपमें होगा तो उन्होंने वालिको अपना शरीर अपण कर ही दिया होगा इसमें शका है। आपको अपनी कायरता इतनी वेदना पहुचाती है यह सचमुच हमारे इस प्रदेश और इसकी प्रजाके उज्ज्वल भविष्यका सूचक है।

हनुमानका अन्तिम वाक्य सुनते ही सुग्रीवको अवर्णनीय आघात लगा। व कुछ क्षणाके लिए चिन्तनमें डूब गये। कुछ दर बाद मनको दूसरी किसी बातमें लगानेके लिए व खडे होकर इधर-उधर निगाह घुमाने लगे। हनुमान और दूसरे साथी दूसरी बातोंमें लग गये। कुछ क्षण मुश्किलसे बीते होंगे कि सुग्रीवकी भयसूचक सीटी बजी और

सब साथी खडे होकर सीटीकी आवाजकी दिशामे दौडे। देखा तो सुग्रीव एक महाशिलाकी आडमे खडे थे। उनकी दृष्टि व्याकुल थी। शरीर काप रहा था। नाक पर उगली रखकर सुग्रीवने अपने इन साथियोको शिलाके पीछे छिप जानेका इशारा किया। सेनापतिकी आज्ञाका सबने पालन किया और सब शिलाके पीछे आकर खडे हो गये। तब सुग्रीवने जिस दिशामे उगलीसे इशारा किया, उस दिशामे सब एकटक देखने लगे।

कुछ ही देरमे सबने स्पष्ट रूपसे दो मनुष्योको अपनी ओर आते देखा। देखते ही हनुमानने उनके प्रति एक अगम्य आकर्षण अनुभव किया। उनकी सुन्दर आकृति, स्थिर दृष्टि और तापस-वेश शात योगियो-की झाकी कराता था; जब कि उनकी सुदीर्घ भुजाये और दृढ शरीर वीर नरश्रेष्ठोकी प्रतीति कराते थे। परन्तु उनके कन्धो पर लटकते धनुष-बाणोने सुग्रीवको भयभीत कर दिया।

इसीलिए उन्होने भयसूचक सीटी बजाकर अपने साथियोको बुलाया था। सुग्रीवको कहा पता था कि इन दो नरवीरोमे से एक उनका परम मित्र बनेगा तथा उनकी प्रजाके सकट दूर करेगा। और उनकी ओर आकर्पित होनेवाले हनुमानको भी आज कहा मालूम था कि वही रघुवीर उन्हे अपना अनन्य सेवक बना लेगे। ऐसे आक-स्मिक सम्बन्धोके पीछे भी प्रकृतिकी कैसी व्यवस्थित योजना होती है!

ऋष्यमूक पर्वतकी तलहटीमे चल रहे राम-लक्ष्मण कबधके बताये हुए मार्ग पर गिरि-गुफाकी ओर धीरे धीरे अग्रसर हो रहे थे। पर्वतके विविध प्रकारके वृक्ष और ऊची-नीची शिलाये दोनो भ्राताओ-को कभी छिपा देती थी और कभी प्रकट कर देती थी। अब सुग्रीव अपनेको वशमे न रख सके। उन्होने हनुमानके कानकी ओर मुह करके कहना आरभ किया "हनुमान, तुम्हे अपना मत्री कहू या भाई कहू, साथी कहू या आधार कहू? तुम ही मेरे सब कुछ हो। हमारी ओर आ रहे उन यात्रियो पर मुझे शका हो रही है। कही वे वालिके भेजे हुए गुप्तचर तो न हो! दिखनेमे तो बडे शान्त और गुणवान मालूम होते है। परन्तु कौन जाने वेश बदलकर आये हुए वालिके

आदमी भी हों। और यदि सचमुच साधु हों तो भी क्या? आज तो साधु तपस्वी या योगी सब तथाकथित बड़े सागरसे ही पार हैं। ऊंचे आसनों पर बैठे हुए लोगोंमें कम कम भव्य वेशवाले आगन्तुक प्राप्त किये हैं यह कौन जानता है?

हनुमानकी वाणी अब चलने लगी — सुग्रीवजी, आप जो कहते हैं वह उपेक्षणीय तो नहीं है। परन्तु अब हमें किसीका भी भय रखनेकी जरूरत नहीं है। इस पुण्यवान पवनराज पर कोई भी पापी पाव रखनेकी हिम्मत नहीं कर सकता। परन्तु हमने तो अब प्राणोंकी भी चिन्ता छोड़ दी है। कोई प्राणोंसे अधिक हमसे और क्या ले सकेगा? इसके सिवा मानवमात्र परसे विश्वास उठाकर सबके प्रति अविश्वास और सन्देह रखकर जीनेकी अपेक्षा आत्महत्या कर लेना ज्यादा अच्छा है, और जीना ही हो तो मानव जातिमें निहित मांगल्यकी भावनामें श्रद्धा रखकर जीना चाहिये। सुग्रीवराज, सच कहूं तो मैं दोनों मूर्तियां मेरे हृदयमें तो अंकित हो चुकी हैं। फिर भी जाग्रत और सावधान रहना लाभदायक ही है। आपकी आज्ञा हो तो मैं पहलेसे मिलकर उनकी थोड़ी परीक्षा कर देखूं। मनुष्यकी आकृति, आंखें अभिनय और वाणी परसे कुछ न कुछ तो उसके मनकी बातका अन्दाज लग ही जाता है।

सुग्रीवने उत्तरमें कहा — भाई तुम्हारी सभी बातें मुझे अच्छी लगी हैं। अपने भय अविश्वास और सन्देहका कारण भी मैं समझ गया हूं। दूसरी तरह मैंने तो अपने जीवनकी बाजी लगा ही दी है। परन्तु वालिसे बदला लेनेकी वृत्ति अभी मिटी नहीं है। इस वृत्तिको भी मुझे मनसे निकाल फेंकना चाहिये। अन्यायका सामना या तो स्वयं करना चाहिये वर्ना प्रकृति पर निष्ठा रखकर अपनेमें न्यायकी भावना जगानेका इकतरफा काम करना चाहिये। अन्यायीके प्रति भी वैरकी भावना रखनेसे किसीका हित नहीं होता। तुम अवश्य जाकर उनसे मिलो परन्तु वे हमारे अतिथि और मित्र हैं ऐसा भाव रखकर ही विश्वास पूर्वक उनसे मिलना।'

प्रसन्न होकर हनुमान उत्साहसे राम-लक्ष्मणकी दिशामें चल पड़े।

*

"भूदेव, नमस्कार!" इतना वाक्य श्रीरामके मुहसे निकले उसके पहले ही एक विशाल भालवाला युवक रामके चरणोमे लोट गया। रामचन्द्रजीने तुरन्त उसे खडा किया और अपने हृदयसे लगा लिया।

"यह बिलकुल अनजान आदमी कौन होगा, जिसे आत्मीय जनके समान रघुनाथ अपना रहे है?" इस तरह विचार करते हुए लक्ष्मण कुछ क्षण तो इस पावन दृश्यको देखते ही रहे।

प्रेममूर्ति रामचन्द्रके प्रति लोगोका ऐसा साहजिक प्रेम और श्रद्धा अनेक बार प्रगट होती थी। तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है

जा पर जाको सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत न कछु सदेहू॥

कुछ दूर चलकर राम, लक्ष्मण और हनुमान तीनो एक घने वृक्षके नीचे बैठ गये। हृदय तो मिल ही चुके थे, परन्तु एक-दूसरेका पूरा परिचय अब शुद्ध भावसे दिया और लिया जाने लगा।

सबसे पहले हनुमानने स्वय अपना परिचय देना शुरू किया "मेरा नाम हनुमान है। मेरी पूज्य माताका नाम अजना और पिताका नाम पवन है। इस समय मै सुग्रीवके एक साथीके रूपमे इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहता हू। आपको बडी दूरसे देखकर ही मै आपके प्रति आकर्पित हो गया था। परन्तु मनमें कुछ शंका थी। आपके पास आते ही मेरी सारी शका मिट गई है।"

लक्ष्मणजी बीचमे ही बोल उठे "आप आकृतिसे ब्राह्मण और स्वभावसे क्षत्रिय मालूम होते है।"

"नही, नही, जन्मसे मै भले क्षत्रिय होऊ, परन्तु स्वभावसे शूद्र —सेवक—हू।" इस वाक्यसे हनुमानकी नम्रताकी लक्ष्मण पर बडी गहरी छाप पडी। सच पूछा जाय तो हनुमानने कोई शिष्टाचार नही बताया था। शूद्र बननेमे और कहलानेमे ही उन्हे धन्यता अनुभव होती थी। इस अवसर पर रामके हृदयमे हनुमानकी छवि इस तरह अकित हो गई कि रामके साथ हनुमानको भी उसने अमर कर दिया। आज भी राम, लक्ष्मण और जानकीके साथ जय तो हनुमानकी ही बोली जाती है और उस जयसे सारा वातावरण गूज उठता है।

लक्ष्मणने रामका परिचय संक्षेपमें इस प्रकार दिया

ये मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं। सती सीताके निरच्छत्र हैं। पिताजीके वचन पालनकी व्यक्तिगत साधनाकी और लोक हृदयके राज्यतंत्रकी तालीम लेते लेते ये साकेतका राज्य त्याग कर दंडकारण्यमें रहते थे। वहाँ सीतामाताका अपहरण हुआ। अब उनकी खोजके लिए कबंध और शबरीसे समाचार पाकर चलते चलते यहाँ आ पहुँचे हैं। इस परिचयमें लक्ष्मणजीका परिचय तो आ ही गया।

हनुमानने चतुराईभरी वाणीमें कहना आरंभ किया सुग्रीवको आप नामसे पहचानते हैं और वालिके अन्यायके बारेमें भी आप भली भाँति जानते हैं। *वालि सामान्य मनुष्य नहीं है। वह इतना बड़ा शूर-वीर* और पराक्रमी है कि रावण जैसे महाबलीको भी पलभरमें मसल डाले। तब फिर दूसरोंकी तो बिसात ही क्या? पता नहीं क्या परन्तु शक्तिका सदुपयोग दुर्लभ है और महाशक्तिका सदुपयोग तो इससे भी अधिक कठिन है। रावणने अपनी महाशक्तिका अपनी शूर-वीरताका बहुत बड़ा दुरुपयोग किया है। सुग्रीव भी समर्थ हैं शुद्ध हृदयवाले हैं। हृदयकी शुद्धता बहुत ऊँचा गुण है। परन्तु यह गुण जब बालकी खाल निकालनेके आग्रह तक बढ़ जाता है जब इसका अतिरेक हो जाता है तब या तो मनुष्य शून्यमनस्क हो जाता है या निष्क्रिय कायर बन जाता है। यदि आपका स्नेह और सहारा मिलनेसे सुग्रीवका यह दोष मिट जाय, तो आप दोनोंकी जोड़ी जगतके कल्याणके लिए अनुपम सिद्ध होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

अधीर लक्ष्मण बीचमें ही बोल पड़े रावणका कोई पता है?"

रावणके बारेमें इस समय हमें कोई निश्चित ज्ञान नहीं है। परन्तु सीताजीके अपहरणके बाद अनुमान यह होता है कि रावण लंकामें ही होना चाहिये। उसके रहनेके अनेक स्थान हैं। उसके पास बड़ी बड़ी सिद्धियाँ हैं। वह केवल भूचर ही नहीं है परन्तु जलचर और नभचर भी है। परन्तु इसकी कोई चिन्ता नहीं। सुग्रीवका मन यदि इस प्रश्न पर एकाग्र हो गया तो उसके पास इतना विशाल और प्राणोंकी बाजी लगाकर अपना ध्येय सिद्ध करनेवाला सैन्य है कि

पातालसे भी रावणका पता लगा लिया जायगा। आपकी प्रभुताके प्रतापसे यदि वालि वशमें हो जाय, तव तो किसी वातकी कमी ही न रह जाय। पर वालिका हृदय-परिवर्तन असभव है। यदि उसका हृदय-परिवर्तन सभव हो जाय, तो वह जगतका एक अनोखा चमत्कार कहा जायगा। वालि-पुत्र अगद भी कम वहादुर नही है। वहादुरीके साथ उसका चरित्र-वल भी वहुत ऊचा है, और अपनी वात दूसरोको समझानेकी उसकी शक्ति भी अद्‌भुत है।" हनुमानकी वाते सुनते सुनते रामचन्द्रजीने पूछा . "भाई हनुमान, रावणके वारेमे तो तुम वहुत कुछ जानते हो। परन्तु सीताके अपहरणका तुम्हे कैसे पता चला ?"

"सवसे पहले रावणका विमान इस मार्गसे गया। वह धीरे धीरे उड रहा था। वहुत ऊचाई पर भी नही था। सुग्रीव, मै और दूसरे कुछ साथी गिरि-शिखर पर वैठे थे। इतनेमें एकाएक एक आवाज सुनाई पडी। आवाजसे मालूम होता था कि कोई स्त्री विमानमे वैठी है। उसके कुछ वन्य आभूषण भी थोडे थोडे अन्तरसे गिरने लगे। उन्हे एकत्र करके हमने सुरक्षित रख दिया है। आपसे मिलनेके वाद मै तुरन्त समझ गया कि वह स्त्री सीतामाता ही होगी, और कोई नही।"

सीताजीके आभूपणोकी वात सुनते ही सीतापतिको रोमाच हो आया। विरह-वेदनाकी एक लहर मनमे उठकर विलीन हो गई।

दोपहर हो गई थी। तीनो एक साथ उठे और गिरिराजकी वाकी चढाई चढने लगे।

हनुमानके कन्वे पर हाथ रखकर चलनेवाले रघुवीरका चित्र कितना सुन्दर लग रहा था।

३५

सुग्रीवकी मित्रता

राम लक्ष्मण और हनुमानकी पवित्र त्रिपुटी सुग्रीवके निवासके समीप पहुंच गई। अतिथियोंका स्वागत करते करते सुग्रीवके नेत्रोंसे हर्षाश्रु टपकने लगे। प्रत्यक्ष मिलनसे उनका भ्रम और भय दूर हो गया। राम और सुग्रीवके मिलनसे सारे वातावरणमें उल्लास छा गया।

देखते ही देखते एक विशाल वृक्षके नीचे दो मनोहर पर्णकुटियां खड़ी हो गईं। उन कुटियोंमें तापस वृत्तिके अनुरूप सुविधायें खड़ी कर दी गईं। वास्तवमें एकाध इशारेमें ही यह सारा काम तमाम होते देखकर लक्ष्मण प्रसन्न हो गये। थोड़ा विश्राम लिया कि गरम जल आ गया। अतिथियोंकी थकान उतारनेवाली सेवामें परिचारक लग गये। लक्ष्मण तुरन्त पर्णकुटियोंका निरीक्षण कर आये। जहां जहां उनकी दृष्टि पहुंचती वहीं सुग्रीवके सैनिक किसी न किसी कार्यमें रत दिखाई पड़ते। सुग्रीव और उनके मुख्य साथियोंके सिवा अब कोई रामचन्द्रको घेर कर बैठा नहीं था। सबने एक बार जीभर कर अतिथियोंका स्वागत कर लिया दर्शनामृत पी लिया और उनकी मधुर वाणी सुन ली। इसके बाद सब अपने अपने काममें लग गये। भक्तिपूर्ण हृदय और हाथोंसे किये जानेवाले इस श्रमने रामको भी गद्गद कर दिया।

जंगलमें मंगल करनेवाले और नव चेतनका संचार करनेवाले ऐसे शक्तिशाली मानव समूह अनेक असंभव बातोंको संभव बना दें अनेक अभागोंको भाग्यवान बना दें तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

एकाकी मनुष्य चाहे जितना महान हो परन्तु ऐसे प्रेमल मानव समूहके अभावमें उसका समाज-व्यापी कार्य अधूरा ही रहता है। सुग्रीवके पास ऐसा आज्ञाकारी समूह था। उसे देखकर हनुमानका यह

वाक्य सहज ही याद आ जाता था· "रामचन्द्र और सुग्रीवकी जोडी जगतका कल्याण करनेवाली सिद्ध होगी।"

राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान अशोक वृक्षके नीचे आ पहुचे। सव बिछाये हुए दर्भासनो पर बैठ गये। राम और सुग्रीवके आसन इस ढगसे लगाये गये थे कि दोनो सूर्यके दर्शन कर सके। कुछ ही देरमे मत्रोच्चार करते हुए हनुमानजीने रघुपतिसे विनती की· "आपके पवित्र हाथका दान कीजिये।" तुरन्त रामका लम्बा हाथ आगे आया। सुग्रीवने तो अपना हाथ आगे वढा ही दिया था। इतनेमे एक सेवकने लाकर अग्नि सामने रख दी। राम-सुग्रीवका कर-मिलन हुआ। हनुमानजी इस अवसर पर आनन्दमग्न होकर बोल उठे "अग्निके समीप, सूर्य-चन्द्रकी साक्षीमे, पाच पचोके समक्ष पूरी हुई यह मित्रताकी विधि चिरन्तन आदर्शका रूप ग्रहण करे!" इस ध्वनिसे सारा वातावरण गूज उठा। आसपास खड़े सरल, वफादार मानव-समूहने जयघोप किया। गीत गाये। वाजे वजे। जलचर, स्थलचर और नभचर जीवोमें आनन्दकी लहर दौड गई। ऐसा धन्य पवित्र दृश्य प्रत्यक्ष देखनेका सौभाग्य विरले ही मानवोको प्राप्त होता है, परन्तु उसका परोक्ष प्रभाव तो सारे विश्वमे फैल जाता है।

मित्रताकी विधि पूरी होनेके वाद रामने सुग्रीवको हृदयसे लगा लिया। सुग्रीवने आलिगन तो किया, परन्तु तुरन्त ही वे रामके चरणोमें गिर पडे और वोले "आपने मुझे अपना हृदय-प्रिय मित्र वनाया, इसमें आपकी अपार महत्ता है, परन्तु मै आपके चरणोका ही अधिकारी हू। यह सच है कि मेरे पास असंख्य सैनिक है, परन्तु मै मस्तकरहित धडकी तरह हू। आपके मिलापसे ही मै मस्तकवाला महाभागी वना हू। सख्या चाहे जितनी विशाल हो, भले वह सद्गुणोवाली भी हो, परन्तु यदि वीर्य, धैर्य, उदारता, तप और अनासक्तिका सुमेल न हो तो मव व्यर्थ है।"

"सुग्रीवराज, इस कथनसे तुम्हारी महत्ताका ही परिचय मिलता है। परन्तु सीधी-सादी लोकोक्तिके द्वारा अपनी वात कहू, तो मोर अपने पखोके कारण ही सुन्दर लगता है।"

हनुमान गद्गद होकर कहने लगे — हे नरपुंगवो! आप लोग अपने अपने स्थान पर महान हैं। परन्तु रघुवंश मणि! आप तो मानव पुरुषार्थके भी शिरोमणि हैं। ये सूर्यदेव जैसे निरन्तर क्रियाशील रहते हैं वैसे ही यह मैत्री भी निरन्तर क्रियाशील रहनी चाहिये। गुणोंका समूह जहां सम्भावनासे एकत्र हो वहां आपसका ईश्वरका स्वरूप खड़ा होता है। यहां इसको भी सुयोग प्राप्त हुआ है। अग्नि जिस प्रकार प्रत्येक घरमें तेज, पवित्रता और सेवा प्रदान करके मानव-जातिको उज्ज्वल बनाती है उसी प्रकार आप दोनोंकी मित्रता अंधकारमय जगतको प्रकाशित करेगी।

'नरश्रेष्ठो, आदर्श मित्रतामें लेन देनके व्यापारिक सौदे नहीं होते, उसी तरह केवल बड़ी बड़ी बातें भी नहीं होतीं। उसमें होती है एक दूसरेके लिए सतत कर्तव्य पालन करनेकी भावना। दोनों मित्र अपने अपने त्याग और समर्पणके सूत्र ही याद रखते हैं। इन त्यागों और समर्पणोंके योगमें ही सच्चा उपभोग और अखण्ड आनन्द प्रकट होता है। मुझे आशा ही नहीं परन्तु पूरा विश्वास है कि इस मित्रताके फलस्वरूप जानकी और रूमा दोनों सतीरत्न हमें वापिस मिलेंगे। इसके सिवा परस्त्री हरणके महापापका परिणाम बड़से बड़े शक्ति सम्पन्न मनुष्यके लिए भी इसी लोकमें भयंकर होता है इसका भी मानव जातिको प्रत्यक्ष प्रतीति हो जायगी।

इतनेमें भोजनका निमंत्रण आया और सब अपने अपने स्थान पर गये। रामके पीछे पीछे लक्ष्मण चल रहे थे। उनका मन विचारोंमें डूबा हुआ था। सीताजीका लाडला देवर और रामका प्रिय लघुभ्राता इतना गम्भीर क्यों बन गया होगा?

लक्ष्मण सोच रहे थे कि अपरिचित मानव जगत और प्राणी जगतके सम्पर्कमें आनेसे जो ज्ञान और सुख मिलता है वह अयोध्याके राजमहलमें और समीपके स्नेहीजनों और सगे-सम्बन्धियोंसे कभी मिल सकता था? परन्तु अन्तमें उनकी समझमें आ गया कि इस सबका मूल शुद्ध पवित्र और विश्वव्यापी प्रेम ही है।

३६

लक्ष्मणकी मातृदृष्टि

गिरि-शिखर पर वनी पर्णकुटियोसे थोडे अन्तर पर एक सुन्दर वृक्ष था। राम और लक्ष्मण दोनो उसकी सुखद छायामे वैठे थे। वहासे एक ओर गहरी खाई और तलहटी दिखाई देती थी, दूसरी ओर ऋष्यमूक पर चढने और उतरनेके लिए अनेक टेडी-मेढी पगडडिया दिखाई पडती थी। कही कल-कल नाद करते हुए झरने वहते दिखाई देते थे, तो कही कूदते-फादते छलागे भरते हरिण दृष्टिगोचर होते थे। चारो ओर फैली हुई इस प्राकृतिक सम्पदाका दोनो भ्राता मूक निरीक्षण कर रहे थे। देखते देखते रामको सीताका स्मरण हो आया। साथ ही सती सीताका अपहरण करनेवाला रावण भी उन्हे याद हो आया। न्यायकी भावनामे अधिक गहरे उतरते हुए श्रीरामचन्द्र वोल उठे "लक्ष्मण, यह सच है कि सीताका अपहरण हुआ है। यह वात भी सच है कि रावणके सिवा इतना वडा खतरा उठानेकी दूसरे किसीकी हिम्मत नही है। जगह जगह हमने यह सुना कि इसके लिए रावण ही अपराधी है। परन्तु मुझे लगता है कि मेरे जैसे पुरुपको अपराधीके विरुद्ध सक्रिय कदम उठानेसे पहले इस प्रश्नकी कडी टीका और छानवीन कर लेनी चाहिये। ज्ञानीजनोने ठीक ही कहा है कि कोई भी ऐसा सार्वजनिक कदम उठानेसे पहले अधिक विवेकसे काम लेना चाहिये।"

"वडे भैया, कोई साहस करनेसे पूर्व रुकना और विचार करना चाहिये, यह तो समझमे आता है। परन्तु एक ही वातको वार वार दोहराते रहना क्या उचित है? ऐसे कृत्य करनेवाले लोग क्या साक्षी रखकर इस तरहके काम करते है, जिससे हमे प्रत्यक्ष प्रमाण मिल सके? और क्या सारे प्रत्यक्ष प्रमाण सत्य ही होते है?"

"भाई, मै अच्छी तरह जानता हू कि आखोसे देखा हुआ भी झूठा होता है, जव कि तटस्थ वृत्ति रखकर हृदयसे सोचा हुआ अधिक सच्चा होता है। यह भी सच है कि हम विचारोसे चिपटे

रहे परन्तु उन्हें आचरणमें न उतारे तो उससे अनर्थ बनता है। फिर भी इस प्रश्नका स्वयं मेरे साथ भी व्यक्तिगत सम्बन्ध है इस लिए मेरा यह विशेष धर्म हो जाता है कि मैं अपराधीका न्यायपूर्ण दृष्टिसे विचार करनेकी अधिक सावधानी रखूं।

इतनेमें सुग्रीव और अजना-पुत्र हनुमान दोनों जानकीके वस्त्र आभूषण लेकर उपस्थित हुए।

कृपानाथ उस विमानसे गिरे हुए वस्त्र आभूषण ये हैं। आप इन्हें पहचान लीजिये।

रामने सारे आभूषण देखे तो अवश्य परन्तु एकको भी पहचान न सके। कितने आश्चर्यकी बात थी! वर्षों साथ रहनेके बावजूद और अधिकतर दिन रात एकसाथ रहनेके बावजूद परम विचक्षण रघुपति सीताजीके आभूषणोंको पहचान न सके। कैसे पहचानें? वे केवल वेशसे ही तापस नहीं थे परन्तु वृत्तिसे भी तापस थे। तापसी वृत्तिमें आनप्रान तपस्वी थे। यह काल अपनी पत्नीके अंग प्रत्यंगोंको एकाध बार भी एकटक देखनेका काल नहीं था। यह तो अपनी पत्नीके साथ रहते हुए भी अविकारी भावोंकी प्रबल साधना करनेका विरल अवसर था। और राम इस साधनामें अभी तक सच्चा विजयी ही सिद्ध हुए थे।

रामने लक्ष्मणको इशारेसे कहा ये आभूषण किसके हैं? पहचान लो! लक्ष्मणने हार हाथमें लिया परन्तु पहचान न सके कंकण देखे परंतु उन्हें भी पहचान न सके। अन्तमें उन्होंने झांझरें देखा और एकदम बोल उठे बड़े भैया न तो मैं सीतामाताके हारको पहचानता हूं न उनके कंकणोंको। परन्तु उनकी झांझरोंको मैंने पहचान लिया। मैं रोज प्रातःकाल सीतामाताके चरणोंमें प्रणाम करता था इसीलिए उनकी झांझरोंको मैं पहचान गया।

हनुमान और सुग्रीव दोनों यह अनोखा दृश्य देखते ही रहे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी हनुमानके व्रत नियमोंको इस दृश्यसे बहुत बड़ा प्रोत्साहन मिला। स्त्रीके अंग प्रत्यंग कभी देखे ही न जायें यह संभव नहीं हो सकता। परन्तु विषय-वृद्धिकी भावनासे देखे जानेवाले अंग प्रत्यंग तथा माता-पुत्र भावसे अथवा भ्राता भगिनी भावसे देखे जानें

वाले अग-प्रत्यगोमे आकाश-पातालका अन्तर होता है। इस घटनासे एक अत्यन्त सहज पाठ सीखना चाहिये। हमेशा साथ रहनेके वावजूद मनुष्य ऐसी कितनी ही वातोसे अनजान रह सकते है। यह तो दृष्टि दृष्टिका भेद है। हमारा मन जिसकी ओर न हो वह व्यक्ति या वस्तु वार वार हमारे सामने आये तो भी अथवा उसके साथ रात-दिन रहने पर भी हमे उसका खयाल नही रहता।

इस्लामी सस्कृतिके इतिहासमे मुस्लिम सन्त महात्मा हवीवकी एक कथा आती है। वे अपने साथ रहनेवाली एक सेविकाको वारह वर्षके वाद भी पहचान नही पाते थे। वे नामसे उसे जानते थे, परन्तु मुहसे उसे पहचान नही सकते थे। घूघट निकालना, वडे-वूढोका अदव करना, घरमे जानेके पहले खासना-खखारना — ऐसी कितनी ही प्रथाये उच्च माने जानेवाले समाजोमे प्रचलित होती है। परन्तु निष्कुलानन्दजी महाराजके कथनानुसार मनुष्यके मनमे प्रवल विकार भरे हो, तव अगोको परस्पर छिपानेका प्रयत्न करने पर भी उन्हे देख लेना असभव नही होता। इसका अर्थ यह नही है कि समाजमें कोई नियम ही नही होने चाहिये। नियमोकी मर्यादा तो होनी ही चाहिये, परन्तु उनकी आत्माका पालन मुख्य रूपसे होना चाहिये। आत्माका पालन भलीभाति हो तो ही इस वातका विवेक करना आयेगा कि मर्यादा कहा तक पाली जाय और कहा तक न पाली जाय।

इस अवसर पर लक्ष्मणकी मातृभावपूर्ण सीताभक्तिकी भी सव पर सुन्दर छाप पडी। रामचन्द्रजीको जिसकी खोज करनी थी, वह वस्तु उन्हे मिल गई।

रामको अव इस वातका पूर्ण विश्वास हो गया कि रावणने ही जनक-सुताका अपहरण किया है। अपराधी कौन है, यह पता लगानेका काम — जो न्यायका मुख्य अग है — आसानीसे पूरा हो गया। लक्ष्मण और हनुमान मानो आदर्श वकील वन गये, क्योकि उन्हीके कारण रामचन्द्र इस घटनाके सत्यको प्राप्त कर सके। सत्यप्राप्तिका मुख्य साधन आन्तरिक पवित्रता है, परन्तु सत्यलक्षी तर्क उसकी प्राप्तिको निश्चित वना देते है।

देखो सुग्रीव तुम्हारे शरीरमें अपार चेतना शक्ति भरी हुई है। परन्तु उस पर मूढ भयका आवरण चढ़ गया है। यह आवरण तुम्हें उतार फेंकना होगा। एक रहस्यकी बात भी मैं तुमसे कह दूं। अपराधी चाहे जितनी प्रचण्ड शक्ति रखता हो परन्तु जिस समय वह अपराध करता है उस समय उस पर शैतानकी सवारी आती है। उसकी सच्ची शक्ति नष्ट हो जाती है। बाहरसे वह चाहे जितनी धाक धमकी दिखाता हो, परन्तु उसमें सच्चा पानी या सच्चा तेज नहीं रहता। अन्यायका प्रतिकार करनेके लिए जब कोई निःशस्त्र और अकेला चेतनावान देहधारी भी सच्चे हृदयसे निर्भय बनकर अन्यायीको चुनौती देता है तब सारा ब्रह्माण्ड कांप उठता है तो वालि भला किस गिनतीमें है? भले आज ही तुममें यह उत्साह और यह साहस पैदा न हो और संभव है कि चुनौती देनेके बाद स्थूल दृष्टिसे तुम भी हारो, परन्तु तुम्हारी यह पराजय मेरी दृष्टिमें तुम्हारी सच्ची विजय होगी क्योंकि इससे तुम्हारा आत्म विश्वास बढ़ेगा। इतना ही नहीं यह कार्य यदि जगतके इतिहासके पृष्ठों पर चढ़ गया तो उससे कितने ही शोषितों और अन्याय-पीड़ितोंमें प्राणोंका संचार होगा। बड़ीसे बड़ी महासत्ताओंके अन्यायका सामना करनेके लिए अकेला मानव भी अन्यायीको चुनौती देनेके लिए तैयार होगा। मुझे तुम्हें अपना पराधीन या अकर्मण्य भक्त नहीं बनाना है, परन्तु मेरा दृढ़ गुणानुरागी और स्वतंत्र साथी और मित्र बनाना है।

अब सुग्रीवके मनमें अभयका प्रवेश हुआ और उसकी सुप्त चेतना जाग उठी। यह देखकर हनुमानके हर्षका और लक्ष्मणके आश्चर्यका पार न रहा।

*

शय्या पर करवटें बदलते बदलते सुग्रीवने बड़ी कठिनाईसे रात बिताई। सोनेके लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न किये परन्तु सब निष्फल गये। एक विचार उनके मनमें यह आता कि वालि मेरा बड़ा भाई है महाशूर है उसके सामने जाकर उसे चुनौती कैसे दी जा सकती है? दूसरा विचार यह आता कि यह रामकी आज्ञा है, और रामकी

आज्ञा कैसे तोडी जा सकती है? इन दो विचारोने सुग्रीवकी नीद हराम कर दी। उष काल हुआ, पौ फटी, अरुणोदय होने लगा। सूर्यके प्रकाशके साथ साथ सुग्रीवमे शक्तिका सचार होने लगा। उन्होने अपनी समूची हिम्मत इकट्ठी की और शौच-स्नान आदिसे निवटनेके पश्चात् वालि-नगरके महाद्वारकी दिशामे प्रयाण किया।

रामकी शुभेच्छाये तो उनके साथ थी ही। परन्तु सुग्रीवके अन्तर-मे शुभेच्छाओकी अपेक्षा रामश्रद्धाका वल ही अधिक था। परन्तु यह श्रद्धा काचनके समान शुद्ध नही थी, उस श्रद्धा पर चमत्कारका आवरण चढा हुआ था। उनके दौडनेमें श्रद्धाकी अपेक्षा चमत्कारकी मात्रा अधिक थी। उन्होने यह मान लिया था कि रामने मुझे अकेला जानेके लिए कहा है, अत कोई चमत्कार अवश्य होनेवाला है। नगरके मुख्य द्वार पर जाकर सुग्रीवने तुमुल नाद करना आरभ किया। उनकी किल-कारियोने सारे नगरमे खलवली मचा दी। वालिको सूचना की गई कि सुग्रीवराज चुनौती दे रहे हे। वह आगववूला हो गया। क्रोधसे उसके अग-प्रत्यग जलने लगे। वह अपनी गदा लेकर एकदम खडा हो गया और दूसरे हाथकी मुट्ठी वाधकर उसने धरती पर अपने पाव पछाडे। आसपासकी धरती हिल उठी। तारा तुरन्त अन्त पुरसे दौड़ी आई और पतिके पैर पकडकर उसे रोकने लगी।

"स्वामी, आप साहस न करे। सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत छोड़कर नीचे आनेकी कभी हिम्मत नही कर सकता; उसके इस कार्यके पीछे अवश्य कोई वडी शक्ति और वडा सहारा होना चाहिये। इसके सिवा, न्याय भी उसके पक्षमे हे। आपने वडे भाईके नाते अपना धर्म तो भुलाया ही है, परन्तु साथमे मानवताकी भी हत्या की है। पशुको भी लज्जित कर दे ऐसा कुकृत्य आपने किया है। मुझे क्षमा कीजिये, परन्तु आपकी अर्धांगिनीके नाते आपसे यह सव कहना मेरा कर्तव्य है, इसीलिए मै कह रही हू। मेरी यह हार्दिक प्रार्थना है कि आप मुझे अवला या मूर्ख मानकर मेरे वचनोको न ठुकराये।"

इन वचन-वाणोने वालिके हृदयमे गहरी चोट की। कुछ क्षणके लिए तो वह स्तब्ध हो गया, चित्रवत् वन गया। परन्तु उसके गर्वने

अधिक समय तक यह स्थिति नहीं रहने दी। उसने पवित्र शीलवानी अपनी विशाल भुजाओंसे प्रभावशाली प्रहार शुरू कर दिया। सागरका आगे भभक उठी। घन घोर गर्जी और वालि आगे नाना प्रकार अस्त्र शस्त्र बरसाने लगा। वालिके पीछे लगकर सुग्रीव भी पत्थरोंसे मार पड़ी। मन्दोदरीके पास आते ही उसने सुग्रीवकी ललकार सुनी अब मैं अन्यायको सहन नहीं कर सकूँगा। भले कितनी ही बड़ी विपत्ति क्यों न आये। उसने तारा मन्दोदरीका प्रहार किया ? हुए हैं? अरे पापी! वालिके इस उग्र वारको सुग्रीव सह न सके। वह पीछे हटे। अवसरका लाभ उठा कर वालिने एक छलांग मारी और सुग्रीवके कंधे पर चढ़ जाकर मुष्टिका प्रहार किया। सुग्रीवके शरीर पर निशानवाले वालिके हाथों एक सब प्रकार कारण ऐसा गहरा घाव हो गया कि गरम गरम खून सुग्रीवके शरीरसे बहकर नीचे गिरने लगा। अब क्या पूछना? सुग्रीव वालिका मद देखकर तिल भी खड़े न रहे। वह ऋष्यमूक पर्वतकी ओर मुँह करके भागने लगे। रामचन्द्रजी मार्गमें ही उन्हें मिले। परन्तु सुग्रीव ठहरे न रहे और पर्वतकी दिशामें भागते रहे। रामने उनके मनका भाव निकाल लिया। वे भी सुग्रीवके पीछे दौड़े। ऋष्यमूककी तलहटीमें पहुँचने पर सुग्रीवकी जानमें जान आई और वह खड़े हो गये। रामके चरणोंमें उन्होंने प्रणाम भी किया। परन्तु उनके मनमें रोष था। उन्होंने रामको उलाहना देना शुरू किया

अपने शरीर मित्रका ऐसा घोर अपमान और अन्यायी द्वारा दिया हुआ उसका तीव्र दुःख भी आपसे नहीं सटका! आप चाहें तो पलभरमें कुछ भी कर सकते हैं। मैं आपको महान चमत्कारी मानता था, परन्तु आज देख लिया कि आपमें कोई भी विशेष शक्ति नहीं है। क्या आप दूर खड़े खड़े तमाशेकी तरह यह सब देख रहे थे? रामने सुग्रीवके माथे पर अपना वरद हस्त रखा और उनके घाव पर वनस्पतिका लेप करके उन्हें शान्त किया। सुग्रीवका मन थोड़ा स्वस्थ हुआ तब जगवद्य श्रीरामने इस अवसरकी अपनी नीति स्पष्ट की।

"सुग्रीव, तुम्हे बुरा लगा हो तो क्षमा करना। तुम तो मेरे अभिन्न मित्र हो। इसलिए तुम्हारे सामने खुले मनसे सारी बाते कहनेका उत्साह होता है। चाहे जैसा निश्चित सत्य हो, परन्तु जिसका हम पर पक्का विश्वास न हो उस मनुष्यके सामने सत्यकी स्पष्टता करनेसे कोई लाभ नही होता। ऐसे उदाहरणमे तो मूक सत्क्रिया ही समय पाकर अपने आप बोल उठती है। परन्तु मेरे प्रति तुम्हारी प्रवल श्रद्धाको देखकर इस विषयमे स्पष्टता करना मेरा धर्म हो गया है। देखो, पहली बात तो यह है कि चरित्र ही बडेसे बडा चमत्कार है; मै मानता हू कि प्रत्येक देहधारीमे यह चमत्कार है। मुझमे जो चमत्कार है वही तुममे भी उत्पन्न हो सकता है। इसमे मुख्यत. स्वपुरुषार्थ ही आवश्यक होता है। मा बालकको चलानेके लिए हाथका सहारा भले दे, परन्तु बालकको अपने ही पैरोसे चलना चाहिये। दूसरे, मै तुमसे थोडी दूर इसीलिए खडा था कि जरूरत पडने पर तुम्हारी सहायता कर सकू। तुमने जिस हिम्मतसे वालिको चुनौती दी, उसी हिम्मतसे तुम्हे उसके सामने खडा भी रहना चाहिये था। परन्तु तुम ऐसा न कर सके। कोई चिन्ता नही, जो कुछ हुआ अच्छा हुआ। मुझ पर तुम्हारी जो अधश्रद्धा थी वह दूर हो गई, इससे तुम्हारी या मेरी कोई हानि नही हुई। मेरे कारण तुम्हारे मनमे साहसका जो थोडा भी सचार हुआ, उससे तुम्हे लाभ ही हुआ है। मै फिर तुम्हे याद दिलाता हू मित्र, प्राणोकी और सम्पत्तिकी वलि चढाकर भी नैतिक साहस वढाना सदा वाछनीय है। अलवत्ता, इस नैतिक साहसका लक्ष्य सत्य होना चाहिये। और नैतिक साहसके सचारके वाद जो विजय प्राप्त हो उससे गर्वकी वृद्धि नही होनी चाहिये, परन्तु गहरे आत्म-निरीक्षणके साथ प्रेम और नम्रताकी ही वृद्धि होनी चाहिये।"

रामचन्द्रजीका प्रत्येक शब्द सुग्रीवके हृदयमें गहरा पैठ गया। कैसी हृदयस्पर्शी उनकी वाणी थी! रघुपतिका एक एक वचन मूत्रके समान था। सुग्रीव गद्‌गद हो गये। खूब पश्चात्ताप करते हुए वे वोले "रघुवीर, आप तो दयाके सिन्धु है। मूर्खतावश मैने क्षणभरमे-

आपके साथ कितना बड़ा अन्याय कर डाला। निश्चय विभूतिरा भी आखिर वालनरी हू तब मनुष्य बन जाना होगा। स्वार्थ के कारण अब मेरी समझमें आ गया है। सचमुच क्षुद्र स्वार्थ आवश्यक मनुष्यकी सद्बुद्धि दब जाती है और दुर्बुद्धि जोर पकड़ती है।

दीनानाथ आपकी मित्रताने हृदयके भीतर पटकर गहरा निरी क्षण करनेका जो अवसर मुझे दिया है उसके लिए मैं आपका सदा तक ऋणी रहूँगा। मेरे शरीरके राई जितने छोटे छोटे टुकड़े कर दिये जाय तो भी अब मैं पीछे नहीं हटूँगा। आपकी दूसरी कोई भी स्थूल सहायता मैं नहीं चाहता। आपके शुभ आशीर्वाद और आपकी प्रेरणा ही मेरे लिए पर्याप्त है।

सुग्रीवकी वाणी भी अब तेज गतिसे चलने लगी। उनके पश्चा त्तापसे जो पवित्रता उद्भूत हुई उस पवित्रतामें से ही यह स्वयम्फूर्त जोश फूट पड़ा था।

रामका यह प्रयोग पूरी तरह सफल हुआ। उनके हर्षका पार न रहा। कुछ क्षणके लिए तो वे भावाभिभूत हो गये। रामकी इस दशा का लाभ उठाकर सुग्रीवने अपना सिर रामकी गोदमें डाल दिया और रामका पवित्र हाथ उस पर घूमकर सुग्रीवको स्नेहरस पिलाने लगा। इसी बीच लक्ष्मण और हनुमान उनकी खोज करते करते पास आ पहुँचे। एक पेड़की आड़में खड़े रहकर पहले तो दोनोंने यह अनुपम दृश्य देखकर कृतार्थता अनुभव की। कुछ क्षण बाद वे राम और सुग्रीवके पास पहुँच गये। तुरन्त चपल लक्ष्मणने रामका एक हाथ दबाना शुरू किया। संकेत द्वारा रामकी आज्ञा पाकर हनुमान भी सुग्रीवके दोनों पैर दबाने लगे। रामकी आज्ञाके कारण हनुमान द्वारा सुग्रीवकी परिचर्या तो दोनों प्रकारसे उचित थी। परन्तु रामकी उप स्थितिमें अपने पाँव दबानेकी क्रिया अनिवार्य न लगनेके कारण सुग्रीव सकोचसे अकुला रहे थे। इसीलिए वे बार-बार अपने पैर खींचनेका प्रयत्न करके हनुमानसे अपनी सेवा न करनेका अनुरोध कर रहे थे। परन्तु हनुमान क्या छोड़ने लगे?

*

रामके वचन सुग्रीवने हृदयसे सुने थे। अब उनके मनमे थोडा भी सन्देह नही रह गया था। आज सुग्रीवने प्राणोकी वाजी लगाकर भी आखिरी हिसाव वसूल कर लेने या चुकानेके लिए कमर कस ली थी। उन्हे यह स्पष्ट समझमें आ गया था कि अपनी प्राणप्रिया रूमाको या तो वालिके पजेसे छुडाना चाहिये अथवा वालिके साथ युद्ध करके मर मिटना चाहिये। अब न तो सुग्रीवमे कायरता थी और न भातृ-भावका मोह। उनकी ऐसी तैयारी देखकर सुग्रीव-सखा रामचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने सुग्रीवके गलेमे फूलमाला पहनाई। माथे पर कुंकुमका तिलक करके और हाथमे गदा लेकर सुग्रीव आगे वढे। सुग्रीवके पीछे उनकी सेना चली।

वालिको समय पर इसकी सूचना मिल चुकी थी। वह सुसज्ज होकर नगरके वाहर आया। वही सुग्रीवसे उसकी भेट हो गई। दोनो वीरोका युद्ध आरंभ हुआ। दोनो ओरके सैनिकोको रोक दिया गया। सुग्रीवने चुनौती दी: "हम दोनो एक-दूसरेसे लडकर अन्तिम निर्णय कर लेगे। एक भी सैनिक इस युद्धमे अकारण क्यो मरे?" वालिके मनमें जितना वैर और क्रोध था, वह सव वालि निकालने लगा। परन्तु पता नही किस कारणसे आज सुग्रीव किसी भी तरह हार नही रहे थे! सभव है, रामचन्द्रजीके आश्रयके कारण सुग्रीवमे इस वलका सचार हुआ हो, अथवा नीति और न्याय उनके पक्षमे थे इसी कारणसे उनमें यह शक्ति पैदा हुई हो। जान पडता था कि सुग्रीवने आज मृत्युभयको जीत लिया है। वार वार वालिके भयकर घूसे पड़ते थे, परन्तु आज सुग्रीव उनकी परवाह नही करते थे। वालिने नीतिको तो पहलेसे ही एक ओर रख दिया था। अव युद्धके सामान्य नियमोका भी वह उल्लंघन करने लगा। कुछ देर विश्राम करके स्वस्थ होनेकी सुग्रीव-की माग वालिने स्वीकार तो कर ली, परन्तु उसकी असावधानीका लाभ उठानेके लिए उसने अचानक अपनी गदा उठाई। कुछ ही दूर वृक्षकी आडमे खडे रामचन्द्रजीसे अव रहा न गया। उन्होने अपना अमोघ वाण वालिके हृदयमे भोक दिया। वह तुरन्त जमीन पर गिर पडा। उसकी गदा भी कहाकी कहा जा गिरी। उसकी छातीसे मानो

रकनका स्रोत बह निकला। उसे अपनी मृत्यु बहुत पास आई जान पड़ी। उसे अपनी मृत्युसे भी ज्यादा दुःख इस बातका हुआ कि उसकी गन्दा निष्फल रही और सुग्रीव बच गया। वह बोल उठा 'राघव सुग्रीवके प्रति आपके इतने बड़े पक्षपातका क्या कारण है? और यदि मुझे मारनेका ही आपका इरादा था तो आपने सामने आकर मुझे क्या न मारा? इस प्रकार छिपकर मारना रघुपति जैसे महायोद्धाको शोभा नहीं देता। मैं आपको अन्तिम क्षण तक निष्पक्ष मानता था। परन्तु मेरी यह मान्यता झूठी साबित हुई। इतना कहते कहते वालि मूर्छित हो गया। सुग्रीव तुरत अपने ज्येष्ठ भ्राताके पास दौड़ गये और उसकी सेवा शुश्रूषामें रत हो गये। रामने भी वालिका मस्तक अपनी गोदमें लेकर उसकी सेवा शुरू कर दी। अन्तःपुरमें पता चलते ही तारा और रूमा दोनों दौड़ती आई। दोनों ओरके सैनिक भी परिचर्यामें लग गये। युद्धक्षेत्र मानो सेवाधाम बन गया। कैसा अनोखा दृश्य था वह! धर्मयुद्ध करनेवाले लोग विरोधी पक्ष अधर्मी हो तो भी व्यक्तिगत वैर नहीं रखते। उनका विरोध होता है गलत नीति रीतिके खिलाफ न कि व्यक्ति या समूहके खिलाफ। मानवताके मंगल काव्यकी यही महिमा है।

कुछ देर बाद वालि होशमें आया। उसका मन और मस्तिष्क दोनों स्वस्थ हुए। उसने आँखें खोलीं और देखा तो उसका सिर रामकी गोदमें रखा हुआ था। उसे थोड़ा संकोच हुआ।

बालिराज तुम जरा भी संकोच न करो।' कहकर रामने अपनी वाग्धारा बहायी पुत्रवधू छोटे भाईकी पत्नी बहन और कुमारी कन्या—ये चारों क्रमशः ससुर जेठ भाई और समीपके समाज से सुरक्षित रहनी चाहिये। जिससे रक्षण प्राप्त होना चाहिये वही यदि भक्षण करे तो इससे बड़ा भयंकर कृत्य दूसरा नहीं हो सकता। तुमने छोटे भाई सुग्रीवकी पत्नी रूमा पर कुदृष्टि डाली तभीसे यह भयंकर कृत्य तुमने आरंभ किया है और इसी कारणसे तुम वधके पात्र बने हो। अब तुम समझ गये न? फिर भी मैं अंत तक यह मानता रहा कि सुग्रीव स्वयं ही इस विषयमें निर्णय करे और इस प्रश्नका

निवटारा करे। सुग्रीव पर तुमने पिछली बार जो प्रहार किया और इससे पहले जो प्रहार तुम करते रहे, उन्हे तो मै सर्वथा मौन रह-कर देखता रहा। परन्तु जब तुमने सामान्य युद्ध-नियम भी तोडनेका प्रयत्न किया, तभी मुझे यह कदम उठाना पडा। तुमने मुझे पक्षपाती कहा, यह एक प्रकारसे सच है। सत्य और न्यायका पक्षपाती मै सदासे रहा हू और आगे भी रहूगा। प्रेमके सामने मै गुलाम हू और रहूगा।"

वालिको अब अपने अपराधका भान हुआ। उसकी आखोसे अश्रुधारा वहने लगी। पिताके आसू पोछते पोछते अगद भी रो पडा। लक्ष्मण, सुग्रीव, तारा, रूमा और देखनेवाले सब लोगोके हृदय गद्‌गद हो गये।

"मुझ जैसे पतितको पावन करनेवाले रामचन्द्र, मै हृदयसे आपका आभार मानता हू। ऐसा लगता है मानो आप मेरे उद्धारके लिए ही अयोध्यासे इतनी दूर चलकर आये है। मेरा जीवन तो विगडा। परन्तु अन्त समय आपके सान्निध्यमें आया, इसे मै अपने जीवनका परम सौभाग्य मानता हू। दुख इतना ही है कि यह पापी शरीर आपके सत्सगका अधिक समय तक लाभ नही उठा सका।" कहते कहते वालिकी आखे फिर गीली हो गई। कौन कह सकता है कि महापापी-के पास भी कोमल हृदय नही होता? विश्ववन्धु राघव अव तटस्थ कैसे रह सकते थे? वे वालिकी फिरसे गीली हुई आखोको अपने प्रेमल हाथसे पोछने लगे। कृतज्ञतावश वालि छोटे वालककी तरह फूट-फूटकर रोने लगा। उसने अपना मस्तक रामकी पवित्र गोदमे रख दिया। और वालिके मस्तक पर रामके दाहिने हाथकी हथेली घूमने लगी। अपना वध करनेवाले रामकी गोदमे वालि जैसे महायोद्धाने भी भक्तिसे अपना मस्तक रख दिया इस दृश्यकी प्रशसा की जाय, या पापपुज वालिके अन्यायोके कारण उसके शरीरको पराजित करके भी अतिम समयमे उस पर अपने हृदयकी प्रीति वरसानेवाले राम-चन्द्रजीके हृदयकी विशालताकी प्रशसा की जाय?

क्रूर हृदयवाला वालि अव वदल गया था। मृत्युके समय भी हृदय-परिवर्तन हो जाय, यह क्या सौभाग्यकी वात नही? 'जिसका अत

अच्छा हो उतरा सब कुछ अच्छा है यह लोकानि वालि परिवारा देखरर आगामि समममें आ जायगी। अब उसके एक एक अश्रबिन्दुमें कितन ही पापन्यता धुग्न और पुन्य न्यग ध। मवग प्रथम उगन सुग्रीवको बुलाया। सुग्रीव इस समय कम दूर यह गया था ? वालि बाल दुमर पहले ही सुग्रीव बोल उठे बड भाई आपकी हत्याका निमित्त म बना हू। मुझ क्षमा करना, भाई! सुग्रीवके इन शब्दोको वालि सह न सका। उसन कहा कुलभूषण सुग्रीव तुम मरी मृत्युके दुर्भाग्यपूर्ण निमित्त नहा परन्तु सौभाग्यपूर्ण निमित्त बन हो। मर जय पापपूर्जी मम सुरधर रामस भेंट करानवाल मर भाई म बार बार तुम्हारा आभार मानता हू। तुम मरे अपराधी नहा हो इसलिए मर क्षमा करनेका प्रश्न ही नहीं उठना। केवल अपराधी ही नहीं परन्तु महाअपराधी तो म हू। परन्तु तुमस क्षमा मागनका अधिकारी भी म कहा रह गया हू ? मुझ क्षमा वाक्य पूरा करनस पहले ही वालिका हृदय भर आया, गला रुध गया। उसन अपन कापते हाथोंसे अपनी आखें ढक ली। सुग्रीवके नत्र भी आर्द्र हो गये। रुमा सुग्रीवके पास ही खडी थी। रामने उस सकेत किया। वह वालिके पास आई कि तुरन्त रामने आखो परस वालिका हाथ हटा लिया। रुमाको देखते ही वालिने फिर लज्जासे अपनी आखें बन्द करनका प्रयत्न किया। सुग्रीव और रुमा दोनोंने समीप आकर वालिके हृदयसे क्षमा प्रदान की। रघुपति बोले वालि अब तुम्हारा यह महापाप हल्का हो गया। वालिसे रहा न गया। उसन बडी कठिनाईसे टूटी फूटी वाणीमें नीचेके वचन कहे जग वल्लभ राम! रुमा और सुग्रीवन तो मुझ क्षमा कर दिया। आपन भी क्षमा कर दिया। आगे कभी ससार भी मुझ क्षमा कर देगा। प र तु यह मरा पापी हृदय नरकके दु ख भोगनके बाद भी मुझ कम शाति दगा ? इस विकार इस शैतानके जालमें फसकर अपन छोटे भाईकी पवित्र स्त्री और मेरी पुत्री जसी रुमा पर मन कुदृष्टि डाली! आह अधम वालि! कहते कहते वालिने अपने हाथकी मुट्ठी बाधकर अपन कपाल पर घूसा मारनेकी तयारी की परन्तु राम उसकी मुट्ठी छुडाकर उस सात्वना देने लगे

"भाई वालि, पश्चात्तापकी भी कोई सीमा होती है और होनी ही चाहिये। शोक जैसे मनुष्यको ऊचा उठाता है, वैसे ही उसे नीचे भी गिरा देता है। अव अतिम समय है। कुछ ही समयमे अनेक कार्य पूरे कर लेने हें। जिस शैताननें तुम्हे नीचे गिराया था, वह तुम्हारे भीतरसे पलायन कर चुका है। अव तुममे दैवी सम्पतिका उद्भव हुआ है। उसका लाभ तुम उठा लो।"

"मेरे हृदय-स्वामी राम, अव मुझे ताराका स्मरण हो रहा है।" तुरन्त रोती हुई तारा स्वामीके सामने आ खडी हुई।

"सती, महासती! तुम्हारी एक भी सुन्दर सीख पर मैंने कभी ध्यान नही दिया। तुम्हारे जैसी पवित्र नारीके पतिके नाते मैं अयोग्य और वेवफा सिद्ध हुआ।" वालि पुन भावाभिभूत हो गया। परन्तु इस भावावेशमे पाशविकता नही, दिव्यता भरी थी। ताराने अपने दोनो हाथ पतिके चरणो पर रखे। तारा चरण-रज ले इसके पहले ही वालिने ताराके चरणोकी धूल अपने सिर पर रखकर कहा "केवल कहनेके लिए ही नही किन्तु सच्चे हृदयसे मै कहता हू कि आजसे तुम मेरी माता वनती हो। पतिके नाते मैंने जिस अधिकारका उपभोग किया, उसका मैं अधि-कारी नही था। आज मैं तुमसे पुत्रके अधिकारकी याचना करता हू।" रामने वालिका हाथ अपने हाथमे लेकर उसके भीतर उठी इस भव्य भावनाका मूक समर्थन किया। वालिने अव अंगदको अपने पास वुलाकर कहा "वेटा, आजसे मै तुम्हे सुग्रीवके कार्यके लिए राम-चरणोमे अर्पण करता हू। वैसे सच्चा अधिकार तो तुम पर ताराका ही है।" फिर सुग्रीवसे उसने कहा "भाई सुग्रीव, रूमाको तुम पुन हृदयसे स्वीकार कर लेना।" अन्तमे ताराकी ओर मुडकर कहा, "तारा, महासती! तुम्हारे इस तथाकथित पतिके पापोमे तुमने स्वेच्छासे भाग लिया था, अव उन सारे पापोको धोकर शुद्ध हो जाना। हे माता, पुण्य-पावनी अवा! तुममे यह शक्ति अवश्य है। सुग्रीवके साथ मैंने जो अन्याय किया है, उसका ऋण तुम्हारे सिवा दूसरा कौन चुका सकता है? वस . अव मै जाता हू।" यहा वालिने तीन वार 'राम राम राम' का उच्चार किया और प्राण छोड दिये।

सबने वालिके महाप्रयाणको मूक प्रणाम किया। कष्टकर परिस्थितिमें रहकर पतिका दुराचरण, उसके दुराचरणसे होनेवाली प्रतिक्रिया और अन्तमें भाग्य होनेवाला परिणाम — यह सारी कथा अंकित हो गई। अपमान अथवा पतिके पापोंका उपहास करनेका प्रसंग करनेवाली स्त्रीमें सारा न मिलने पर अपने आंसुओं द्वारा पतिका प्रसंग करनेवाली अन्ततक पतिकी अर्धांगिनी बनी रहकर जगतके आगे सहन करनेवाली तथा अन्तमें अपने पतिके प्राण पतिकी भूलका निवारण करने वाली तारा जैसी महाभागी पत्नी जिस राष्ट्रमें हो उस राष्ट्रमें जन्म लेनेके लिए कौनसा देव लालायित नहीं होगा?

कदाचित् इसीलिए कहा गया है 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गा-दपि गरीयसी।'

३८

सुग्रीवका राज्यारोहण

मनुष्य जीवित होता है तब तक समाज उसके दोषोंको अधिक देखता है परन्तु जब उसकी मृत्यु हो जाती है तब समाज उसके गुणोंको ही अधिक याद करता है। वालिकी मृत्यु तो मुधर गई इसलिए उसकी गुणकथा खूब लम्बी चली। रामचन्द्रजीने तारा अंगद सुग्रीव और अन्य सब लोगोंको आश्वासन देते हुए कहा

'हमारे भौतिक जीवन इस संसार-सागरमें पानीके बुलबुलोंकी तरह है। एक बुलबुला दूसरेसे मिलता है और अलग हो जाता है। मिलना और अलग होना यह एक निश्चित क्रम है। इसमें सीखने जैसी वस्तु तो निर्लेपता है। यह सिद्धि प्राप्त करनेके लिए ही मानव शरीरका निर्माण हुआ है। वालिके शरीरके लिए हम न रोयें उसकी भूलोंके लिए भी दुःखी न हों उसका अन्त सफल हुआ इसीका स्मरण करें और इसी ध्यानमें ओतप्रोत हो जाय। किसी दिन बड़से बड़ा पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है और किसी दिन महासंत भी फिसलकर पापके गहरे गर्तमें गिर जाता है। अभिमान और स्वच्छन्दता ऊपर

चढे हुए आदमीको नीचे गिरा देते है, और नम्रता तथा हृदयकी शुद्धता गिरे हुए आदमीको ऊपर चढा देती हैं। हम अपनी इन आखोसे जिन निमित्तोको देखते है, उन्ही पर सारे दोप थोप देते है; अथवा असावधानीसे आचरण करके दैव पर सारा आधार रखते हैं। प्रारब्ध क्या है, शक्ति क्या है, ऐसा क्यो हुआ या होता है—आदि अनेक प्रश्नोके उत्तर हमे वालिके जीवनसे मिल सकते है। ये सब वाते जान-सीखकर हम अपने जीवनको सार्थक वनानेका प्रयत्न करे।"

रामचन्द्र जैसे समर्थ पुरुपके इस उपदेश और आचरणसे सवको अमूल्य सीख प्राप्त हुई। वालिकी मृत्युको कई दिन वीत गये। एक शुभ दिन शुभ मुहूर्तमे किष्किन्धाके राजाके नाते धूमधामसे सुग्रीवका राज-तिलक हुआ। अगदको युवराज-पद देनेकी घोपणा की गई। और तारा, रूमा तथा अन्य सब कुटुम्वीजन सुख और शातिसे रहने लगे।

वह युग 'राजा कालस्य कारणम्' का युग था। वालि बिगडा इसलिए उसका राज्यतत्र भी विगड गया। राज्य-कर्मचारी प्रजाकी सेवा करनेके वदले प्रजाका खून पीते थे। प्रजाके कुछ वर्गोको थोडी सुविधाये देकर, कुछ अश तक उनके अभिमानका पोषण करके और उनका थोडा स्वार्थ पूरा करके ये कर्मचारी मनमानी कर सकते थे। प्रजाके इस त्रासके वारेमे सुननेकी न तो वालिको कोई परवाह थी और न भोग-विलासमे रचे-पचे रहनेके कारण क्षणभरकी उसे फुरसत रहती थी। प्रजा भी खुशामदसे जीना सीख गई थी। वहन-वेटियोकी इज्जत-आवरू जानेका अब उसे दु ख नही होता था। इससे शैतानके चेलोको मनचाहा करनेकी आजादी मिल गई थी। राज्यमे वडेसे वडे प्रतिष्ठित व्यक्तिके लिए भी स्वाभिमानसे जीना असभव हो गया था। ऐसे अन्यायी राज्यतत्रके कारण कुछ लोग घरवार छोडकर दूसरे राज्यमे चले गये और जो लोग वही रहे वे इन सारे अन्यायोको सहनेके आदी वन गये। कुछ लोग तो स्वय अन्याय करनेमे सम्मिलित हो गये। किसी भी तरह जीवित रहनेका ही एकमात्र ध्येय उनके सामने रह गया था। सुग्रीवको इस सडी और विगडी हुई रचनाके वीच काम करना था। प्रजाकी मनोदशा ऐसी नही थी कि तुरन्त जडमूलसे किये

जानेवाले किसी परिवर्तनको वह सहन कर सके। परन्तु रामचन्द्रके आगमने तथा हनुमानकी कार्य-कुशलताने इस स्थितिको सुधारनेमें बड़ा भाग लिया। राज्य छोड़कर गये हुए प्रजाजनोंको स्वाभिमानके साथ धीरे धीरे वापिस लाकर पुनः अपनी जन्मभूमिमें बसाया गया। राज्यके अधिकारियोंमें से कुछ भ्रष्ट लोगोंको राज्यसे निकाल दिया गया, कुछको सुविधा देकर दूसरे धंधोंमें लगा लिया गया, कुछको अपना व्यवहार सुधारनेका मौका दिया गया और थोड़े जो उत्तम कोटिके अधिकारी थे उन्हें अधिक प्रतिष्ठा प्रदान की गई। प्रजाकी मनोदशा बदलनेमें रामने लक्ष्मणको और विशेषतः ताराका बहुत सुन्दर उपयोग किया। इससे नीतिको, सदाचारको फिरसे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और प्रजाकी सोई हुई चेतना अंगड़ाई लेकर फिरसे जाग उठी। किष्किन्धाकी प्रजाकी और राज्यतंत्रकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। यह सारी समस्या जब तक पूरी तरह हल नहीं हो गई तब तक राम किष्किन्धा नगरीकी सीमा पर वृक्षोंके नीचे तापस-वेशमें रहे। वहां बैठे बैठे वे किष्किन्धाकी सामान्य जनताको तथा राज्यतंत्रके कामकाजको मार्गदर्शन करते रहे। अंतमें उनका यह पुण्यकार्य समाप्त हुआ।

ग्रीष्मऋतु भी पूरी होने आई थी। वर्षाका समय पर्वत पर बिताने की रामकी इच्छा थी। शांति-वध, वालिके परिवारके साथ बंधा व्यक्तिगत सम्बन्ध, सुग्रीवका राज्यारोहण, राज्यतंत्रकी अनेक उलझनें, सामान्य जनताके रामराज्यकी बजाय स्वार्थ अनेक खट्टे मीठे अनुभव — इन सबके असरको दूर करनेके लिए रामको एकान्तवास और चिन्तनकी आवश्यकता मालूम होती थी। लक्ष्मणके लिए इसकी विशेष आवश्यकता थी। वनशोभा सौन्दर्य देखकर, शबरी जैसे भक्तोंका अमृत पीकर तथा वनजनोंके शुद्ध और निर्व्याज स्नेहसे सिंचित होकर लक्ष्मणको जो लाभ हुआ था उसमें नगरके कामोंकी वजहसे कुछ कमी आ गई थी। अतः उसमें कुछ नवीन साधन जोड़ना जरूरी था। इसके सिवा सुग्रीवकी शक्तिको भी रामका यहींसे दूर रहना आवश्यक था। राम यदि बहुत पास रहते तो या तो सुधार निश्चिन्त और पंगु हो जाते अथवा रामके मार्गदर्शनसे उत्पन्न हुई सफलता भर कारण है ऐसा मानकर वे झूठा

अभिमान करने लगते। ये दोनो वाते हानिकारक थी। वेशक, एकदम रामके दूर चले जानेमे भी खतरा था, परन्तु वह खतरा मोल लेना जरूरी था। अत. सबने अनिच्छा होते हुए भी रामके प्रस्तावको प्रेमसे स्वीकार कर लिया, और किष्किन्धाके अत्यन्त समीप स्थित प्रवर्षण नामक एक छोटेसे पहाडकी गुफामे राम और लक्ष्मण जाकर रहने लगे।

३९

लक्ष्मणकी अकुलाहट

रघुपतिके लिए आजकी रात्रि वहुत लम्बी हो गई थी। उनका मन विचार-मन्थनमे डूब गया। विछौने पर वार-वार करवटे वदलते हुए वे वहुत समय तक पड़े रहे। अन्तमे लक्ष्मण अपनी हलचलसे जाग न जाय इसकी पूरी सावधानी रखकर वे उठ वैठे और विछौना छोड-कर गुफासे वाहर निकले।

अपने स्वामीके साथ एकरूप वने हुए सेवकको भी ऐसी स्थितिमे नीद कैसे आ सकती थी? वडे भाईको पता चल जाय कि लक्ष्मण भी जागता है तो वे पूछेंगे, इस भयसे अभी तक आखे मीचकर निश्चल पडे हुए लक्ष्मण भी अव विछौनेसे उठे और धीमी गतिसे वाहर निकल आये।

मध्यरात्रि व्यतीत हो चुकी थी। चन्द्रमा अपना स्निग्ध शीतल प्रकाश फैलाने लगा था। राम एक शिला पर वैठकर चन्द्रमाकी ओर अनिमेप दृष्टिसे देखते हुए विचार-प्रवाहमे वह रहे थे. "रजनी और रजनीनाथका यह सुयोग कितना आह्लादक है! इस गिरिवरकी विविध औषधिया कैसी प्रफुल्ल दिखाई देती है! आकाशमे विहार करनेवाले पक्षीगण कैसे सुस्थिर वनकर विश्राम ले रहे है!" फिर सुग्रीवकी नगरीकी ओर नेत्र घुमाकर वोल उठे· "अहो, मानव-मात्र निद्राकी गोदमे विश्राम ले रहे है। परन्तु मेरी सीता? सीते, तुम कहा होगी? क्या कर रही होगी?" मनके इन विचारोके कारण उनके होठ थोडे फड़क उठे। जरा पीछे मुडकर देखा तो लक्ष्मण दिखाई पडे। राघव

विषकी तरह कडवी लगती है और इस कारणसे अर्थकी अपेक्षा उसका अनर्थ अधिक होता है। तुम्हारी बात सच है कि सुग्रीवको सीताकी शोधका अपना वचन पालना चाहिये। परन्तु जिस बातसे हमारा अपना सम्बन्ध हो, उसके बारेमे कर्तव्यका भान करानेमे भी खतरा है। मेरे उद्बोधनसे कही सुग्रीवको मुझमे भी स्वार्थ-प्रियताकी गध आने लगे, तो उससे अनेक लोगोके हितको हानि पहुचेगी। एक प्रकारसे देखा जाय तो मेरे जैसे व्यक्तिमे अपनी बातके सम्बन्धमे स्वार्थ भले प्रवेश न करे, परन्तु अति आग्रहका भय तो रहता ही है। और लक्ष्मण, हमारे हनुमानके विषयमे यदि तुम्हारे मनमे कोई शका हो तो उसे निकाल देना। उसकी भक्तिके लिए मेरे मनमे बडा आदर और उसकी कर्तव्य-परायणताके विषयमे पूरा पूरा विश्वास है। हमारे मनकी शका दूर किये बिना और सुग्रीव आदिके मनका समाधान किये बिना यहासे चले जाना भी उचित नही होगा।"

लक्ष्मण चातकके समान रामरूपी चन्द्रकी वचन-किरणोका आकठ पान करते रहे। कुछ देर बाद दोनो गुफाके भीतर चले गये।

४०

अंधाधुंधी और पश्चात्ताप

आज अरुणोदयके पूर्व ही हनुमानजी सुग्रीवके पास पहुच गये। सुग्रीवने उनके प्रणामका उत्तर देकर पूछा "क्यो हनुमान, आज तुम्हारे मुख पर उल्लास क्यो नही दिखाई देता? और मित्र, आज तुम थोडे जल्दी भी आ गये हो। ठीक है न?"

हनुमानने सिर हिलाकर हा कहा और तुरन्त चल पडे। परन्तु सुग्रीवने अपने प्राणप्रिय साथीका हाथ पकडकर उन्हे रोका और अपने पास बैठाकर कहा "हनुमान, तुम्हे मत्री कहू, अभिन्न मित्र कहूं, हृदय खोलनेके लिए समीपवर्ती द्वार कहू या अपना हितेच्छु कहू — जो भी कहू, परन्तु तुम्ही मेरे सब कुछ हो। इस अपार ससार-सागरमे मित्रके सिवा दूसरा कौन ऐसी सहायता कर सकता है?"

सुग्रीवकी जिज्ञासाको समझकर हनुमानने भी निःसंकोच भावसे कहना आरभ किया

सुग्रीवराज, आरभमें मैं राजनीतिकी बातें कहूंगा। क्योंकि अब आप किष्किन्धा नगरीके वैधानिक राजा बन गये हैं। अब राज्यकी तथा प्रजाजनोंके प्राणों और सम्पत्तिकी रक्षाकी जिम्मेदारी मुख्यतः आपके सिर है। मनुष्य जगतमें केवल जीनेके लिए ही नहीं जीता, वह सिद्धान्तके खातिर जीता है। मनुष्य किसी वस्तुका संग्रह सेवाके लिए करता है, दूसरोंके शोषणके लिए नहीं। यह दलनका काम भी मुख्यतः आपका ही है। सार यह कि राजाको लक्ष्यमें रखनेवाली राजनीतिसे धर्मनीतिको अलग नहीं किया जा सकता। सौभाग्यसे हमें रामचन्द्रजी जैसे धर्म धुरंधर मार्गदर्शक मिल गये हैं जिनमें आज तापसत्व, ब्राह्मत्व और क्षात्रत्वका त्रिवेणी-संगम हो गया है। आप रामके समान चाहे न बन सकें परन्तु रामके आदर्शोंको जीवनमें उतारनेका प्रामाणिक प्रयत्न तो आपको करते ही रहना चाहिए।

सुस्थिर बननेके लिए किसी भी राज्यतंत्र — या सरकार — को आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकारके बलोंसे लाहा लेना पड़ता है। इसके लिए हमारे इस विशाल देशमें चार साधन बताये गये हैं। ये क्रमसे साम दाम दण्ड और भेदके नामसे पहचाने जाते हैं। सामका अर्थ है आत्मीयताके साथ प्रजाका सम्पर्क साधना। दामका अर्थ है एक ओर राज्यके कर्मचारियोंसे समुचित वर्तन करना और दूसरी ओर प्रजाके सामान्य लोगोंको भारी न मालूम हो ऐसे थोड़े और हल्के कराँसे शासन चलाना। दण्डका अर्थ है प्रजाको हानि पहुंचानेवाले मार्ग पर जानेवालों या भूलसे लग हुए लोगोंको पश्चात्ताप हो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना। और भेदका अर्थ है इस तरहका प्रयत्न करनेके बाद भी कुछ ऐसे लोग प्रजामें रह जायं तो उन्हें समाजसे अलग करके रखना और सुधरनेका मौका देना। इतनी बात आंतरिक बलोंके बारेमें हुई।

'बाह्य बलोंके सम्बन्धमें सामका अर्थ है मीठे आन्तर राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करना। दामका अर्थ है अन्य देशोंका शोषण न करना तथा अपने देशका शोषण न होने देना। इन दोनोंके बीच होनेवाले आर्थिक

करार भी कहा जा सकता है। दण्डका अर्थ है जो राष्ट्र हमारे राष्ट्रके बारेमे गलतफहमी रखते हो उनकी गलतफहमी दूर करना। थोडेमे, इस बातका ध्यान रखना कि हमारे राष्ट्रके साथ अन्य राष्ट्र आर्थिक अथवा अन्य किसी प्रकारका अन्याय न करे, साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना कि हमारा राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोके साथ अन्याय न करे। कही ऐसा अन्याय होता दिखाई पड़े, तो अन्यायसे पीडित राष्ट्रकी सहायता करना। और भेदका अर्थ है सिद्धान्त-भेदके कारण अथवा साधनोकी अशुद्धिके कारण जिन राष्ट्रोके साथ हमारे राष्ट्रका मेल न सधे, उन राष्ट्रोके साथ अपना सम्बन्ध घटा देना। इसका अर्थ यह है कि ऐसे राष्ट्रोमे उन्ही प्रजाजनोको चुन चुनकर भेजना चाहिये या जानेकी छूट देनी चाहिये, जो अपने राष्ट्रकी शुद्धिकी रक्षा करके वहा सुन्दर प्रभाव डाल सके।

"इस दृष्टिसे देखा जाय तो कुछ प्रश्नोका हल तो आपके राज्यारोहणके बाद हो गया है, और आप और मैं दोनो यह बात स्वीकार करेगे कि इस हलका मुख्य श्रेय श्रीरामको है। इन प्रश्नोका तात्कालिक हल तो सामान्यत हमे मिल गया। परन्तु भविष्यमे क्या होगा? आप मुझे क्षमा करे, परन्तु मुझे यह कहना चाहिये कि आपके जीवनमे भोगवृत्ति अब प्रधान पद लेती मालूम होती है। भोग-विलासका दास बना हुआ राजा तानाशाही और हिंसाके बिना अपने शासनको टिका नही सकता, और तानाशाही तथा हिंसा अन्तमे राज्यतन्त्र, राजा और प्रजा तीनोको नीचे गिरा देती है। आपके बडे भाईका उदाहरण आपके सामने बिलकुल ताजा है। इस स्थान पर मुझे यह भी कहना चाहिये कि वालिकी धाक ऐसी थी कि उसका राज्य तो इतना लम्बा भी चला, परन्तु आपका राज्य इस तरह जरा भी लम्बा नही चलेगा। यदि आप समय रहते नही चेतेंगे, तो आपकी स्थिति ऐसी नही है कि आप तानाशाहीको या अधी हिंसाको जरा भी पचा सकें।"

हनुमानके एक एक वाक्यको सुग्रीव जिज्ञासु विद्यार्थीकी वृत्तिसे सुन रहे थे। उन्होने हनुमानसे कहा: "प्रिय मित्र, तुम्हारी बातोंमें बडा आनन्द आ रहा है। तुम ऐसी बातें मुझे और सुनाओ, सुनाते ही

रहो। तुम्हारे वचन केवल मेरे अन्तःकरणको ही नही छूते, किन्तु जिस दुःखका मै बुद्धिसे तकसे दूर रखता था उस दुःखको ये वचन फिरसे ताजा और स्पष्ट करते है।

युवराज आप चाहे जैसे हो, फिर भी आप राजा है। प्रजाके प्रिय नरपति है। आप भले मुझे अपना साथी और मित्र मानें और भले ही हम दोनो यहां एकान्तमें हो फिर भी आपस सम्बन्ध रखनेवाली मेरी टीकामें विवेककी मर्यादाका पूरी तरह पालन होना ही चाहिये। यह आपके व्यक्तिगत सम्मानके लिए तो आवश्यक है ही परन्तु जनता जनार्दनके एक सेवकके पदके सम्मानके लिए विशेष आवश्यक है। ऐसा मानते हुए भी थोडा खतरा उठाकर मन जो बात कहना आरम्भ की है उसे मै आगे बढाऊंगा। मेरी आशा है कि मेरे शुभ आशयमे ईश्वर भी मेरा सहायक होगा। और यह मेरा सौभाग्य है कि आपने मेरे इस शुभ आशयको समझकर ही मेरी बात सुननेकी उत्सुकता प्रकट की है।

अब आप अपनी दिनचर्याको देखिये। यह तो आप जानते ही है कि जिस राज्यतत्रमें राजाका स्थान मुख्य होता है उसमें राजाकी प्रत्यक्ष क्रिया पर आधार रखकर ही प्रजाका जीवन चलता है और उसका निर्माण होता है। आप ही कहिये आप ब्राह्म मुहूर्तमें उठते है? प्रभु स्मरणका समय निकाल पाते है? न्यायालयमें नियमित उपस्थित रह सकते है? छोटेसे छोटे प्रजाजनके सम्पर्कमें आ सकते है? अथवा, राज्य-कर्मचारियों पर भी दृष्टि रख सकते है? महाराज भोगवत्ति ऐसी है जो भोगोंके उपभोगसे कभी शान्त नही होती। उसमें से अनेक दोष पैदा होते है। इसका असर आपके पूरे राज्यतत्र पर तो होने लगा ही है परन्तु राज्यकी प्रजा पर भी होने लगा है। मैने कल दो सज्जनोंके वार्तालापमें गुप्त रूपसे इतना सुना था हमने तो यह माना था कि बाल्कि राज्यतत्रमे छूटे तो अब संस्कृति और सदाचारकी दिशामें आगे बढेंगे परन्तु हम तो कुएसे निकलकर खाईमें गिर गये। मिथ्याचार चोरी लूट-पाट, हत्या लगभग बन्द-सी हो गये थे परन्तु ये भी अब पुष्ट होने लगे है। राज्यके कर्मचारी स्वच्छन्द बनते जा रहे

है। न्यायालयोमे प्रभाव और वसीलेका जोर बढने लगा है।' यह टीका सुनकर मै चौक उठा हू। मुझे तो यह भी भय है कि आपने रघुपति रामचन्द्रको जो वचन दिया था, उसे भी आप भूल गये होगे! 'यथा राजा तथा प्रजा' अथवा 'राजा कालस्य कारणम्' यह ऋषि-वचन सत्य ही है। आज सबसे पहले तो मै आपसे यह आग्रह करूगा कि आप रामचन्द्रजीको दिये हुए अपने वचनका पालन करे। इस वचन-पालनके साथ हमारी राजनीतिक स्थिरता और उन्नतिका प्रश्न स्वाभाविक रूपसे जुड जाता है। राज्यतत्रकी दृष्टिसे रावणकी शक्ति किष्किन्धाके लिए क्या भयरूप नही है? समझ लीजिये कि अब रावणको वालिका भय नही रहा है, क्या वह हमारे राज्यतत्रको स्थिर रहने देगा? अभी तक हम अपने किष्किन्धा राज्यके आतरिक सगठन और उसकी नैतिक शक्तिको भी दृढ नही बना सके है। वालिराजके कुछ दोषोको छोड दे, तो उनका प्रभाव ऐसा भयकर था कि बाहरी शत्रु, भीतरके अपराधी और राज्यद्रोही उनसे थरथर कापते थे। आज अनुचित भय तो दूर हो गया है और उसका मिटना जरूरी ही था। परन्तु आज सच्चा भय भी चला गया है। राजाके व्यक्तिगत उज्ज्वल चरित्र तथा निष्पक्ष न्यायतत्रके बिना यह भय पैदा नही हो सकता। इसे पैदा करनेके लिए राज्याभिषेकके बाद कुछ समय तक आपने कर्तव्यकी जो लगन और आत्म-शोधनकी जो भावना बताई, वह फिरसे जाग्रत होनी चाहिये। आज राज्यतत्रमे शिथिलता तो आ ही गई है। ऐसा होते हुए भी यदि उसकी दिशा सन्मार्गकी ओर होती, तो मुझे इतना दुःख नही होता; परन्तु हमारा वर्तमान राज्यतत्र गलत दिशामे जा रहा है। आपको एक बात जानकर दुःख होगा। परन्तु मुझे यह भी कह देना चाहिये कि हमारे भावी राजा अगदको भी सगतिका दोष लग जानेका भय खडा हो गया है। और हमारे राज्यके स्तभ जैसे मुख्य मत्रीगण भी रिश्वत खाने लगे है। मै नम्रभावसे यह मानता हू कि इस सारी सडाध-को माफ करनेके लिए आपको गहरा आत्म-शोधन करना चाहिये। आज अवसर मिल जानेसे यह बात मैने आपसे कह दी है। मेरे लिए यह बडी चिन्ताका विषय हो गया है। मुझे इन सारी बातोका मूक साक्षी

वनना पन्ता है इससे बडा दु ख होता है। दिन रात इसी चिन्तामें म जलता रहता हू। म श्रीरामचन्द्रके पास भी क्या मुह लेकर जाऊ? हमारा और हमारी प्रजाका यह अहोभाग्य है कि यद्यपि अपन अनुपम अतिथि परम मित्र और जगवल्लभ महापुरुष रामचन्द्रका हम सबन भुला दिया है परन्तु रामचन्द्रन हम लोगोको नहा भुलाया है जो सवथा उनक असहयोगके पात्र ह।

इतना कहत कहते हनुमानजीके नत्रोम आसू बह निकले। सुग्रीव का नीचे झुका हुआ मुख ही उनकी अश्रुधाराको छिपा रहा था बस उनका अश्रु प्रवाह तो कभीका आरभ हो गया था। सुग्रीवकी कवल आखें ही नहा रो रही थी उनका राम रोम रो रहा था।

आसू पोछकर धीमी आवाजस सुग्रीव कहन लग

मित्र हनुमान मित्रभावस तुमने मुझे जो सीख और उलाहना दिया उसका म स्वागत करता हू। म अपनी मनोदशाका विश्लेषण करता हू तो भोगोमें अतिशय लिप्त होनका कारण भी मुझ ऐसी मनोदशामें से पदा हुआ मालूम होता है। भयके बिना राज्यतन्त्र चल ही नहा सकता इस मान्यताके कारण निष्पक्ष न्यायके बदल सजा पर मन ज्यादा भार देना शुरू किया। इसके फलस्वरूप मन प्रजाका प्रेम खो दिया। इसका वर मनमें रखकर मन प्रजाको दबान और प्रजा प्रिय व्यक्तियोको वशमें करनके लिए पुलिसको जरूरतस ज्यादा सत्ता सौप दी। पुलिसकी वृत्ति हमशा लोगोको सजा दनकी ही रहती है इसलिए अधिक सत्ता मिल जानसे वह गलत रास्ते चली गइ और प्रजा चारो ओरस दबाई और कुचली जान लगी। शराबखोरी व्यभिचार चोरी लूट रिश्वतखोरी आदि प्रजा घातक दोष फलने फूलन लगे। प्रजामें अपराधोको बढ़त देखकर म अधिक कठोर बन गया और इन सबके भारसे मुक्ति पानक लिए म सुरा और सुन्दरी आदि दोषोकी ओर मुडा। कुछ समयम यह भाव भी मेरे मनम दूर हो चला था कि प्रजाकी बहन-बेटिया मेरी भी बहन-बेटिया ह। एसी स्थितिमें म राज्य कमचारियो तथा प्रजाको पीडा पहुचानवालोस भला क्या कह सकता था? मरे सामने कवल खुशामदी लोगोका दल बचा और वह मेरी

आडमे अन्याय और अत्याचार करने लगा। ऐसी स्थितिमे मैं अपने परम हितैषी मित्र और मेरे शिरच्छत्र रामचन्द्रसे क्या मुह लेकर मिलने जाऊ? इसके सिवा, मेरे मनमे यह वात भी पडी थी कि राम जैसे तपस्वी राजनीतिको क्या समझे? पवित्र तारामती और रूमाने मुझे वहुत समझाया, परन्तु उनकी तो मैं परवाह ही क्यो करने लगा? अव मुझे अपनी गलतीकी जड मिल गई है। इसके लिए प्रिय मित्र, तुम्हारा मैं जितना आभार मानू उतना थोड़ा है। मुझे इस वातका विश्वास हो गया है कि त्याग और सयम ही राज्यतत्र चलानेवालोके सच्चे साथी और परम मित्र है। सज्जनोकी पूजा और प्रजाका स्नेह-पूर्ण सम्पर्क ये ही राज्यतत्रकी सुव्यवस्थाके प्राण है। राज्यकी सुरक्षि-तता इसी वातमे है कि शासनका सारा कामकाज प्रजाके हाथमें सौंप-कर तटस्थ भावसे देखा जाय और आवश्यकता हो वहा उसकी सहायता की जाय। अन्य राष्ट्रोके साथ मीठे सम्वन्ध रखने ही चाहिये। आतरिक युद्ध कभी भी शोभाकी वात नही हो सकता। वाहरके देशोके साथ भी अनिवार्य परिस्थितियोमे ही युद्ध हो सकता है। ये सव वाते अव मुझे प्रकाशकी तरह स्पष्ट दिखाई देती है, और मुझे यह विश्वास हो गया है कि रघुवश-मणि रामचन्द्रजीने राजनीतिको धर्ममय वनानेका जो मार्ग वताया है वही सच्चा मार्ग है। कुछ खुशामदियो और जवरदस्ती वडे वन वैठे लोगोको अप्रसन्न करके भी हमे इसी मार्ग पर चलना चाहिये।"

इतना कहनेके वाद सुग्रीवने रामके पास जाकर क्षमा मागनेकी आतुरता दिखाई। हनुमानको भी ऐसा लगा कि सुग्रीवराजकी खोयी हुई सात्त्विकता सचमुच जाग्रत हो गयी है, इसलिए उन्होने तुरन्त अपनी सम्मति दे दी। अव दोनो अपने वस्त्रोंको व्यवस्थित करके अन्य किसीको साथ लिये विना रामके पास जानेके लिए प्रवर्षण गिरिकी दिशामें एकाएक चल पडे।

४१

सीताकी शोधमें

काका सुग्रीव और वीर हनुमान दोनों एकाकी प्रवर्षण गिरिकी ओर जा रहे हैं यह समाचार मिलते ही अंगदने राज्यके उपमंत्रियोंको बुलाया और उन्हें कुछ सूचनायें देकर पवनकी गतिसे वह उसी दिशामें दौड़ा। देखते ही देखते अंगदने सुग्रीव और हनुमानको जा पकड़ा। रोके बिना ही उसने सुग्रीवको आदरपूर्वक प्रणाम किया। सुग्रीवने ममतासे उसकी ओर देखा। अंगदने इतनेमें ही संतोष कर लिया। सुग्रीवके मनमें गहरा मंथन चल रहा था। उनका मन लज्जाके भारसे दब गया था। हनुमानजी प्रसंगके अनुरूप गंभीर हो गये थे। तीनों चुपचाप आगे बढ़ने जा रहे थे। उनके पांवोंकी मंथर गति भी अवसरकी गंभीरताको प्रकट कर रही थी। कुछ ही देरमें तीनों रामचन्द्रकी पर्णकुटीके पास जा पहुंचे।

"पधारो प्रिय मित्र पधारो" धीर-गंभीर स्वरमें बोलते हुए राम पर्णकुटीमें बाहर आये और उन्होंने सुग्रीवका स्वागत किया। परंतु सुग्रीवके मुंहसे आनन्द प्रकट करनेवाले उद्गार कैसे निकलते? उन्होंने आंखें नीची करके रामको मूक अभिवादन किया।

कुछ ही क्षणोंमें राम, सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान और अंगद पांचों एक सुन्दर वृक्षके नीचे आकर बैठे। सुग्रीवको गुमसुम बैठा देख लक्ष्मणको दयाके बदले उन पर क्रोध आया। मन ही मन वे बोल उठे "धूर्त कहींका कैसा ढोंग कर रहा है!" अब हनुमानसे रहा न गया। रामचन्द्रकी ओर देखकर वे बोल उठे "नाथ आपके मित्रसे गम्भीर भूल हो गई है। आपके समान श्रेष्ठ पुरुषोंकी यह चेतावनी यथार्थ है कि मनके आनन्दकी तरंगोंसे सदा सावधान रहो।" यह सुनकर सुग्रीवकी आंखें सजल हो गई। उन्होंने रामके चरणोंमें केवल मस्तक ही नहीं अपना हृदय भी झुका दिया। रामकी आंखोंमें भी

प्रेमाश्रु उमड आये। कुछ क्षणके लिए सारा वातावरण करुण बन गया। इतनेमें सुग्रीवका महादल वहा आ पहुचा। एक साथ पाव उठानेकी उसकी अद्भुत छटाका किन शब्दोमे वर्णन किया जाय? चारो दिशाओसे पक्तिवद्ध होकर बढता आ रहा वह सेनादल अपने दडनायकोकी आज्ञाका पालन करके आमने-सामने दो दिशाओमे व्यवस्थित खड़ा हो गया। राम सहित पाचोकी मण्डली सेनाके बीचोबीच आ गई। 'हाथ . . उठाओ' का आदेश मिलते ही हजारो सैनिकोके हाथ एक साथ ऊपर उठ गये और सबने एक ही पद्धतिसे प्रथम रामको और उसके पश्चात् सुग्रीवको प्रणाम किया। प्रणाम स्वीकार करते समय राम खडे हो गये। वे और उनके साथी एक एक सैनिकको ध्यानसे देखते हुए इस छोरसे उस छोर तक गये और उसी तरह तेजीसे वापिस भी आ गये। ऐसी अनुशासनवाली — तालीम पाई हुई — महासेनाको देखकर लक्ष्मण तो स्तब्ध हो गये। अब सुग्रीव पर उन्हे जो क्रोध आया था वह भी प्रेममें बदल गया।

सब लोग विशाल मण्डपकी तरह फैले हुए वटवृक्षके नीचे आकर बैठ गये। सब कोई रामचन्द्रजीके दर्शनामृतका पान करके अपनी हृदयकी पिपासा शान्त करने लगे।

वह कितना अनुपम और विरल दृश्य था! रामचन्द्र और लक्ष्मण दोनोके मुख पर प्रसन्नताकी आभा देखकर सुग्रीवके चेहरे पर भी प्रसन्न मुसकान फैल गई। अब पाचो अपना अपना मत व्यक्त करने लगे।

अन्तमें सब लोग इस निश्चय पर पहुचे कि चुने हुए मुख्य ५०० सैनिकोको सबसे पहले दक्षिण दिशामें ही जाना चाहिये। किसीको पहले जाकर लकामें सीताजीका पता लगा आना चाहिये। सीताजीकी शोधका कार्य एकमतसे महाचतुर और महावीर हनुमानको सौंपा गया। उन्हे दूसरी क्या तैयारी करनी थी? उन्होने बिना किसी आनाकानीके यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उनके लिए इसमे सम्मानका नही परन्तु जिम्मेदारीका प्रश्न था। हनुमानके चुनावके औचित्यके विषयमे किसीको शका भी नही थी। अगद, जाम्बवत, हनुमान तथा अन्य मुख्य नेताओके छोटे-बडे दल बन गये। सभी नायकोने रामचन्द्रके पास

जाकर उनके आशीर्वाद माग। रामने सबको हार्दिक आशीर्वाद दिया। सबने झुक झुककर उनके चरणामें प्रणाम किया। प्रणाम करनेवालोंमें सबसे अंतिम हनुमान थे। उनका एक हाथ खीचकर रामने अपने दो हाथोकी हथेलियोके बीच दबाया और स्नेहसे उसे चूम लिया। इसके बाद उनके दूसरे हाथमें सीताजीकी प्रतीतिके लिए एक मुद्रिका भी दी जो कई वस्तुआसे बनी थी और सीताजीको प्रिय था। मुद्रिकाको सिरसे छुआकर हनुमानने आदरपूर्वक उसे ग्रहण किया। अब रघुपति राम सीताजीके लिए सदेश देते हुए बोले 'देखो भाई जानकीसे कहना कि रामके हृदयमें सत्यके साथ ही आपकी सेवामय स्नेहमूर्ति भलीभाति अकित है। दिनकी प्रवृत्तिमें और रातकी निवृत्तिमें जलमें स्थलमें आकाशमें वनमें बस्तीमें जहा भी राम बठते है, उठते है जाते है देखते है सुनते है खाते है पीते है स्पर्श करते है सूघते है वहा सर्वत्र और सबमें वे एकमात्र आपकी ही प्रतिमाका अनुभव करते है। जितने दिन बीते उतने दिन अब नही बीतेंगे उससे पहले ही हम सब फिरसे मिलेंगे। सीतासे मेरी ओरसे यह भी कहना लक्ष्मण तुम्हारी अनुपस्थितिमें एक पुरुषसे जो कुछ भी हो सकता है वह सब पुत्रभावसे कर रहे है। हमारे तन मनकी तुम जरा भी चिन्ता न करना। अभी जिस तरह रहती हो उसी तरह विरहकी वेदना सहते हुए भी निश्चिन्त रहना।

ऐसी गहन आत्मीयताका सदेश सुनकर हनुमानका रोमाच हो आया और उनकी आखें छलछला आई। मुद्रिकाको उन्होंने गाठमें बाध लिया और सदेशको होठो पर तथा हृदयमें अकित कर लिया।

प्रभो एक बात मै पूछू? और रामचद्रकी सम्मति लेकर जाते जाते हनुमानने पूछा यदि सीताजी यह कहे कि मुझे जल्दी रामसे मिला दो तो मै क्या करू?

इसलिए मैने अपने सन्देशमें सीतासे धीरज रखनेको कहा है। मै यह जानता हू कि तुममें ऐसी महाशक्ति है जिसके बल पर तुम अपनी माताको कधे पर बठाकर मेरे पास ला सकते हो और राम सीताको भेंट करा सकते हो। लेकिन भाई रावणने जो चोरी की उस

चोरीके लाछनको दुनियासे मिटानेके लिए हमें इतनी साहूकारीकी रक्षा करनी होगी।" रामके अतिम वाक्यको रटते रटते हनुमान विदा हुए।

सब सैनिक शस्त्रोसे सज्ज होकर उनका रास्ता ही देख रहे थे। उनके आते ही सैनिकोकी कूच तेज गतिसे आरंभ हो गई। लक्ष्मण तो इस वीरतापूर्ण दृश्यको देखते ही रहे। परन्तु सामान्य सेनाकी कूच और इस सेनाकी कूचमे अन्तर था। यह सैन्यकूच युद्धकी नही परन्तु मुख्यत अयुद्धका मार्ग खोज कर सिद्धान्तकी रक्षाका उपाय खोजनेकी कूच थी।

×

किष्किन्धासे निकले हुए सैनिक यद्यपि दक्षिण दिशामे लकाको अपना लक्ष्य बनाकर आगे बढ रहे थे, परन्तु उनकी चलनेकी रीति अनोखी थी। उन्होने पचास पचासके दल बना लिये थे। किष्किन्धासे लकाकी ओर प्रयाण करते हुए दक्षिण दिशाके एक भी गुप्त स्थानकी भलीभाति जाच किये बिना वे आगे नही बढते थे। उनके मनमें एक निश्चय तो था ही कि रावण सीतामाताको लकाकी ओर ही ले गया होगा। फिर भी वे मार्गके प्रत्येक गुप्त स्थानको इस विचारसे देखते चले जा रहे थे कि रावण चतुर राजा है। उसके गुप्तचर रामचन्द्रकी छोटीसे छोटी बात भी उसके पास पहुचाते होगे। इसलिए वह एक ही स्थान पर सीताजीको नही रहने देगा। एक कारण यह भी था कि भविष्यमे कभी रावणसे युद्ध करना पडे, तो हमारी महासेनाको सुख-दुःखमें ठहरनेका स्थान मिल जाय इस दृष्टिसे भी जितने गुप्त स्थान खोजे और देखे जा सके उतने खोजकर देख लिये जाय। प्रत्येक दलके नायक उन स्थानोके नकशे भी बना लेते थे। इस प्रवासमें सैनिकोको कितने ही नये नये अनुभव होते थे। इन अनुभवोकी डायरी भी वे रखते थे। सामान्य रूपसे प्रत्येक दलका अलग अलग पडाव होनेसे खाने-पीनेकी सुविधा सबको आसानीसे मिल जाती थी। यह सारी यात्रा अधिकतर पहाडी प्रदेशकी थी। मार्गमें अनेक छोटी-बडी नदिया आती थी। फलोके भारसे झुके हुए विविध प्रकारके वृक्ष जगह जगह मिलते थे। कही कही वनराजियोमें जगली मानवोकी छोटी

छोटी बस्तियां भी मिल जाती थीं। परन्तु अधिकतर ये सैनिक दल ऐसे स्थानों पर पड़ाव डालते थे जहां उन्हें मानवोंके सम्पर्कमें न आना पड़े। भोजनमें वे कोमल पर्णांकुरोंसे भी अपना काम चला लेते थे। फल उन्हें बहुत प्रिय थे। किसी समय नये फलोंवाला कोई वृक्ष दिखाई पड़ता तो उन फलोंकी पूरी जांच करनेके बाद ही वे उन्हें खाते थे। कौनसा फल शरीरको नुकसान करता है, यह जाननेकी कला भी उन्हें हस्तगत थी। मार्गमें अनेक प्रकारके पशु-पक्षी, सुकुमार कुरंग और कलरव नाद करते झरने उनका स्वागत करते थे। प्रकृतिकी अपरम्पार लीलाओं तथा अद्भुत रस-सौन्दर्यका अनुभव करते करते सब आगे बढ़ते थे। ये सारे दल क्रमशः कम कम आठ दिनोंमें एक बार जरूर एक स्थान पर मिलते थे। विविध प्रकारके अनुभवोंका आदान प्रदान करनेके बाद जो सार रूपमें लिखने जैसी बातें होतीं उनका संग्रह सार भी लिख लिया जाता था। सारे दलोंके मिलनेका जो दिन होता था उस दिन पूरे ५०० सैनिक एक स्थान पर एकत्र हो जाते थे। वह दिन महर्षियोंके समागम और समारोहके जैसा आनन्दका दिवस बन जाता था।

ऐसे ही एक समारोहकी उषा एक दिन प्रकट हुई। उस दिन सबने यह निर्णय किया कि अब आगे १०-१२ मीलका योजन मरु-स्थल जैसा प्रदेश आता है इसलिए हम सब साथ साथ ही आगे बढ़ेंगे। थोड़े फल और जल साथ लेकर सबेरे सबेरे सैनिकोंने कूच आरम्भ की। इनकी गति बहुत तेज थी। लगभग दो घंटेमें उन्होंने आधेसे ज्यादा रास्ता तय कर लिया। एक तो गरमीके दिन। फिर सूखा वृक्ष विहीन प्रदेश। उस पर तेज गति। सब खूब प्यासे हो गये। साथके फल खाकर सारा पानी सैनिक पी गये। सबने मान लिया था कि तीन चार कोस आगे जाने पर फल जल और उत्तम स्थान मिलेगा। चारेक मील चलने पर ऊपर जल तो मिला। प्यास भी सबको जिस तरह लगी थी। लेकिन पानी नमक जैसा खारा था। कुछ सैनिकोंने आगे बढ़ कर पानी पीना शुरू किया लेकिन इतना खारा? थू थू करके निकाल देना पड़ा।

अब उन्होने देखा कि इस रास्ते आगे जानेसे तो समुद्र आयेगा। इसलिए उन्होने दिशा बदलकर दूसरा रास्ता लिया। दो तीन मील मुश्किलसे गये होगे कि एक पर्वत दिखाई दिया। दुर्भाग्यसे वहा न तो कही एक झाड था, न कही पानी था। शरीर सबके थककर चूर हो गये थे। गले प्यासके मारे सूख रहे थे। ऐसी दशामे पर्वत पर चढनेका उत्साह किसमे होता? और कैसे होता? परन्तु अब पीछे लौटनेमे भी कोई लाभ नही था। आगे बढे सिवा कोई चारा ही नही था। अन्तमे चार सौ निन्यानवे सैनिकोको पीछे छोडकर वीर हनुमान रामका नाम लेकर आगे बढे। सैनिकोने अब जीनेकी आशा छोड़ दी थी। मृत्युका तो उन्हे कोई भय था ही नही, क्योकि मृत्युसे जूझनेका सकल्प करके ही वे घरसे निकले थे। परन्तु रामका कार्य अधूरा रह जानेका उन्हे गहरा दु ख था। ऐसे सकटके समय हनुमानने एक आश्चर्य देखा। एक गुफाके द्वारमे से लम्बी कतारमे कितने ही पक्षी आ-जा रहे थे। उन्होने नीचे झुककर देखा। एक सुन्दर सरोवर दिखाई पडा। तुरन्त पीछे घूमकर हनुमानने सुरक्षितताकी सीटी बजाई। सारे सैनिक दलोमे नये प्राणोका सचार हुआ। आशाने सबके पावोमे नई शक्ति, नया उत्साह भर दिया। तेज गतिसे सब सैनिक हनुमानके पास पहुचे। एक एक करके सर्व गुफामे प्रविष्ट हुए। उन्होने देखा कि वहा केवल सरोवर ही नही था, परन्तु स्वादिष्ट मीठे फलोसे लदे हुए वृक्ष भी थे। एक सुन्दर मन्दिर भी दिखाई दिया। उसमें दयाकी देवीके समान एक लावण्यमयी महिला बैठी थी। उसका मुखारविन्द देखते ही सब उसके चरणोमें झुक गये। दयाकी उस देवीने सबको आशीर्वाद दिया और हाथके इशारेसे फल और जल ग्रहण करनेकी आज्ञा की।

४२

हेमा

भूख शान्त होनेके बाद कुछ देर इधर उधर वनकी शोभा निहार कर सब सैनिक मंदिरमें आये और उन देवीको भक्तिभावसे प्रणाम करके शिष्टतासे बैठ गये। हनुमानसे शांत न रहा गया। वे बोले माताजी आपका मुखारविन्द देखकर हममें से हरएकके मनमें स्वाभाविक रूपमें ही भक्तिभाव उत्पन्न होता है। आपको कोई आपत्ति न हो तो आप हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होनेवाला अपना प्रेरक जीवन वृत्तान्त हमें सुनायें और इस वनका भी थोड़ा परिचय करायें।

बेटा तुम कोई चतुर मनुष्य लगते हो मुसकुराते हुए उन देवीने कहा। फिर प्रथम वक्ता और उसके साथियोंका परिचय करनेके बाद वे कहने लगी मैं मेरुसावर्णिकी पुत्री हूं। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। बरसों मैंने लोक-नायक रामचन्द्रजीका नाम सुन रखा है और उनके दर्शनोंकी मेरी भूख दिनोदिन बढ़ती रही है। आप सब रामकार्य के लिए और रामके पाससे ही आ रहे हैं यह जानकर मुझे अपार आनन्द हो रहा है। वह दिन और वह क्षण मेरे लिए अत्यन्त पवित्र होगा जब मैं भी रामके दर्शन कर सकूंगी। मैं कुमारिका हूं और किसी पवित्र स्थानमें अपना शेष जीवन बिताना चाहती हूं। परन्तु इसमें रामचन्द्रकी सलाहसे मुझे बड़ा लाभ होगा क्योंकि उन्हें गृहस्थ वानप्रस्थ और त्यागी तीनों अवस्थाओंका व्यक्तिगत अनुभव है। यह वन मय दानवका माना जाता है। इसकी एक विशेष प्रेरक कथा है। यहां अंगुली दिखाकर उन्होंने एक अत्यन्त लावण्यवती स्त्रीकी ओर सबका ध्यान खींचा और आगे कहा

देखो पुत्रो यह मेरी सखी है। इसका नाम हेमा है। आज यह वन मुख्यतः इसके अधिकारमें है। इतना कहकर एकाएक मानो आघात लगा हो इस तरह वे रुक गईं। कुछ क्षण तक सारा वाता

वरण शान्त रहा। उनके मुसकाते चेहरे पर क्रोधकी रेखाये उभर आई। जरा गहरा श्वास लेकर वे बोली. "क्या पुरुषोने यही मान रखा है कि स्त्रियोका सौन्दर्य, उनकी सुकुमारता, पुरुषोकी विकारी और रोगी मनोवृत्तिका पोषण करनेके लिए ही है? वे किसी भी सुन्दर स्त्रीको देखते ही इतने पामर क्यो बन जाते होगे? बेशक, राम जैसे एकपत्नी-व्रतधारी विरल महापुरुष इसके अपवाद माने जायगे। परन्तु अधिकतर पुरुषोके बारेमे यही अत्यन्त दुःखद अनुभव आया है। वे सामान्य शिष्टता और मानवताको तो क्या, परन्तु पशुताको भी लज्जित करनेवाली हीन मनोवृत्तिके देखे जाते है। मय दानव उन्हीमे से एक था। उसके पास विपुल शक्ति और समृद्धि थी। नारिया भी बहुत थी। किन्तु नारियोसे एकपति-व्रतका पालन करानेकी इच्छा रखनेवाले ढोगी नर-भ्रमरोको तृप्ति कैसे हो? इस मधुर वनमे अतिथिके रूपमे आई हुई इस मेरी सखी हेमाके प्रति 'अतिथिदेवो भव' की श्रद्धामयी दृष्टि रखनेके बदले उस नर-पिशाचने इस पर पापकी दृष्टि डाली। हेमाने उसे समझानेकी बहुत कोशिश की। लेकिन विषके कीडेको समझ कैसी? वह समझा नही और हेमा बड़ी कठिनाईमे फस गई। उसके पजेसे भागकर या अन्तमे प्राणोकी बलि देकर भी उसने अपने शीलकी रक्षा करनेका दृढ सकल्प कर लिया। प्रकृतिने स्त्रीके शरीरको कैसा परावलम्बी बनाया है? पापी पुरुषके शिकजेमे फसा कि क्षणभरमें उसे भ्रष्ट किया जा सकता है। परन्तु ऐसी परावलम्बी दशामे भी प्रकृतिने शीलकी रक्षाके लिए स्त्रीमे प्राणोकी बाजी लगाकर पापीका सामना करनेकी और आत्म-बलिदानकी स्वाभाविक हिम्मत भर दी है। हेमा भागी तो जरूर, लेकिन मय दानवकी स्थूल शक्तिके सामने उसकी क्या चलती? हेमाने जीभको कुचलकर मर जानेका प्रयत्न किया, लेकिन वह मर न सकी। उसने गलेमे साडीका फन्दा लगाकर फासी खानेका यत्न किया, लेकिन मय दानवने उसे पकड़ लिया और ऐसा न करने दिया। अब हेमाके पास भगवानके नामके सिवा कोई आधार न रहा।"

हमा भी नीची आखें करके यह सब सुन रही थी। यह अन्तिम वाक्य सुन कर उसकी आखोंमें आसूकी धार बह निकली। श्रोताओंमें से भी कुछ लोगोंकी आखें छलछला आईं। कुछ लोगोंके दात कटकटाने लगे। बहुतोंके होठ फड़क उठे। मानो ऐसे महालम्पट मानव पर सब अभिशापकी वर्षा कर रहे हों। पुरुषोंके नाते वे लज्जित भी हुए।

उन माताजी आगे कहा

सद्भाग्यसे उसी समय किसी महामानवने मय दानवको ललकारा 'ए दुष्ट छोड़ दे इस देवीको और इसके चरणोंमें प्रणाम कर।' यह सुनकर हेमामें नये प्राणोंका सचार हुआ। उसने एक ही झटकेमें उस पामर दैत्यको एक ओर फेंक दिया। अब वह दानव ललकारने वाले मानवकी ओर झपटा। वासनाके गुलाम उस दानवको उस समय भी सम्मति नहीं सूझी। अतमें वह इसी वनमें उस महामानव द्वारा मारा गया। और मेरी यह सखी इस वनमें रहकर उस पापीकी आत्माके उद्धारके लिए प्रार्थना मदिर बनाकर प्रार्थना कर रही है। मेरे शरीरके कारण मय दानवकी मोहवृत्ति बढ़ी और उसका ऐसा परिणाम आया यह मानकर हेमा उस दानवके प्रति अपना कर्तव्य पालन कर रही है। मैं तो सत्सग और सहायताके लिए यहा इसके साथ रहती हू। मैं जो करके नहीं बता सकी वह हेमाने करके दिखा दिया। इसलिए हेमा ही पूजनीय है। अच्छा बंधुओ अब मेरा सकल्प पूरा हुआ। इतना कहकर स्वयप्रभा रामके पास जानेकी तैयारी करनेके लिए उठी। अन्तमें हेमा और स्वयप्रभा दोनोंने एक दूसरेका आलिंगन किया।

इस दृश्यने और इससे कथनने हरएक श्रोताके मनमें दोनों महानारियोंके लिए बड़ा आदरभाव पैदा कर दिया। हेमाकी मूर्ति तो सबके मनमें अकित सी हो गई।

चाहे जैसा हो फिर भी स्त्री इस डालते विश्वका आधार-स्तंभ है। चाहे जितना अबला हो फिर भी नारी जगतकी जगदम्बा है। पुरुष जातिके घोर पापोंके सामने अडिग रहकर पुण्यकी वर्षा करनेवाली इन नरनारियोंको लाख लाख प्रणाम है!

४३

एक विचित्र महाप्राणी

सव सैनिक सज्ज हो गये। इन दोनो महानारियोको भक्तिभावसे वन्दन करके उन्होने विदा ली। कुछ प्रसग ऐसे होते हैं जव थोड़े क्षणोका महायोग जीवनमे स्थायी स्थान ले लेता है। ऐसा विरल स्मरण हमारी जीवन-नौकाका दीपस्तभ भी वन जाता है। शायद गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसे अनुभवोके वाद ही कहा होगा

आधीमे आधी घडी, आधीमे पुनि आध।
तुलमी सगत साधुकी, कटे कोटि अपराध॥

अव आगेका मार्ग ऐसा था कि कोई सैनिक अलग पड जाता, तो फिरसे उसके मिलनेकी कोई सभावना न रहती। इसलिए सव सैनिक एक साथ कतारमे चलने लगे। सवके पैर इस तरह एक साथ उठते और गिरते थे कि देखनेवालोका मन अनुशासनवद्धता तथा व्यवस्थाकी ओर आर्कापित हुए विना रह नही सकता था। खाडीके किनारे चलते चलते सारे सैनिक लगभग विशाल सागर-तटके समीप पहुच गये। अव कहा और कैसे जाना चाहिये, इसका विचार वे कर रहे थे कि एक भयकर आवाज सुनाई पडी। उस आवाजसे एक वार तो सवकी छाती दहल उठी। देखते ही देखते एक महाकाय प्राणी उनके पास आ पहुचा। यह पशु है, पक्षी है, मानव है या दानव है—इस आश्चर्यमे सव निमग्न थे कि उस प्राणीने एकाएक सैनिको पर आक्रमण कर दिया और पाच-दसको नीचे गिरा दिया। क्षणभरमे ही यह सव हो गया। हनुमान सावधान हो इसके पहले ही उस प्राणीने उन पर आक्रमण किया और अपनी महाकायाके नीचे दवाकर उन्हे रगडना शुरू कर दिया। अनायास ही हनुमानके मुहसे 'हे राम, श्रीराम' निकल पडा। दूसरे सैनिकोकी हिम्मत टूट गई। वे इधर-उधर भागदौड करने लगे। परन्तु अगदने स्वस्थ होकर सैनिकोकी वीरताको

जगानके लिए उन्हें ललकारा जटायु जैसे गिद्धने जिन सीताजीके लिए अपने प्राण अर्पण कर दिये उन सीताजीकी खोजमें जाते जाते यदि हम मर जायें तो इससे उत्तम मृत्यु और कौनसी हो सकती है? हम जबरदस्ती लड़ना नहीं चाहते। लेकिन इस महाप्राणीको यदि युद्ध ही करना हो तो हमें इसे आहूता न निवर्तेत वचन सत्य सिद्ध कर दिखाना चाहिये। एक स्थान पर धर्मभ्रष्ट हुआ मनुष्य दूसरे स्थान पर धर्मका पालन उत्तम रीतिसे नहीं कर सकता।

ऐसा कहकर अंगदके सावधान कहते ही सारे सैनिकोंमें नव चेतनका संचार हो गया।

परन्तु कुदरतकी गति न्यारी है! जटायु और राम-सीताका नाम सुनते ही उस महाकाय प्राणीका आवेश शान्त हो गया। हिंसाके स्थान पर उसमें वात्सल्य जाग उठा। उसकी आंखोंमें क्रोधकी अग्नि शान्त होकर प्रियजनकी स्मृतिके आंसू छलछला आये। उसने हनुमानके चरणोंमें माथा नवाकर अपने दुर्व्यवहारके लिए क्षमा मांगी और सब सैनिकोंको प्रणाम किया।

युद्धका वातावरण शान्त मैत्रीमें बदल गया। प्रेम और बन्धुताकी सरिता बह निकली। सब सैनिक हनुमानजी और उस महाप्राणीके आसपास गोल घेरेमें बैठ गये। उस महाप्राणीने जटायु मेरा परम मित्र था कहकर उसकी सारी पूर्वकथा सुना दी। रामकृपाका बार बार स्मरण करके वह गदगद हो जाता था। हेमा और स्वयंप्रभाकी भेंटके बाद इस प्रसंगने एक नई ही छाप सबके मन पर डाली।

सबको आश्चर्य हुआ कहां इतनी दूर बैठे हुए रामके प्रति ऐसी भक्ति इस प्रकारके प्राणियोंमें किस तत्त्वके कारण स्फुरित होती होगी!

विश्वप्रेमीके प्रेमके लिए देश काल गति लिंग या वेशका कोई बंधन कोई सीमायें बाधक नहीं होतीं। वह सारे जगतको व्याप्त करके उस पार चला जाता है।

४४

अहिंसाके सूक्ष्म स्वरूपमे

"महासती जानकीजी अशोक वनमे है। रावण त्रिकूट पर्वतके शिखर पर लका नगरीमे रहता है। लका नगरीमे ही अशोक वाटिका है।" इतना कहकर वह महाकाय प्राणी चला गया।

जाम्बवत, विकट, अगद, हनुमान आदि सव सेनानायक सामने फैले समुद्रको देखकर विचार करने लगे। कुछ क्षण पश्चात् जाम्बवत वोला: "बडेसे वडे शक्तिशाली पर भी बुढापेका असर हुए बिना नही रहता। एक समय मेरी ये भुजाये चाहे जैसा पराक्रम करनेके लिए तैयार रहती थी। किन्तु आज वह भुजवल बिलकुल क्षीण हो गया है।" विकट आदि साथी जाम्ववतके स्वरमे स्वर मिलाकर वोले· "बुढापा मृत्युका अग्रदूत है। वह मृत्युकी आगाही करता है। परन्तु मूर्ख मन कहा समझता है? शरीर भले जीर्ण हो जाय, परन्तु मनकी तृष्णा कभी जीर्ण नही होती!" सबने हनुमानको ललकारा "उठो महावीर, महाकाय वनो और समुद्रको पार करो। तुम जानकीजीसे मिलकर वापिस लौटोगे, तव तक हमारा निवास इस सागर-तट पर ही रहेगा।"

एक ओर छावनिया तैयार होने लगी। दूसरी ओर हनुमानजी रामचिह्न — मुद्रिका — लेकर सागरके उस पार त्रिकूट गिरि पर स्थित लकाकी दिशामे जानेको सज्ज हो गये। अहा, कैसा था वह महाशरीर! अणिमा और गरिमा जैसी सिद्धिया आजीवन ब्रह्मचारी हनुमानके चरणोमे खेलती थी। परन्तु उस परम-भक्तकी कैसी धीरता और कैसी नम्रता थी! उन्होने जाम्ववतको वार वार प्रणाम करके जानेकी आज्ञा मागी। जाम्ववतने अपने वरद हस्त ऊचे करके आशीर्वाद दिये "विघ्नोको पार करके और सीताजीकी शोध करके शीघ्र लौट आना।" यह वाक्य सुनकर हनुमान पर्वतके समान उडे। देखते ही देखते वे

समन्दरा पार कर गये और त्रिकूट पर्वत पर चढ़ने लगे। थोड़ा दूर जाने पर एक पड़ाव पूरा हुआ और सुन्दर फुलवारी दिखाई दी। उसमें बड़े पूनार पौध हरे-भरे थ फलार माग्ग झुर हुए तरवर भी थ। छोटे-बड़े सरोवर भी थ। किसी भी पथिककी उस वाटिकामें विश्राम करनेकी इच्छा हो सकती थी।

हनुमानजीको थकने और भूख-प्यासने व्याकुल कर दिया था। परन्तु महापुरुषोंके लिए विश्राम कैसा ! भोग कैसा ! आनन्द कैसा ! वे तो सीतामाताके दर्शनके लिए अधीर हो रहे थे। थोड़ा थोड़ा चुराया शरीरको कुछ क्षण विश्राम दिया और पुन सज्ज हो गये। अब उन्होंने अपना सामान्य शरीर धारण कर लिया।

कल्याण मार्गमें विघ्न बाधाएं तो निश्चित ही रहते है। फिर एक विघ्न उपस्थित हुआ। एक राक्षसी जैसी भयंकर स्त्रीने हनुमानको चुनौती दी ए खड़ा रह मुझे तेरा भक्षण करना है। मैं भूखी हो गई हूँ। हनुमानने उत्तर दिया अभी फल ले आता हूँ। तुम फल खाकर अपनी भूख मिटाना। स्त्री बोली 'नहीं मैं तो तुझे ही निगलना चाहती हूँ। उत्तर मिला शरीरकी मुझे चिन्ता नहीं है। परन्तु अभी रामकार्य बहुत बाकी है। इसलिए मेरे शरीरका भिक्षा तुम्हें नहीं दे सकता।

इतनेमें तो झपटकर हनुमानकी कायाको उस स्त्रीने अपनी भुजाओंमें भर लिया। ज्यों ही उसने हनुमानकी कायाको उछालनेका प्रयत्न किया त्यों ही वह काया बढ़ने लगी। कुछ ही क्षणोंमें दस गज लम्बा उस राक्षसीका शरीर हनुमानके महाशरीरके सामने बहुत छोटा मालूम होने लगा। उसका फटा हुआ मुँह फटा ही रह गया। इतनेमें ले आता हूँ तुम्हारे मुखमें' कहते कहते हनुमान फिरसे लघुकाय बन गये और उसके मुँहमें घुसकर नाकसे बाहर निकल आये तथा मूल स्वरूपमें आकर राम राम रटने लगे। उस स्त्रीका सारा अभिमान गल गया। रामनामके श्रवणसे उसके हृदय पर जादूका सा असर हुआ। क्षणभरमें वह भी राम राम रटने लगी और उसकी राक्षसी कायाका रूपांतर हो गया।

कभी कभी जो कार्य राम स्वय नही कर सकते, वह रामनाम कर सकता है । उसी तरह जिन प्राणियोको राम नही तार सकते, उन्हे भी रामके भक्त तार सकते है। क्योकि प्रभुमे तो केवल प्रभुता ही रहती है, परन्तु प्रभुभक्तके हृदयमे प्रभु और उनकी प्रभुता दोनोका वास होता है। सगुण प्रभुमे कुछ अश तक देहका भान भी होता है, परन्तु सगुण भक्त तो काया और माया सब कुछ निर्गुणको ही समर्पित कर देता है। प्रभुनामके सिवा और किसी वस्तुमें उसकी आसक्ति नही होती।

४५

सीताजीकी कसौटी

अशोक वाटिकामें आते ही लकापति रावण गरजा "सीता, सीता! अब भी तू समझ जा। अभी तक मैंने एक स्त्रीके नाते तेरी प्रतिष्ठाकी रक्षा की है। तेरे स्वमानकी रक्षा करनेके लिए मै अपने स्वभावके विरुद्ध जाकर भी अधिकसे अधिक नम्र रहा हू। परन्तु अब मेरा धीरज खूट गया है। आजसे पहले तूने मेरी बात मान ली होती, तो तेरा स्थान मेरे अन्त पुरमे सबसे पहला होता। लेकिन तूने हाथमे आये सुवर्ण अवसरको हठ करके खो दिया है। केवल तेरे ही कारण अपनी प्राण-वल्लभा मदोदरीके कितने ही कठोर वचन मुझे सहन करने पडे! लेकिन अब मुझे लगता है कि तू इस तरह नही मानेगी। तेरे लिए अब मुझे पशुबलका ही आश्रय लेना पडेगा।"

अभी तक पीठ फेरकर बैठी हुई जानकीजीने अब रावणके सामने मुह किया, परन्तु तिनकेकी ओट रखकर। इस अपमानसे तो रावण आगबबूला हो गया। खडे होकर उसने धरती पर एक पाव पछाडा और एक हाथ पर दूसरे हाथकी मुट्ठी मारी। धरती काप उठी। उसकी आवाजने सारे आकाशको गूजा दिया। तुरन्त राक्षसो और राक्षसियोका समूह दौडा आया। सारा वातावरण भयकर बन गया। जनक-पुत्रीने रामचन्द्रका स्मरण किया और स्वस्थ रहनेका प्रयत्न किया।

कुछ क्षण बाद फिरसे दात कटकटाता हुआ रावण बोला 'तूने किसलिए मेरे सामने तिनका रखा है?' अब सीताजी शात न रह सकी। उनका आन्तरिक तेज प्रकट हुआ। रामपत्नीने कहा तुम्हारे प्रलोभनो और कष्टोंका मूल्य मेरी दृष्टिमें तृणवत है। मै यह भी कहूगी कि इस तिनकेसे तुम्हे सच्ची नम्रता सीखनी चाहिये। विषयोंमें आयी हुई नम्रता सच्ची नम्रता नही होती वह नारी-सुलभ कोमल भावनाओको छलनेवाला कपट होता है।" इतना कहते कहते सीताजीका पुण्य प्रकोप भडक उठा मुझे बडा आश्चर्य होता है कि तुम्हारे जैसे लम्पटोके पल्ले मन्दोदरी जैसी महानारिया कैसे बध जाती होगी। तुम्हारे जैसे नराधम केवल विषयके कीडे होते है। तुम सारी नारियोको केवल उनके शरीरसे नापते हो और उस शरीरके मास, रक्त और रूप पर ही तुम्हारी नारी भक्तिका आधार होता है। चले जाओ यहासे और अपनी आखो हाथो और हृदय पर कालिख पोत लो।

इसके बाद तुरन्त ही क्रोधको शान्त करके सीताजी भावावेगमें आकर बोली रावण तुम वही रावण हो जिसने ब्रह्मचर्य प्रिय महादेवके चरणोमें अपना मस्तक अर्पण कर दिया था? कहा वह मस्तक समर्पण करनेवाला रावण और कहा यह पामर विषय-वासनाका कीडा रावण! अतिम वाक्यने रावणको लज्जित कर दिया। उसे सन्तानिका एकपत्नी-व्रत याद आया। परन्तु यह उन्मत्त स्मरण कब तक टिकता? अभिमान और विषय-वासनाका वह पूरा पूरा शिकार बन चुका था। वह कहने लगा बस सीता यह बकवास बन्द कर। शूर्पणखा जैसी नारीकी अपनी आखोके सामने हुई दुर्गतिको देखनेवाली सीता तू ही है न? भले मेरी वह बहन थी परन्तु तेरी तो वह जातिकी थी!

रावणके इस अपमान-वाचन जानकीको निरुत्तर कर दिया। वे स्वयं विचारके लिए विचारमें नहीं उतरी था। उन्हें तो रावणने इन अनधिकारी वचनोमें न भी मारकी बात निकाल लेनी थी। वे सोचमें पड गई। थोडी लज्जित भी हुई। उन्हें अपनी गलती समझमें आ गई। शूर्पणखाने सीताजीकी उपस्थितिमें रामसे जो स्पर्धा

दिखाई, वह नारी-जातिके लिए महान कलककी बात थी। राम और लक्ष्मण जैसे महामानवोके सामने ऐसा दुराचरण और भी बुरा कहा जायगा। फिर भी सीताजीने भूल की थी। अपनी जातिकी एक सदस्याके बुरे व्यवहारके लिए प्रायश्चित्त करनेके बदले उसके साथ लक्ष्मणके व्यवहारसे उन्होने आश्वासन अनुभव किया। इतना ही नही, अपने सामने लक्ष्मणने शूर्पणखाको जो शारीरिक दण्ड दिया, उसके लिए गौरवका अनुभव किया। समस्त नारी-जातिकी दृष्टिसे यह गलती सीताजीके समान विश्व-सन्नारीके लिए साधारण नही मानी जायगी। अपनी इस गलतीके साथ सीताजीको स्वर्णमृगके लिए अपना मोह भी याद हो आया। एक ओर यह सोचकर उन्हे सन्तोष होने लगा कि मुझे अपनी गलतीका उचित बदला मिल रहा है, दूसरी ओर अपनी गलतीके स्मरणसे दु ख भी होने लगा। उन्होने अपनी आखे नीचे झुका ली। रावणको जानकीके इस व्यवहारमे आशाके चिह्न दिखाई दिये। जगतकी घटनाओको सब लोग अपने अपने मापदण्डसे ही मापते है! रावणने तत्काल तो सीताजी-के पाससे चले जानेका निर्णय किया। जाते जाते वह बोलता गया "अभी भी मै तुझे अधिक सोचनेका समय देता हू। अब मेरी शरणमे आये बिना तेरे लिए दूसरा कोई चारा नही है।"

इतना कहकर वह राक्षसो और राक्षसियोके सामने देखकर बोला "हमारी लाज लेनेवाले पुरुषो और लिवानेवाली इस नारीसे हम पूरा पूरा बदला लेगे। रामकी हत्याका खतरा उठाकर भी हमे सीताको यह दिखा देना है कि उसका अपना हित अब किस बातमे है। राक्षसियो, तुम्हे इस मानव-नारीको अब दिखा देना चाहिये कि तुम्हारी नगरीकी एक नारीकी दुर्दशा करनेवाली इस सीताकी कैसी दुर्दशा होती है!" सारे राक्षस और राक्षसिया हर्षसे उन्मत्त हो गये। उन सबने तालियोकी गडगडाहटके बीच रावणके शब्दोका स्वागत किया। रावण जैसे सर्वसत्ताधारी भोली-भाली प्रजाको भुलावेमें डाल-कर इसी तरह उसे अपने हाथका खिलौना बना लेते है।

रामभक्त हनुमान सीताजीकी इस कडी कसौटीके समय लका-गढमे प्रवेश करके धीमी गतिसे कदम उठा रहे थे। उन बेचारोको

क्या पता कि सोनेकी इस लंका नगरीमें विश्ववंद्य सीताजीको कितनी कितनी कसौटियोंमें से पार होना पड़ा है और आज भी पार होना पड़ रहा है!

४६
विभीषण

हनुमानजी लंका नगरीमें तो पहुंच गये। परन्तु उस त्वरसे व परेशानीमें पड़ गये। नगरीकी बनी बड़ी सड़कें राज भवनकी ओर जा रही थी। उसके मकान और मन्दिर सीधी पंक्तिमें सप्रमाण और कलात्मक ढंगसे बने हुए थे। उनके शिखरों पर लगे सुवर्ण कलश सूर्यकी किरणोंके पुंजसे जगमगा रहे थे। नगरीकी गली गलीमें मनुष्य नागो और गंधर्वोंकी कन्यायें अपने सौन्दर्यसे ऋषि-मुनियोंको भी मोहित करती थी। अखाड़ोंमें पहलवान कसरतके दाव आजमाते हुए एक-दूसरेको मल्लयुद्धकी चुनौती दे रहे थे।

ये सारे दृश्य देखते देखते हनुमानजी धीमी गतिसे आगे बढ़ रहे थे। इतनेमें एक पवित्र मन्दिर जैसे सुखकर भवन पर उनकी दृष्टि पड़ी। उसके आगनमें तुलसीका क्यारा बना हुआ था। उसके पास ही एक सुन्दर हृष्टपुष्ट गाय अपने स्तनपान करते बछड़ेको ममतासे चाट रही थी। लिपी-पुती दीवालके ऊपर राम शब्द सान्दर उसमें रंग पूरा गया था। हनुमानजीका मन बोल उठा: अहा इस घरका वातावरण कैसा पवित्र है! मन सीतामाताको मिलनेके लिए आतुर है फिर भी अन्तःकरण मुझे यहां क्यों रोक रहा है? अपने हृदय-वल्लभ रामचंद्रजीके पास जाने पर मुझे जैसी पवित्रताका अनुभव होता है वैसा ही सुखद पवित्रताका अनुभव हृदयको इस स्थानमें हो रहा है। इस सुवर्णपुरीमें (सुवर्ण जिसे अत्यन्त प्रिय है ऐसी नगरीमें) चारों ओर स्वार्थ और अनीतिका बोलबाला दिखाई देता है। ऐसी नगरीमें इतना पवित्र वातावरण निभाये रखनेवाला कौन भक्त यहां रहता होगा?

हनुमानजीने ब्राह्मणका रूप धारण करके विभीषणके आगनमे वेश किया। विभीपणको भी स्वप्नमें ये ही विचार आये थे। वे पंसे वावरे हो गये और स्वप्नमे उन्होने जो कुछ देखा था उसे प्रत्यक्ष नुभव करते मालूम हुए। वे वोल उठे. "प्रभु, मै वहुत समयसे ापकी प्रतीक्षा कर रहा हू। राक्षसोकी इस नगरीमें, जहा खुलेआम त्य और मानवताकी हत्या हो रही है, मै अब अधिक समय नही रह कूगा।" विभीपण ब्राह्मण-वेशधारी हनुमानको राम समझकर ही ये द्गार प्रकट कर रहे थे।

हनुमानने विभीषणके भावोको समझ लिया। उन्होने तुरन्त पष्टता की "मित्र, आप जिस महामानवका पवित्र स्मरण कर रहे , उनका मै केवल एक दूतमात्र हू। मै सीतामाताकी शोधमे यहा ाया हू। आप मुझे वतायेंगे कि उन्हे कहा रखा गया है? परन्तु एक ात आपसे पूछनेका मन होता है। ऐसे राक्षसोके वीच आप यहा कैसे ह लेते है?"

विभीपणने उत्तर दिया

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन मह जीभ विचारी।।

पवन-सुत, मेरे रहनेकी वात सुनो। मै यहा उसी स्थितिमे रहता , जिस स्थितिमे दातोके वीच वेचारी जीभको रहना पडता है।

विभीपण रावणके छोटे भाई थे, परन्तु उनकी विचार-सरणी ावण और रावणके खुशामदी तंत्रसे विलकुल विरुद्ध थी। रावण ीताजीका अपहरण करके उन्हे लकामें ले आया तभीसे उन्हे अपार ेदना हो रही थी। रावणकी तानाशाहीकी सवके मन पर ऐसी भारी ाक जमी हुई थी कि कोई लकावासी रावण या रावणके तत्रके खिलाफ एक शब्द भी वोलनेकी हिम्मत नही कर पाता था। सारे जाजन भीतर ही भीतर कुढकर, मन मसोसकर, वैठे रहते थे। वेभीषणके मनमें अवर्णनीय मन्थन चलता रहता था। अभी तो वे अपने ीवनको शुद्ध वनाने और शुद्ध रखनेकी सावधानी रखकर ही सन्तोष

मानते थे। अधिकसे अधिक अपने मित्रोंके सामने रावणके अन्यायकी चर्चा करके उन्हें अपनी वानर भक्त होनेका विश्वास करा देते थे।

सत्य उनका परम बल था। इसी बलकी नींव पर वे अपने विकासकी सीढ़ियाँ बना रहे थे। अनेक असफलताओंका अनुभव करनेके बाद साधकके जीवनमें ऐसा एक समय अचानक आ जाता है जब कोई चमत्कारपूर्ण घटना हो जाती है। हनुमानका मिलन विभीषणके जीवनकी ऐसी ही एक चमत्कारिक घटना थी।

अन्तमें विभीषणकी भक्तमूर्तिको हृदयमें रखकर उनके बताये मार्ग पर पवन-सुतने प्रयाण किया।

४७

त्रिजटा

विभीषणका भवन छोड़कर हनुमान अशोक वाटिकाकी दिशामें आगे बढ़ रहे थे। अन्तमें वे अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गये। एकदम सीताजीके सामने चले जाना उन्हें उचित नहीं लगा। इसलिए वे चुपचाप पासके वृक्ष पर चढ़कर बैठ गये और सीताजीकी गतिविधि को देखने लगे।

उस वृक्षके ठीक नीचे जानकी बैठी थीं। उनका मुख चिन्तासे म्लान हो गया था। सुन्दर होते हुए भी रूखे बने हुए बालोंकी लटें मुँह पर इधर उधर उड़ रही थीं। आँखोंके आँसू भी मानो हृदयमें जल रही रामवियोगकी आगसे सूख गये थे। वेदनाके भारसे बोझिल बनी हुई आँखें जमीन पर झुक गई थीं।

कुछ ही क्षणोंमें सीताजीका सारा शरीर इस तरह काँप उठा मानो कोई गहरा आघात लगा हो। वे एकदम खड़ी हो गईं। इधर उधर दृष्टि घुमाई। आसपासकी राक्षसियाँ निद्रावश मालूम हुईं। सीताजी अपने हाथोंसे सूखी लकड़ियाँ चुनने लगीं। थोड़ी ही देरमें उन्होंने लकड़ियोंका ढेर लगा दिया। उस ढेरमें आग लगानेका प्रयत्न जानकी कर रही थीं कि एक राक्षसी चौंककर उठ बैठी। उसका नाम

त्रिजटा था। त्रिजटाका मन मानवताकी ओर मुड चुका था। सीताजीके प्रति उसके मनमे बडा आदर पैदा हो गया था, यद्यपि रावणका कोप सहकर सीताजीकी सहायता करने जितना नैतिक साहस उसमे नही था। लेकिन निगरानी रखनेका काम करते हुए भी वह सीताजीकी सुविधाओका यथासभव ध्यान रखकर उनकी सेवा करती थी। त्रिजटाने अपनी जाग्रत विवेक-बुद्धिसे प्रसगकी गभीरताको तुरन्त समझ लिया। वह अपनी जगहसे उठी और विना आवाज किये धीमी चालसे सीताजी-के पास पहुच गई। दोनो हाथोसे प्रेमपूर्वक उसने जानकीका हाथ पकड लिया। पहले तो जानकी चौकी। त्रिजटाका प्रेम सीताजीसे छिपा नही था, परन्तु इस समय उन्हे त्रिजटाका हस्तक्षेप पसन्द नही आया। न चाहने पर भी उनके मुहसे ये वचन निकल पडे . "छोड दे त्रिजटा, तू मुझे छोड दे। इस स्थितिमे जीना मुझे जरा भी पसन्द नही। कुछ ही दिनोमे रावण फिर आयेगा। आकर वह क्या करेगा, यही विचार मुझे अकुला देता है।"

"जानकीजी, मै आपको उपदेश देनेकी जरा भी योग्यता नही रखती। फिर भी कुछ वाते कहनेकी धृष्टता मै करूगी (१) आत्म-हत्यासे वडा पाप दूसरा कोई नही हो सकता। (२) रावणके भयसे त्रस्त होकर आप यह मार्ग ले, तो यह आपके जैसी समर्थ सतीके लिए लज्जाकी वात है। जगतकी नारिया आपके इस कृत्यसे क्या सीख लेगी? (३) रावणके हृदयको हिलाकर उसे जगानेमें आपको जो हाथ बटाना है, वह आपके न रहनेके वाद कौन बटायेगा? (४) आज तक रामचन्द्रके प्रति आपके मनमें जो अटल श्रद्धा थी, वह एकाएक कहा चली गई? (५) ससारका नारी-जगत—आजका और भविष्यका —आपकी इस सेवाके विना क्या करेगा, उसकी क्या दशा होगी?"

इनमे से कुछ वातोने तो रामप्रिया सीता पर जादूका-सा असर किया। कुछ क्षण तक वे अवाक् बनी रही। उनके मनमे अनेक विचार उठे, पनपे और शान्त हो गये।

हनुमान यह दृश्य देखकर स्तब्ध हो उठे थे। परन्तु सीताजीको स्वस्थ देखकर वे भी निश्चिन्त हुए। एक सामान्य दासी राक्षसीके

मनमें भी एसा मानवना एमी कुशाग्र बुद्धि, एसी न्यायप्रियता और एसी आत्मीयता हो सकती है यह देखकर हनुमानके हृदयमें नारी समाजके लिए बहुत बडी आशा बधी।

केवल निमित्त भर मिलना चाहिए फिर तो नारीके भीतर छिपी परा बुद्धि कोमलता और करुणा चाहे जिस स्थानमें चाहे जिस देहमें और चाहे जिस कालमें चमके बिना नही रहती। गीतामें भगवानने इसीलिए गाया होगा "नरमें म हृदयरूपमें वास करता हू जब कि नारी हृदयमें म कीर्ति शोभा वाणी स्मरण शक्ति मधा धय क्षमा आदि सदगुणोंके साथ सोल्हो कलाओमें चमक उठता हू।

४८

मुद्रिका तो रामकी है!

त्रिजटाके वचनो और हृदयके स्नहसे सीताजी गद्गद हो गइ। अपने हृदयकी कमजोरीके लिए उन्हे थोडा पश्चात्ताप भी हो आया। ठीक उसी समय उनकी गोदमें एक मुद्रिका आकर गिरी। व चौक पडी। मुद्रिकाको हाथमें लेते ही रामकी स्मृतियां ताजी हो गइ। सारा शरीर रोमाचित हो उठा। कुछ क्षणके लिए तो जानकीजी अगाध प्रणय-सागरमें डब गइ। फिर उन्होंने आखें खोलकर ऊपर वक्षकी ओर देखा। आसपास भी नजर दौडाई। परन्तु न तो कही प्राणप्रिय रामके दर्शन हुए न किसी रामदूतके। रामभक्त हनुमान बिना हिले डुले स्थिर भावसे अशोक वक्षकी घटादार शाखा पर छिपे बैठ थे और सीतामाताकी सारी चेष्टाओको प्रकट हुए बिना भक्तकी भावनासे देख रहे थे।

सीताजी मन ही मन बोल उठी मेरे राम उसी स्वस्थ प्रसन्न स्थितिमें होंगे जिसमें मुझे उन्हे छोडना पडा था? यह वही मुद्रिका तो रामके कर-कमलमें सदा सुशोभित रहती थी। यहा कैसे आयी यह? किसलिए आयी?

प्रेमियोके हृदयमे ऐसी शकाकी तरगे इतनी तेज गतिसे क्यो उठती होगी? क्या प्रेमियोके विरह-मिलन हर्ष और शोकके द्वन्द्वोसे ही घिरे रहते होगे?

हनुमान सीताजीकी मन स्थितिको ताड गये। वे प्रकट हुए और सीतामाताके चरण-कमलोमे सिर रखकर सिसकने लगे। जनक-पुत्रीने अपने वरद हस्तसे हनुमानके सिरको सहलाया। उनके इस वात्सल्यसे तो हनुमान शान्त होनेके वजाय छोटे वालककी तरह फूट-फूटकर रोने लगे। माताके चरण आमुओंसे भीग गये। उन्होने दोनो हाथोसे हनुमानका सिर ऊचा उठाया। हनुमान स्तब्ध भावसे माताके मुखकी ओर एकटक देखते रहे। अभी भी अश्रु-प्रवाह हनुमानकी आखोसे सतत वह रहा था। सीतामाताके सिवा एक और भी पात्र इस पवित्र दृश्यका साक्षी था — वह थी त्रिजटा। करुण रसके वे कैसे मीठे क्षण थे।

हृदय शान्त और स्वस्थ होनेके वाद सीताजीने पूछा "भाई, तू कौन है? कहासे आया है?"

हनुमान वोले "माताजी, मै आपका धर्मपुत्र हू। मेरे रामने मुझे आपके पास सन्देशवाहकके रूपमे भेजा है।" सीताजीने मातृ-वात्सल्यसे पुत्रको छातीसे लगा लिया और उस पर एकके वाद एक प्रश्नोकी वर्षा कर दी "भाई, तेरा नाम क्या है? तेरी और रामकी भेट कैसे हुई? इस समय वे कहा है? वे मुझे भूल तो नही गये? मेरी याद यदि उन्हे आती हो तव तो अपार शक्ति रखनेवाले रामको स्वय मेरे पास आनेमें क्या देर लग सकती है? परन्तु मेरी याद उन्हे क्यो आने लगी? वे तो अव मेरा वोझ न रहनेसे आनन्दमें मग्न रहते होगे!" इतना कहते कहते सीताजीकी आखें छलछला आई।

"माताजी, मेरा नाम हनुमान है। मै माता अजनीका अगजात पुत्र हू। सुग्रीवके साथ किष्किन्धामे रहता हू। सुग्रीवके दु खोका क्या वर्णन करू? परन्तु भगवान रामकी कृपासे सुग्रीव पर छाये हुए विपत्तिके सारे वादल विखर गये। सुग्रीवके ज्येष्ठ भ्राता वालिका अव-सान हो गया। परन्तु सारा परिवार फिरसे प्रेमके वन्धनमें वंध गया।

एस अनेक लोक-कल्याणके काय करते हुए रामचद्रजी प्रवपण गिरि पर इस समय निवास करते ह। अनेक भाग्यशाली मानव उनकी चरण सेवा करके कृताथ हो रहे ह। म उनमें सबसे निचली श्रणीका एक तुच्छ सेवक हू। म और मेरे अनक योद्धा साथी आपकी शोध करनेके लिए आये हुए ह। भगवान रामकी अपार कृपा और मेरे प्रिय साथियोकी उदारताके कारण मेरे जसे तुच्छ सेवकको इस सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वास्तवमें म इस सेवाके योग्य जरा भी नही हू। रामचद्रकी कृपासे ही समुद्र लाघकर म यहा तक आ सका हू और आपकी सेवामें उपस्थित हो सका हू।"

हनुमानके एक एक शब्दमे नम्रता टपक रही थी। अब उन्होने रामके जानकी प्रमका अपनी मर्यादामें रह कर वणन आरभ किया

माताजी मने गुप्त रहकर आपमें रामपतिके विषयमें जो प्रगाढ ममता देखी उसीका प्रतिबिम्ब भगवान राममें मने देखा है। लेकिन वे पुरुष मुख्य विवक और मर्यादाका पालन करके शायद ही कभी उसे बाहर प्रकट होने देत ह। परन्तु मर जस निकट रहनेवाले बालकस उनकी यह ममता छिपी नही रहती। बिना किसी अतिशयोक्तिके म इतना तो कह सकता हू कि आपका प्रेम यदि महरा है तो रामका प्रेम शान्त जल सरोवर है। उन असाधारण पुरुष पर मेरा अगाध और सहज श्रद्धा होते हुए भी आपको वे दिन रात जो रटन करत रहते थ उसमे म परेशानीमें पड जाता था। परन्तु आपकी स्थिति देखनके बाद मुझ प्रमके विज्ञानका गूढ रहस्य क्षण भरमें समझमें आ गया। मरे जसे अविवाहितका गृहस्थाश्रमके दिव्य प्रमका ज्ञान कम हो सकता है?"

हनुमानन अपनी बातोंसे कुछ देरके लिए रोकी और जानकीके लोचन बन्द हो गये।

प्रमाजनकी एसी मधुर प्रमस्मनिया कुछ ही क्षणोंमें सन्देह जिस अपार और असीम आनन्दका अनभव कराता है वह विश्व मुक्तिको भी तुच्छ बना देता है। प्रम प्रम और प्रम! प्रमके सिवा इस असार ससारमें दूसरा कौनसा सारभूत तत्व है?

४९

लंका-दहन

हनुमानसे मिलकर, उनके मुहसे रामकी वाते सुनकर तथा रामकी मुद्रिका देखकर जानकीके हृदयमे प्रेम-सागर हिलोरे लेने लगा। उसके प्रभावमे एक क्षणके लिए सीताजीके मनमे यह विचार उठा — हनुमान जब इतना शक्तिशाली है, तो वह मुझे अपने कन्धे पर बैठाकर तुरन्त रामके पास क्यो नही ले जा सकता? लेकिन कुछ ही क्षणोमे वे स्वस्थ हो गईं। उन्हे इस सत्यका भान हो गया कि 'प्रेमके मार्गमे विरहकी व्यथा अनिवार्य है, कर्तव्य अथवा सिद्धान्तके भगमे प्रेम नही परन्तु मोह है।' अपने मनकी यह कमजोरी उन्होने हनुमानके सामने प्रकट भी कर दी।

हनुमान बोले: "माताजी, आप तो स्वय योगेश्वरी है। जिस योगीकी आत्मा जाग्रत है, उसे वह आत्मा ही जगा देती है। मेरे मनमे भी ऐसा विचार आया था कि एकाध बार राम स्वयं आकर गुप्त रूपमे आपसे मिल जाय तो कितना अच्छा हो! किन्तु इसमे मुझे चोरीका महादोष दिखाई दिया। आपको भी यही लगता है न, माताजी?"

सीताजीने कहा: "चोरीका महादोष तो इसमें है ही, परन्तु सारे ससारकी दृष्टिसे देखा जाय तो अपनेको समर्थ मानकर जगतको डरानेवाले रावणके अन्यायका सामना न करनेकी निर्बलता भी इसमे है। विश्व-भूषण राघव स्वप्नमे भी ऐसा करनेके लिए तैयार नही होगे।"

इतनी वातें हो जानेके वाद एकाएक जानकीने हनुमानसे पूछा. "बेटा, तुम्हारे भोजनका क्या होगा?"

"मेरे भोजनकी चिन्ता आप न करे, माताजी! मै इन वृक्षोके नीचे गिरे हुए फल खाकर और मीठा जल पीकर तृप्त हो जाऊगा।"

भूख शान्त करनेके बाद हनुमान जानकी तयारी करने लगा इतनेम अचानक राक्षसोंने आकर हनुमानको पकड लिया और कहा तू परदेशी लगता है। चल हमारे राजामाहराजके पास।

हनुमान जिस अवसरकी खोजमें थे वह अनायास मिल गया। इससे उन्हें अपार आनन्द हुआ। उन्होंने कुछ समयके लिए सीताजीसे जानेकी अनुमति ले ली। अपने कोमल स्वभावके कारण सीताजीको इस घटनासे दुःख हुआ। परन्तु हनुमानकी हिम्मतने उनका दुःख कुछ ही क्षणमें दूर कर दिया। तेजस्वी चालसे चलकर हनुमानने ऊंचा मस्तक रखते हुए भी नम्र हृदयसे रावणकी राजसभामें प्रवेश किया।

रावणकी राजसभामें घमंडका झूठी खुशामदका और विकृत विलासिताका बोलबाला था। हनुमानको देखते ही रावणका हृदय पराजित हो गया। परन्तु इस कोमल भावनाको रावणके भीतरका दैत्यभाव कब तक टिकने देता? उसने हुंकार किया अरे परदेशी यानी तू कौन है और किसलिए यहां आया है?

किसी भी तरहके भय या घबराहटके बिना हनुमानने तुरन्त उत्तर दिया मैं रामका अत्यन्त तुच्छ सेवक और सैनिक हूं। रावण राजाके अन्याय और अनीतिकी शिकार बनी हुई एक महासतीकी शोधमें यहां आया हूं।

ये वचन सुनकर रावणका रोम रोम जल उठा। उसने और कोई प्रश्न किये बिना ही हनुमानको जिन्दा जला डालनेकी आज्ञा अपने अनुचरोंको दी। अनुचरोंने हनुमानके वस्त्रोंमें आग लगा दी। लेकिन हनुमान कोई जलनेवाले थे? उनके वस्त्र जरूर जलने लगे परन्तु उनके शरीरको न जाने क्या कारण आंच न आई। उन्होंने अपनी कायाको फूलके समान हल्की बनाकर जहां तहां उड़ना शुरू कर दिया और देखते ही देखते सारी लंका आगकी लपटोंसे घिर गई।

अभिमानी रावणने जलती लंकाकी आग बुझानेके अनेक प्रयत्न किये परन्तु कोई परिणाम न हुआ। एक जगह आग बुझती थी तो दूसरी जगह ज्वालायें धधक उठती थीं। जो मेघ रावणके पास सदा रहता और उसकी सेवा करता था वह मेघ भी इस आगको शान्त

करनेमे असफल रहा। रावणने अपने पासकी अनेक वैज्ञानिक शक्तियोका उपयोग इस भयकर आगको बुझानेमे किया, परन्तु इस समय उसकी एक भी शक्ति काममें नही आई। सब बेकार गईं। अन्तमे रावणने अपने छोटे भाई विभीषणकी सहायता मागी।

विभीषणके पास दूसरी कोई करामात नही थी, दूसरा कोई विज्ञान भी नही था। केवल उनके हर श्वासमे नीतिमत्ता थी, नम्रता थी और लकावासीके नाते लकाके प्रति कर्तव्य-पालन करनेकी बुद्धि थी। विभीषण भगवानका नाम लेकर आग बुझानेका प्रयत्न शुरू करे, उससे पहले ही आग स्वय बुझ गई। प्रकृतिने रावणके अभिमानका पारा नीचे उतार दिया। रावणको अपनी जिन शक्तियो पर इतना अभिमान था, जिन शक्तियोका उसे पूरा भरोसा था, उन शक्तियोकी ऐसी निष्फलता देखकर वह थोडी देरके लिए गहरे विचारमे पड गया। परन्तु अभी वह ऐसी कक्षाको नही पहुचा था कि यह नम्रता अथवा विराग-वृत्ति उसके भीतर स्थायी रूपमे टिक सके, यद्यपि रावण जैसे अभिमानके अवतारोके अभिमानको थोडा भी धक्का लगे, तो वह मानव-सस्कृतिकी दृष्टिसे जगतको होनेवाला एक बडा लाभ ही माना जायगा।

अब हनुमान सीताजीके पास आये और उनके चरणोमें प्रणाम किया। अपने लका-दहनके कृत्यकी बात उन्हे बताई और उसके लिए पश्चात्ताप करने लगे।

"माताजी, लकावासी प्रजाको आगके सकटका भोग बनानेके लिए मुझे गहरा दु ख है। यद्यपि नगरीका एक भी मनुष्य या पशु आगसे मरा नही, फिर भी असख्य छोटे छोटे जीवोका और बहुमूल्य सामग्रीका नाश तो हुआ ही। लेकिन मै क्या करता? प्रकृतिने ही मुझे इसमे निमित्त बनाया।"

जानकीजीने हनुमानके सिर पर हाथ फेरकर कहा. "भाई, आज मै लकामे हू इसलिए मुझे भी इस बातका दु ख है। परन्तु तुम इसका अधिक शोक मत करो। तुम्हारी रामभक्ति और पश्चात्ताप तुम्हे ऐसे नैमित्तिक रूपसे होनेवाले अनासक्त पापके दु खद परिणामोसे

उवार लेगे। तुम्हारी सात्त्विक वृत्तियाकी विजय हो! अब तुम निश्चिन्त होकर जाओ। मेरे हृदय वल्लभ रामसे कहना कि मेरी जरा भी चिन्ता न करे। मेरे भाई लक्ष्मणको मेरे हृदयका स्नेह पहुचाना।

इतना कहकर सीताजीने राम मुद्रिकाके बदलेमें अपनी चूडामणि निकालकर हनुमानको दी और रामके चरणोंमें सीताकी स्मृतिके रूपमें अर्पण करनेको कहा। हनुमानने मस्तक झुकाकर चूडामणि *हाथमें ली। उनकी आखोंमें हर्ष और विरहके आसू उमड आये।* परन्तु मनको मजबूत बनाकर उन्होंने सीताजीसे विदा ली। सीताजी बडी देर तक हनुमानको निहारती रही।

५०

लक्ष्मणका स्वप्न

बडे भैया आज तो मैने अपनी जानकी माताके मानो प्रत्यक्ष दर्शन किये! परन्तु वे बडी उदास और खिन्न थी। राघव, क्या स्वप्न भी सत्य हो सकता है?

अरुणोदयसे पहले रामके पवित्र दर्शन करते करते लक्ष्मणके मुहसे ये शब्द निकल पडे।

राम भाई स्वप्न भी एक अवस्था ही है। स्वप्नमें बाहरकी आखें बद हो जाती है और भीतरकी आखें खुल जाती है। बाहरकी *आखोंसे देखी हुई वस्तुके भी अनेक पहलू होते है। एक मनुष्यको जो* पहलू सत्य मालूम होता हो वह दूसरेको सत्य न भी लगे। स्वप्नको भी यह बात लागू होती है। सच पूछा जाय तो समूचा ससार एक स्वप्न ही है। सीता मै और तुम अलग अलग तीन मालूम होते है लेकिन एक दृष्टिसे देखें तो हम तीनो एक ही है। अयोध्या छोडनेके बाद हम तीनोको एक-दूसरेके विचारोंके सिवा दूसरोंके विचार शायद ही कभी आते है। सीताका प्रतिबिंब हमारे स्वप्नमें पडे यह स्वाभाविक है। मेरी तो पिछले कुछ दिनोंसे यह स्थिति हो गई है कि हनुमान

और सीताके विचारोके सिवा और कोई विचार ही मनमे नही आते। मस्तिष्क पर कुछ बोझ-सा भी बना रहता है। परन्तु हृदयकी गहराईमे मुझे पूरा विश्वास है कि सीताका बाल भी बाका नही होगा, भले वह कही भी हो और कैसी भी परिस्थितिमे हो। अब तुम्ही बताओ कि इस विचारके सामने स्वप्नके सीता-मिलनका हर्ष कितने समय तक टिक सकता है?"

हर्षसे पागल बने हुए बाल-स्वभावी लक्ष्मण रामके वचन सुनकर कुछ क्षणके लिए अवाक् हो गये। उनके निर्दोष मनके सामने अयोध्याके रामको राजगद्दी देनेके मगल प्रसगसे लेकर आज तकके अनेक प्रसग-चित्र एक साथ आकर खडे हो गये।

लक्ष्मणकी मनस्थितिको रामने समझ लिया। वे जानते थे कि लक्ष्मणकी मनोदशावालेको मन्थनामृतका बिन्दु ही दिया जाना चाहिये। तुरन्त उन्होने लक्ष्मणका कन्धा पकडकर उनके माथे पर अपना दाहिना हाथ रखा। दोनो भाई पर्णकुटीके बाहर आये और आकाशके सामने देखने लगे। पूर्व दिशासे सूर्य-नारायणकी सवारी तेजीसे चली आ रही थी। इस दृश्यने लक्ष्मणके मनमे पुन तेजस्विनी आशाका सचार किया। वे अपनी दिनचर्यामे उत्साहपूर्वक जुट गये। इतनेमे सुग्रीव आ पहुचे। भगवान रामको दण्डवत् प्रणाम करनेके बाद उन्होने राजनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बाते की। फिर भविष्य-सम्बन्धी जो थोडे शुभ सूचन उन्हे मिले थे उनकी जानकारी सीतापति रामको कराई।

*

'जय सियाराम! जय सियाराम! जय सियाराम!' की मगल धुनका उच्चारण करते हुए हनुमानजी समुद्रके इस किनारे सैनिकोके बीच आकर खडे हो गये। उन्हे देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये। शिथिल और निराश बने हुए प्रत्येक सैनिकमे हनुमानके आ जानेसे नये प्राणोका सचार हो गया। सबमे नयी शक्ति आ गई। सब लकाकी और सीताजीकी बाते सुननेमे लीन हो गये। सबके बीचमे बैठे हुए हनुमानने आरभसे अत तक सारी बाते कह सुनाईं। उनके एक एक

वाक्यमें मानो विविध रस मूर्तिमन्त हो रहे थे। कुछ देरके लिए श्रोताओंकी आंखोंके कोने क्रोधसे लाल हो जाते। क्षणभरके लिए उन्हें रोमांच हो आता। कुछ क्षणोंके लिए उनकी आंखें आंसुओंसे छलक उठतीं। तो कुछ क्षणोंके लिए सारी मण्डलीमें अट्टहास्यकी लहर दौड़ जाती। इतना मेघसखाका लाभ मिलने पर भी समग्र लंकामें आग लग गई यह जानकर तो सबके आश्चर्यका पार न रहा। इन सब कामोंके पीछे रामरूपी सत्यके प्रभावके सिवा और कुछ श्रोताओंको दिखाई नहीं दिया। अन्तमें जिस कामके लिए सब आये थे उसमें सफलता मिलनेसे सबके हृदय आनन्दसे नाच उठे।

एकाध पहर इस प्रकार बातोंमें ही बीत जानेके बाद उनमेंसे एकने भूखका स्मरण कराया। सब खड़े हो गये और पासके मधुवनमें पहुंच गये। विविध प्रकारके फलोंसे लदे हुए मधुवनकी मनोहर शोभा देखते ही बनती थी। पेटभर कर सबने मीठे फल खाये, खेल-कूदकर मनोरंजन भी किया और वह रात सुखपूर्वक वहीं बिताई।

सबेरे सब प्रस्थान करनेवाले थे। लेकिन हनुमानने एक बात सुझाई। हम इस स्थानके बड़े ऋणी हैं। इस ऋणको उतारनेके लिए इस विशाल तरुवरके आसपास हम एक सुन्दर चबूतरा बना दें जो हमारे श्रमका स्मारक होगा। सबने प्रेमपूर्वक उनके इस प्रस्तावका स्वागत किया। सैकड़ों सैनिकोंका विवेकपूर्ण श्रम इस कार्यमें लग गया। फिर क्या देर लगती? देखते ही देखते चबूतरा खड़ा हो गया। और दो पहरके बाद सबने किष्किन्धाकी दिशामें प्रयाण किया।

अनेक सुन्दर दृश्य देखते देखते तथा तरह तरहके स्मृतिचिह्न बनाते बनाते इस बार सब लोग दूसरे मार्गसे लौट रहे थे। जब कभी सीधा मार्ग आता तब सैनिक नाना प्रकारकी बातोंमें रम जाते थे। केवल एक हनुमान ही विचार मग्न रहते थे। उनके मनमें यह मन्थन चलता रहता था कि लंकामें जाकर मैंने जो कुछ किया वह रामके सेवकको शोभा दे ऐसा ही था या कहीं मैंने भूल की?

५१

मन्दोदरीका मन्थन

"वहन त्रिजटा, इस वार तो तू वडे लम्वे समयके वाद मिली। वता, सीताके क्या समाचार है? उनके सच्चे समाचार तेरे सिवा दूसरे किसीसे जाननेको नही मिल सकते। मनमे वहुत वार यह विचार आता है कि एक वार मै स्वय जाऊ और उनके दर्शन करके पावन वनू। परन्तु पतिकी अनुचित आज्ञाकी अवगणना करनेकी हिम्मत भी मेरी नही होती। यह भय भी वना रहता है कि चारो ओर फैले हुए सर्वसत्ताधारी शासनमे इक्के-दुक्के आदमीकी हिम्मतसे कोई काम नही हो सकता। मुझे अभी तक यह भी डर वना रहता है कि यह राक्षसी नगरी कही स्वय सीताका ही भोग न ले ले।" कहते कहते मन्दोदरीका गला रुध गया। उसकी आखे भर आयी। त्रिजटाने अपने आचलसे रानीके आसू पोछकर उसे हिम्मत वधाई।

"सती, पहली वात तो यह है कि आप अव सीताजीकी जरा भी चिन्ता न करे। उनकी हत्या करनेकी शक्ति तो इस जगतमें मैं पहलेसे ही किसीमे नही मानती थी। अभी तक मुझे सीताजीकी ओरसे आत्महत्याका डर जरूर रहता था। परन्तु अव वह डर भी मिट गया। रामसेवक हनुमानके आ जानेके वाद तो अव मेरे मनमें यह महाभय पैठ गया है कि थोडे ही समयमें लका पर भयकर आपत्ति आनेवाली है। आज भी लकापति समझकर सही मार्ग ग्रहण करे, तो यह महासकट टाला जा सकता है। आप जरा अधिक कठोर वनकर महाराजको अपना कर्तव्य समझनेके लिए मजवूर कीजिये। नही तो अभी तक तो पौलस्त्य कुलकी कीर्तिको ही कलक लगा है, परन्तु अव कीर्तिके साथ मारे कुलका तथा निर्दोष सैनिकोका भी नाश हो जायगा। इस विशाल सेनाके खर्चका भार अतमे तो हमारी प्रजा पर ही पडता है न! इस त्रास और इस सकटको टालनेकी शक्ति केवल

आपमें ही है। अत इस बार म केवल सीताजीके कुशल समाचार ही दन नहा आई हू इस बार तो म आपस यह प्राथना करने भी आई हू कि आप लकावासियोके कुशल क्षमकी रक्षाका निमित्त बनें। विवश होकर ही मने छोटे मुहस इतनी बात आपस कही है। इस अविवेकक लिए म आपस क्षमा मागती हू।'

मन्दोदरी त्रिजटा तून समय पर उचित बात कही है। तरी यह आशाही निरा कल्पना ही नहा है इसमें म ठोस सत्यका दखती हू। इसमें तरा अविवेक नहा परन्तु सुविवेक है। बहुत म भी यह समझ गई हू कि हनुमानके साथ छडछाड करनकी जरा भी जरूरत नहीं थी। थाडीसी छेडछाड करत ही सारी लकामें आग भडक उठी। त्रिजटा मरा मन अपार वेदनाकी आगम जल रहा है लकिन म क्या करू? राज्य-व्यवस्थामें लकापति मरा एक एक वचन तोल-तोल कर स्वीकार करत ह परन्तु राजकाजमें भा मरी बात उसी तरह स्वीकार करग या नहा इसमें मुझ सन्देह है। एक बात म जरूर कहूगी। नील और मत्रियोंका दृष्टिम मन सीताजीक सम्बन्धमें महा राजका बचानका पूरी सावधानी रखा है। और उस महामनाक शीलकी रक्षाक लिए यदि प्राण दनकी भा नौबत आय ता म अपन प्राण अपण करनका तयार हू। म मरकर भा उनक सतीत्वकी रक्षा करूगी।

अवसर दखकर त्रिजटान अपना हृदय थाडा अधिक खाला

महारानीजा अभी तक ता मुझ भी एसा लगता था कि हमारे जस सामान्य प्रजाजनका राजनीतिकी बातामें नहा पडना चाहिए। लकिन जब राजसत्ता पर कोई अकुश नहा रहता तब निरकुश राजा

है, उसका कुछ तो प्रभाव उन पर पडेगा ही। महारानीजी, सामान्य परिस्थितियोमे राजनीतिसे दूर रहना अच्छा है, परन्तु जव राज्य-व्यवस्था करनेवाले प्रमुख व्यक्तिके व्यवहारके साथ सम्पूर्ण राष्ट्रका भाग्य जुड जाता है, उस समय तो राजनीतिसे दूर रहा ही नही जा सकता। मै तो मानती हू कि आज एक एक लकावासीको अपने महाराजसे कह देना चाहिये कि 'आप हमारे महाराज अवश्य है, परन्तु आपने सीताजीका हरण करके भयकर गलती की है। जव तक आप यह गलती नही सुधारेगे तव तक आपके इस कार्यके प्रति अपना विरोध प्रकट करनेके लिए हम हडताल और उपवास करेगे।'" त्रिजटाकी स्त्रीशक्ति उसके प्रत्येक शव्दसे प्रकट होती थी।

रानी मन्दोदरी वोली "वहन, धन्य है, तुझे धन्य है! वार वार धन्य है! तेरी इस वातचीतसे मुझे अपना भी एक दोप समझमे आ गया है। आज तक मैने व्यक्तिगत शुद्धिकी रक्षाका दृढतासे प्रयत्न किया है, जिसके फलस्वरूप मै अपने जीवनको तो शत-प्रतिशत शुद्ध रख सकी हू। परन्तु एक राजरानीके नाते लकाके राज्यतत्रमे भी मेरा कोई कर्तव्य है, यह मेरी समझमें नही आया था। आज मुझे अपना यह कर्तव्य समझमे आ गया है। मानव-समूहोके साथ रहना और जीवन विताना हो, तो व्यक्तिगत शुद्धिके आग्रहके साथ समूहकी शुद्धिका प्रयत्न भी होना ही चाहिये। समूहकी शुद्धिके कार्यमे अकेली कठोरता ही काम नही दे सकती। उदारता तथा धीरजके साथ विशाल दृष्टिवाली सतत सावधानी और जागृतिकी भी जरूरत रहती है। मुझमें अभी इन सव सद्गुणोका विकास नही हुआ है, इसीलिए 'लकापति मानेगे या नही' इस भयसे मै वहुतसी वाते उनसे कहनेमे हिचकिचाती हू। परन्तु अव केवल रानीके नाते ही नही वल्कि लकाके प्रजाजनके नाते भी मै उनके कार्यका विरोध करूगी। इसके कारण मेरी आज तककी पतिभक्ति पर पानी फिर जाय तो भले ही फिर जाय!"

मन्दोदरीके अन्तिम शव्दोके पीछे दृढताका जो भाव था, उसका भी त्रिजटा पर वहुत गहरा प्रभाव पडा। परन्तु उन शव्दोके सच्चे रहस्यको वह नही समझ सकी। इसलिए वह रानीके आशीर्वाद लेकर अशोक

वाटिकाकी दिशामें तेज गतिसे बढ़ा तो जरूर परन्तु उसके मनमें यह प्रश्न बना रहा : पतिभक्ति पर पानी फिर जाय तो भले फिर जाय, ये शब्द सतीने क्या कहे होंगे? इस वचनको कितना ही प्रयत्न करने पर भी वह समझ नहीं सकी। समझती भी कैसे? प्राचीन रूढ़ियोंके जालमें फंसी हुई लंकाकी प्रजा मन्दोदरीके इस कदम पर धर्मभंगका आरोप लगायेगी, इसकी कल्पना त्रिजटाको कैसे हो सकती थी? इस समय तो उसे समूचा विश्व आत्मवत दिखाई देता था।

लंकाके सर्वसत्ताधारी राजाके पाले पड़ी हुई रानी मन्दोदरी यह बात भलीभांति जानती थी कि सुखचैन और मौजशौकमें डूबा हुआ प्रजा और राज्यके मंत्रीगण सत्याग्रहके लिए तैयार नहीं हैं। इतना ही नहीं, वे सब आसानीसे टाले जा सकनेवाले भावी महायुद्धको निमंत्रण देनेवाले महाराजके कुविचारों पर एकमनसे अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगा देंगे।

५२

उर्मिला और माण्डवी

१

नही देख पाती। इस जगतमे मेरे जैसी हतभागिनी कौन होगी? मैंने अनेक लोगोके जीवनोको छिन्न-भिन्न कर डाला है। रामका वनवास, महाराजकी मृत्यु, अयोध्यामें उल्कापात, भरतकी हृदय-वेदना, मेरे साथ ही मेरी दो वहनो—कौशल्या और सुमित्राका वैधव्य। क्या क्या गिनाऊ, बेटी उर्मिला? मेरी समझमे ही नही आता कि मै किसलिए जी रही हू।"

इतना कहते कहते कैकेयी रो पडी। भरतकी पत्नी माडवी और उर्मिला अपने अपने आचलसे सासके आसू पोछने लगी और उन दोनोकी आखे भी छलछला आईं। नारीका हृदय अत्यन्त कोमल होता है। उसकी सक्रिय सहानुभूति तुरन्त प्रकट हो जाती है।

उर्मिला बोली "माताजी, आप इतनी दुखी न हो। सच कहू तो मुझे किसी प्रकारका दुख ही नही है। उलटे मै तो अपनेको भाग्यशाली मानती हू। सुमित्राजी, कौशल्याजी तथा आपकी सेवाका लाभ मुझे सदा मिलता है। यह कोई ऐसा-वैसा लाभ है? मेरी जेठानी माडवीजीको ही देखिये। ये अपने जटाधारी पतिको प्रतिदिन देखकर अपने हृदयमे किस तरह शान्ति रख पाती होगी!"

"वहन उर्मिला, सच कहू तो जब मै इस दृष्टिसे देखती हू तब मुझे लगता है कि मै तुझसे अधिक सुखी हू, क्योकि मुझे प्रतिदिन कैकेयी-पुत्रके दर्शन करनेका सौभाग्य तो मिलता है। जब जब वे नदी-ग्रामसे चलकर अयोध्याके राज-दरबारमे पधारते है, तब तब इस झरोखेमे दूर खडे रहकर भी उन्हे प्रत्यक्ष नमस्कार करनेका महालाभ मुझे अनायास ही मिल जाता है। इसके सिवा, जब वे माताओको प्रणाम करनेके लिए रनिवासमे पधारते है तब उनकी चरण-रजका लाभ भी मुझे आसानीसे मिल जाता है।" माडवीके प्रत्येक वचनसे तपस्याका तेज झर रहा था और यह भाव टपक रहा था कि वह उर्मिलासे ज्यादा सुखी है।

अहा, चरित्रका कैसा अद्भुत चमत्कार है! चरित्रने ही कैकेयीसे पश्चात्ताप करवाया। जानकी, मांडवी और उर्मिला सब अपनेको सुखी मानती थी, यह भी चरित्रका ही प्रताप था!

२

राम और लक्ष्मण प्रयाण पथ पर अपने दिन व्यतीत कर रहे थे। नन्दीग्राममें भरत भी तपस्वीका जीवन बिता रहे थे। एक ओर राम-लक्ष्मणने जंगलमें मंगल कर लिया था तो दूसरी ओर भरतने राजभवनों और बाग-बगीचोंको त्यागकर नन्दीग्रामकी झाड़ियोंमें ही मंगल मान लिया था। एक थे वनके तपस्वी तो दूसरे थे बस्तीके तपस्वी।

राज-दरबारके अत्यन्त भव्य आसन पर विराजकर भरत जिस प्रकार राज्यका कामकाज चलाते थे उसे देखकर अच्छे अच्छे धर्म मूर्ति पुरुषोंका मस्तक भी श्रद्धासे झुक जाता था। ऋषि मुनियोंके हृदय पुलकित हो उठते थे। राजनीति और धर्मका ऐसा सुमेल अन्यत्र कहां देखनेको मिल सकता था? वशिष्ठ जैसे सर्वोच्च महर्षि इस सुमेलके उत्तम साक्षी थे। गुरुजीसे भरतको सदा ही प्रेरणा मिलती रहती थी। आसपासके प्रदेशोंको न तो भरतके आक्रमणका भय था और न भरतकी साकेत भूमिको अन्य किसी राज्यके आक्रमणका भय था। अयोध्याका महत्ता राज्यतंत्र कैसा सुशोभित हो रहा था!

प्रजा, राज्य-कर्मचारी और राज परिवार सब अपने अपने कर्तव्य पालनमें रत हैं। यह सब रामकी पादुकाओंका ही प्रताप है — ऐसा मान कर भरत सदाकी तरह दैनिक कार्योंका विचार करते हुए रातमें शय्या पर लेटे थे। लेकिन आज प्रयत्न करने पर भी उनकी आंखें लग नहीं रही थी। एक बार उनका मन दण्डकारण्यकी ओर घूम आया। कुछ क्षणके बाद वह मिथिलाकी यात्रा कर आया। उनका जय सियाराम का रटन तो चल ही रहा था। लेकिन इस सबके बावजूद भरतका चित्त न जाने क्या शांत और स्वस्थ होता ही नहीं था। क्या रामचन्द्र पर कोई भारी आपत्ति आ पड़ी होगी? क्या जननीके समान जानकी और ज्येष्ठ भ्राता रामका वियोग हो गया होगा? ऐसे विचार भंवरमें भरतका मन फंस गया था। बहुत रात तक चलते रहे अपार मंथनसे थक कर अंतमें भरतकी आंखें लग गई। प्रातःकाल हुआ। भरत नित्य कर्मोंसे निवृत्त हुए। लेकिन अभी तक उनका मन शांत और स्वस्थ नहीं हो

रहा था। रामकी आज्ञाको तोडकर उनके समाचार मगाये नही जा सकते थे। ऐसे मनोमन्थनमे भरतके कितने ही दिन वीत गये। अतमें अपने भीतरसे ही उन्हे समाधान मिल गया।

५३

पुत्रीका स्मरण

जानकीकी माता सुनयनाजी जनकराजके चरणोमे प्रणाम करके कहने लगी "स्वामिन्, अयोध्याके समाचार तो समय समय पर मिलते रहते हैं। भरतकी आप वार वार प्रशसा किया करते हैं। परन्तु मेरे मन पर तो भरतकी सबसे ऊची छाप पडी दडकारण्यमे राम और भरतकी भेटके समय। अहा, भरत तो भरत ही है।"

"सुनयना, भरतकी क्या क्या वात मै तुम्हे सुनाऊ? आज साकेतका राज्य भरत एक तपस्वीके रूपमे चला रहा है। उसकी जोडका दूसरा शासक सारी दुनियामे नही मिल सकता।" इतना कहते कहते जनकराजका हृदय गद्गद हो गया। सुनयनाकी आखें भी हर्षके आसुओसे छलक उठी। कुछ क्षण मौन रहकर वे वोली

"मेरे रामके क्या समाचार है?"

"राम तो हम सबके अतिम मिलनके वाद उस स्थानको भी छोडकर आगे वढ गये हैं; क्योकि वे जानते थे कि उस स्थानसे परिचय वढनेके वाद नगरजन उनका पीछा नही छोडेंगे। वे तपस्वी वनकर जिस अरण्यमे गये हैं, वहाकी आरण्यक प्रजाके साथ उनका सतत सपर्क वना रहे यही एक उनकी अभिलापा थी। सामान्यत राम आरण्यक सस्कृतिको आगे वढानेकी अभिलापा रखते मालूम होते हैं।"

"यह सव तो वडा अच्छा है। परन्तु पिछले दो-तीन वर्षसे मेरे मनमे जानकीकी वडी चिन्ता रहा करती है। माताके हृदयमें अपनी पुत्रीके लिए कितना प्रेम रहता है, इसे अनुभवके विना कोई नही जान सकता।" इतना कहते कहते सुनयनाके नेत्रोसे आसू टपकने लगे।

उ हे ढाढस बधाते हुए राजा बोले तुम जानकीकी जरा भी चिन्ता न करो। जिसके पास एकमात्र शील और चरित्रकी पूजा है उसे कहीं भी आंच नहीं आती।'

आंचलसे आंसू पोंछते पोंछते सुनयना बोली विपत्तिकी तो मन कोई चिंता नहीं है। फिर जहां रघुवंश मणि राघव जसे रक्षक और लक्ष्मण जसे सेवक हों वहां किस बातकी कमी हो सकती है? परन्तु वर्षोंसे उन तीनोंके कोई समाचार नहीं मिले इस कारणसे मनमें विषाद बना रहता है। म मनको बहुत समझाती हूं लेकिन वह किसी भी तरह हाथमें नहीं रहता। आपके जसे वीतरागीको तो कोई दुःख नहीं हो सकता। फिर आपका हृदय पुरुषका है।

इस अंतिम वाक्यसे जनकराजका हृदय पसीज उठा। मनमें दबाकर रखी हुई विरह वेदना आंखोंके द्वारा बाहर प्रकट होकर बहने लगी। वे इतना ही कह पाये देवी हृदयमें कितना ही दुःख क्यों न हो लेकिन सिद्धांतके लिए उसे सहन करना ही होगा। सिद्धान्त प्रेम ही मनुष्यके कल्याणका केन्द्र है। राम समाचार न भेजें इसमें उनकी शोभा है। हम समाचार न मंगायें इसमें हमारा कल्याण है। बस अंतरके तारोंको तो मिलनसे कोई रोक नहीं सकता। वे तो अगम्य रीतिसे निरंतर बातें करते ही रहते हैं।'

किन्तु दोनोंको इस बातका पता नहीं था कि उनकी पुत्री जानकी एक ऐसे राक्षसके पंजेमें फंसकर दुःख भोग रही है जिसे लंका नगरीके किसी भी सज्जनका भय नहीं है। विभीषण जसे सत्पुरुषको जिसने लात मारकर निकाल दिया है मन्दोदरी जसी सतीकी जो मजाक उड़ाता रहा है ऐसे राक्षस रावणकी अशोक वाटिकामें अकेली सीता पूर्ण आनन्दमें रहती है—एकमात्र अपने सतीत्वके प्रतापसे और इस आशाके बल पर कि कभी न कभी तो रामसे अवश्य मिलाप होगा। कविने ठीक ही गाया है कि लाखों निराशाओंमें भी एक अमर आशा छिपी रहती है। और इस आशाके पीछे तो अखंड सद्गुण माला थी फिर अमर आशा सफल क्यों न होती? जनक और सुनयनाके आंसुओंके पीछे भी तो विराग वृत्तिवाली एक उदात्त आशा थी ही।

५४

मन्थराका हृदय-परिवर्तन

"सुवीर शत्रुघ्न, आप दोनो भाई ननिहालसे अयोध्या पधारे है, यह समाचार सुनकर सबसे ज्यादा आनन्द मुझे हुआ था। लेकिन वह आनन्द लम्बे समय तक टिका नही। हमारी सारी आशाये क्षण भरमे धूलमे मिल गई। माता कैकेयीकी आरती उतारनेकी क्रिया जहाकी वहा रुक गई। 'कहा है मेरे राम और कहा है पूज्य पिताजी?'— भरतजीके इस वाक्यको सुनकर मै स्तब्ध हो गई। उस समयका कैकेयी माताका चेहरा याद आता है, तो आज भी मन दु खी हो जाता है। आपने मेरी ओर कठोर दृष्टिका जो बाण फेका था, उसका घाव आज भी वैसा ही है। कैकेयी माता तुरन्त सावधान हो गई थी। सौभाग्यसे उन्हे राजमाता कौशल्याजीके साथ रामके दर्शनका लाभ मिला था। वनवासी राम, सीता और लक्ष्मणकी त्रिवेणीको देखकर लौटनेके पश्चात् तो उन्होने अपनी सारी दिनचर्या ही बदल डाली है। इन सब बातोसे सावधान होनेके बदले मै बहुत समय तक वैरकी भावनासे भरी रही। मै कमर कसकर निन्दाके महासागरमे कूद पडी। रामकी निन्दाका तो एक अक्षर भी कोई अयोध्यामे सुननेवाला नही था और लक्ष्मण पर मेरा अनुराग पहलेसे ही अधिक था। इसलिए मैने जानकीकी निन्दा शुरू की। प्रजाके उच्च वर्गमे तो मेरी बात कोई नही सुनता। इसलिए मै निचले वर्गके लोगोके पास जाने लगी और सीताजीके बारेमे चाहे जैसी बातें करने लगी। मै मानती थी कि सीता और राम दोनो शरीरसे भले ही भिन्न हो, परन्तु हृदयसे एक है। रामको दु खी बनाना हो तो सीता और रामके बीच मनमुटाव पैदा कर देना चाहिये। अगर दोनोके मन अलग पड जाय, तो राम अवश्य पागल हो जायगे। ऐसा हो तो ही भरत अयोध्याके सच्चे राजा बन सकते है। और अगर भरत स्वय अयोध्याके राज-सिंहासन पर बैठ जाय, तो राजमाताकी

दासीके नाते मेरा सम्मान अवश्य ही बहुत बढ़ जायगा। ऐसी ऐसी बातें मेरे मनमें पड़ी हुई थीं। परन्तु आज अचानक मुझे भरतजीके दर्शन हो गये। उनका पवित्र मुख देखते ही मेरे हृदयको एक अगम्य आघात लगा। मेरा अन्तर जाग उठा। मुझे अपार पश्चात्ताप होने लगा। मैं आपके पास अपना हृदय खोलने तथा पश्चात्तापकी अग्निमें नष्ट हुई अपनी आत्माको शान्ति दिलानेके लिए आई हूँ और आपसे क्षमाकी भीख माँगती हूँ।

इतना कहकर मंथराने शत्रुघ्नको नमस्कार किया और एक निष्पाप नम्रतासे उसके सामने बैठ गई।

बहन मंथरा, तुमने जो भावना प्रकट की है उसकी मैं कदर करता हूँ। परन्तु मुझमें उपदेश देनेकी योग्यता नहीं है। मुझे स्वयं भी तुमसे क्षमा माँगनी चाहिए। बड़े भाइके साथ रहनेसे कुछ अच्छे गुण शायद मुझमें आये होंगे। माता पिताकी विरासतके रूपमें हृदयकी शुद्धता तथा वचन-पालनके गुण भी मुझे मिले होंगे। लेकिन उत्तेजना आवेश तथा पूर्वाग्रहोंका जोर भी मुझमें खूब है। जिस समयका याद अभी तूने दिलाया उस समय एक नारी पर हाथ उठानेकी सीमा तक मैं उत्तेजित हो चुका था। उस बातको तू भले ही भूल जाय लेकिन पिछले कितने ही दिनोंसे उस मनस्थितिको याद कर-करके मैं बहुत बार पछताया हूँ। आज तू प्रत्यक्ष आ गई है तो इस सुअवसर पर मैं भी अपना हृदय खोलकर तुझसे क्षमा माँगता हूँ। मैं तुझे क्षमा करनेकी योग्यता नहीं रखता। लेकिन तू क्षमा माँगने आ ही गई है, तो मैं हृदयसे तुझे क्षमा करता हूँ।

अन्तमें एक छोटी बहनके नाते तुझसे दो-एक बातें मैं कह दूँ। देख बहन! निन्दाका जहर भयंकर होता है। अच्छा हुआ कि यह बात समय पर तेरी समझमें आ गई। निन्दा और ईर्ष्या केवल हमें ही नहीं किन्तु हमारे साथ संपूर्ण समाजको भी जलाकर नष्ट कर देती है। यह भारी भूल एक ठोकरके कारणसे तेरी समझमें आ गई यह तेरे हृदयकी उदारताका सूचक है। अब तू इसका बहुत दुःख न मान। लेकिन जहाँ जहाँ तूने माताजीकी निन्दाका जहर उड़ेला हो वहाँ वहाँ तू जा

और उसे धोकर साफ कर डाल। यद्यपि निन्दामे इतनी ज्यादा चिकनाहट रहती है कि अधिकसे अधिक जोर लगाकर साफ करनेके वाद भी समाजमे उसके कुछ दाग तो रह ही जाते है। मेरी दूसरी वात यह है कि राम और सीताके प्रेमको तू, मै या अधिकतर दूसरे लोग समझ नही सकते। वे दोनो केवल नर-नारी नही है, वे तो प्रभु और प्रभुता है। उन्हे जगतका कोई भी तत्त्व अलग नही कर सकता।"

रामायणका एक छोटा माना जानेवाला पात्र शत्रुघ्न तथा विश्वके तिरस्कारका पात्र वनी हुई मन्थरा समाजके उद्धारका ऐसा गभीर सवाद कर सकते है, यह जानकर किसे हर्ष नही होगा?

वर्तुल छोटा है या वडा, इसका मूल्य नही है। परन्तु मूल्य उस वर्तुलके पीछे रहनेवाले वलका है। विचारोके सम्वन्धमे भी यही उपमा लागू होती है। विचारोकी सख्या कितनी वडी है यह न सोचकर ऐसा सोचना चाहिये कि किसी विचारके पीछे आचरणका वल और अनुभव कितना है, इसी पर उस विचारके प्रचारका और उसकी आयुका आधार रहता है।

५५
युद्धकी तैयारी

"भाई लक्ष्मण, सीताका पता लग जानेके वाद अव अधिक समय यहा विताना हमारे लिए हितकर नही है। मेरे मनमें यह विचार तो वना ही रहता है कि युद्धके विना यह सारा प्रश्न हल हो जाय तो कैसा अच्छा हो! हिसक युद्धमे अनेक निर्दोष मनुष्य विना कारण मारे जाते है। तपस्वीके वेशमे अरण्यमे रहनेके वाद हिसक युद्ध लडना पडे, यह मुझे जरा भी पसद नही है।"

रामके हृदयस्पर्शी वचन सुनकर कुछ देरके लिए तो लक्ष्मण स्तब्ध वने रहे। अतमे उन्होने मौन तोडा·

"वडे भैया, पवित्र प्रेमके वलसे अथवा समझानेसे समझ सके, ऐसा वर्ग जगतमे सदा छोटा ही रहनेवाला है। अधिकतर अपराधी तो

द्विविद तथा मयदके सेनापतित्वमें दो सैन्य और आ गये। ठीक सामनेसे जाववन्तके सेनापतित्वमें एक महासेना आई। उसके बाद ही विद्युत गतिसे वाका भतीजे सुग्रीव और अंगद आये और उन्होंने रामके चरणोंमें दंडवत प्रणाम किया। लक्ष्मणका हृदय उमंग और उत्साहसे भरा इस सेनाको देखकर प्रफुल्लित हो गया। उनके मुखसे ये शब्द बरबस निकल पड़े हम जीते और रावण हारा यह निश्चित मानिये।

इतनेमें समस्त सेनामें एकसाथ यह तुमुल ध्वनि गूंज उठी जय हो जय हो रामचन्द्रकी विजय हो! सारा वातावरण वीररसमें भर गया। क्षणभरके लिए सबको विजयश्रीका रोमांच हो आया। स्वयं राम भी इस अनुभवसे नहीं बचे। उन्होंने तुरन्त आकाशकी ओर देखा। सूर्य चमक रहा था। फिर वे क्षितिजकी ओर एकटक देखने लगे। एक स्थान पर छाया थी तो दूसरे स्थान पर धूप थी। हार-जीतके द्वन्द्वका भी तो ऐसा ही है न? राम विचारोंमें लीन हो गये। कुछ ही देरमें अयोध्यासे लेकर मिथिला और लंका तकके चित्र एक एक करके उनकी आंखोंके सामने खड़े होने लगे। फिर उनका थोड़ा नीचे झुका और जटाओंमें से अलग पड़ी हुई एक लटने उनकी आंखके सामने परदा डाल दिया।

वनका तपस्वी युद्ध लड़ेगा? शोणितकी नदीका साक्षी बनेगा? क्षत्रिय रूपमें संग्राममें जुड़ेगा? ऐसे अनेक प्रश्नोंने रामके मन बुद्धि और चित्तसहित अंतःकरणको घेर लिया। भीतरसे उत्तर मिला राम तू निरुपाय है। रावणके विरुद्ध इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। यह आवाज वास्तवमें आत्माकी होगी या वृत्तिकी? रघुवंश मणि रामको इस समय अपने मार्गदर्शक सद्गुरु वशिष्ठजीका स्मरण हो आया। कुछ देर बैठकर उन्होंने गम्भीर बैठक प्रार्थना की। आध घड़ी बाद जब उन्होंने अपनी आंखें खोलीं तो देखा कि समस्त महासैन्य श्रोता और जिज्ञासु निष्ठकी भावनासे शांत जमकर उनके आसपास एकत्र हो गया है। रघुपति रामका हृदयस्पर्शी वचन लगा

मित्रो विजय हमारा आदर्श नहीं है। युद्ध हमारा लक्ष्य नहीं है। सत्य हमारा आदर्श है और न्याय हमारा लक्ष्य है। मनुष्य जाति ईश्वरका उच्चतम सर्जन है। वह नरश्रियसारा सर्वोच्च रचना है। मानव

मानवके साथ लडे, यह शोभाकी वात नही है। आप सवने अपने भीतर जिस अनुशासन और आज्ञा-पालनकी भावनाका विकास किया है, उसका मूल्य महान है। आज आप सवको आपके आत्मीय जनोने या तो प्राणत्यागके लिए या विजय-प्राप्तिके लिए विदा किया है। प्राणार्पणकी आपकी उत्कठा आपके हर कदम पर दिखाई पडती है। आप सवके इस वीरतापूर्ण वातावरणसे सूखे और झुके हुए वृक्ष भी जाग उठे है। फिर भी भाइयो, हमारी वीरताका समरागण वाहरकी भूमि पर नही परन्तु हमारे भीतर है। इस समय वाहरके रावणको हरानेकी वात याद करनेकी जरूरत नही है। परन्तु अपने भीतर पडे हुए काम, क्रोध और लोभको हराने या जीतनेकी वात हमे सामने रखनी है। हमारे वडेसे वडे शत्रु ये काम, क्रोध और लोभ ही है। और ये सव हमारे भीतर है।"

लक्ष्मण अकुला उठे। उनकी वीरताको इससे आघात लगा। वे वोले "वडे भैया, ये विमान आ गये है। जाववतके सेनापतित्ववाली टुकडीको उनमे वैठकर अभी रवाना हो जाना है।" रामने अनासक्त योगीश्वरके समान कुछ क्षण लक्ष्मणके चेहरे पर एकटक देखा और लक्ष्मणका लज्जित वना हुआ मुह वन्द हो गया। रघुवशेन्दु रामचन्द्रजीने आगे कहा "मेरी मुख्य वात लगभग पूरी होती है। हम सव कुछ ही देरमे यहासे प्रस्थान करेगे। आज हमारा स्थूल ध्येय तो लकाकी दिशामे प्रयाण और रावणके साथ युद्ध करना है, परन्तु सूक्ष्म ध्येय वही वात है जो मैने अभी आपसे कही है। उसे हमे हृदयमे वसा लेना है। वाहरका युद्ध तो लाचारीसे लडना होगा। अभी भी मै युद्धको टालनेके प्रयत्नमे विलकुल निराश नही हुआ हू। युद्ध आ ही पडे तो भी हममे से कोई लकाके सामान्य प्रजाजनोके प्रति शत्रुताका भाव न रखे। हम सव उन्हे अपने मित्र ही समझे। रावणके साथ युद्ध करते हुए भी हम अपने मनमे किसी प्रकारके पूर्वाग्रह या वैरभाव नही रखेगे। हमारे मन पर रावणके कुकृत्यके कारण उसकी जो छाप पडी है, उस छापसे उसकी आत्माको अर्थात् उसके शुद्ध भावको हमे अलग रखना है। मनुष्य स्वय तो दूषित है ही नही, वासनाओके कारण वह

दूषित बनता है। हमें अपने भीतरसे और सारे विश्वसे वासनाओंके विषको निकाल फेंकना है। इस विषको हम तभी निकाल सकते हैं जब विशुद्ध आत्माको दाबके साथ न जोडकर दोष और आत्माके अ सम्बन्धको हम समझ लें। अंतिम बात यह है कि हमें तेज गतिवाले किन्हीं वाहनोंका उपयोग नहीं करना है। युद्ध स्वयं ही एक आवेग है। आवेगयुक्त कार्योंमें तेज गतिवाले साधन मिल जायं तो दोनों अपार आपत्तियोंको जन्म दे सकते हैं। भले ही लंका पहुंचनेमें हम देर लगे फिर भी पैदल यात्रा करके अर्थात पदाति सेनाके रूपमें ही हमें प्रयाण करना है। मार्गमें जो प्राकृतिक दृश्य मिलेंगे उनको देखते देखते हम आगे बढ़ेंगे।

युद्धमें लडनेके लिए जानेवाले कौनसे सैनिकने ऐसी सिद्धान्त चर्चाका पान किया होगा? सब लोग रामके वचनामृतका स्वाद लेकर उठे। कुछ ही देरमें फल भोजनकी घंटी बजी। भोजन करते करते भी अनेक मुनियोंका चिन्तन चलता रहा। भोजनके बाद सब लोग अपनी अपनी छावनियोंकी ओर गये। एक ओर विश्रामकी क्रिया चल रही थी तो दूसरी ओर रातके पडाववाले स्थानकी दिशामें डेरे-तम्बू रवाना किये जा रहे थे।

श्रीराम जय राम जय जय राम!
जय राम जय राम जय जय राम!

इस ध्वनिके साथ राम लक्ष्मण और हनुमान सहित सम्पूर्ण सेना लंकाकी ओर रवाना हुई। यह था प्रथम मंगल प्रस्थान जिसकी प्रतिध्वनि अशोक वनमें बैठी हुई जानकीके हृदयमें उठी।

५६

समुद्र-तट पर रामकी सेना

रामको केन्द्रमें रखकर किष्किन्धाकी महासेना अब लकाके समुद्र-ट पर पहुच गई थी। मार्गमे सबको अनेक प्रकारके कडवे-मीठे अनुभव ए। श्रीरामके सत्संगके प्रतापसे प्राप्त हुए ज्ञान-भडारके कारण कडवे-ीठेका विरोध नही परन्तु रस-सवादिताका आनद सबको प्राप्त हुआ था। ामान्यत सैनिकोको खान-पान या रहन-सहनमें जो स्वतत्रता मिलती है, उसका इस सेनाके सैनिको द्वारा स्वभावसे ही सदुपयोग किया जाता देखाई देता था। सेनाका अनुशासन अनोखा था, लेकिन वह सेनानायको द्वारा लादा हुआ नही था। वह तो सैनिकोके भीतरसे स्वयस्फूर्त अनुशासन मालूम होता था। एक-दूसरेसे अलग रहकर चलनेवाले सारे सैन्यदल आज लगभग पन्द्रह दिनके बाद समुद्र-तट पर एक स्थानमें एकत्र हुए थे।

आजका आनन्द अनोखा था। समुद्र-तटकी विशाल चादर जैसी चारो ओर फैली हुई सुशोभित मुलायम बालूमे सैनिकोके तम्बू फैले दिखाई पडते थे। छावनीके पास ही ज्वारका समुद्र-जल किनारेसे टकरा-टकराकर लौट जाता था। ऊपर आकाशमे पूर्णिमाकी चादनी खिल रही थी। चन्द्रमाका शीतल तेज सबको दूधसे नहला रहा था। उछलती तरगोके बीच चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब देखनेका कुछ और ही आनन्द था। सुदूर स्थित लका द्वीप चारो ओर फैले हुए श्वेतरगी भूगोलमें काले बिन्दु जैसा दिखाई देता था। लकामे प्रवेश करनेके लिए एक मार्ग पैदल-यात्राका था। दूसरा खाडीमें होकर समुद्र-यात्राका था। किस मार्गसे जाना चाहिये, इस विषयमे रघुकुलपति रामचन्द्रजीने सब सैनिकोका मत मागा। उनके मतदानमें से एक विवाद उठ खडा हुआ। धीरे धीरे उसने उग्र रूप ले लिया। लक्ष्मण उसके निमित्त बन गये। कोई सैनिक बोला : "हमे खाडीके मार्गसे ही समुद्र-देवकी आराधना करके जाना चाहिये। इससे समुद्र स्वय हमे मार्ग दे देगे।" दूसरा सैनिक बोला · "हा, बिल-

बहुत ठीक है।" लक्ष्मणजी फिर बोले [illegible] ही न? [illegible] पर्वके [illegible] जड़ पूजक और [illegible] बना लिया है। [illegible] और [illegible] पूजा कराते [illegible] ही [illegible] और [illegible] बना देते हैं। [illegible] देवपूजाको [illegible] भी [illegible] है। [illegible] सब ईश्वरके अंग हैं। [illegible] ईश्वर [illegible] हम [illegible] भी नहीं बना सकते। पूजाका [illegible] तो एकमात्र ईश्वर ही हो सकता है। और दूसरे हो सकते हैं हमारे [illegible] पैगाम।

तालियोंकी गड़गड़ाहट सब [illegible] लक्ष्मणजीकी बातका समर्थन किया। रामचन्द्रजीने यह सुना। वे कुछ देर ठहर कर बोले, "भाइयो, मेरे नामका भी आज [illegible] पर्वोंमें जोड़ लिया, इसलिए मुझे कुछ कहना चाहिए। इसके सिवा मेरे भाईने [illegible] यह कहना पड़ता है कि किसीकी आराधना करनेकी सच्ची रीति यह है कि जिसकी आराधना हम करें उसके साथ आत्मीयता बढ़ानेका प्रयत्न हमें करना चाहिए। [illegible] साथ हमें [illegible] भी [illegible] चाहिए जिससे [illegible] हृदय पर [illegible] हो। [illegible] आजकल [illegible] इसलिए [illegible] और उद्यमके बारेमें भी [illegible]।

मित्रो, उद्यम और भाग्य एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। जो उद्यम अलक्ष्य और अगम्य है, उसे भाग्य कहा जा सकता है। उद्यमको भी अच्छी तरह समझ लेना बहुत जरूरी है। मिथ्या अभिमानसे या मोहमायासे प्रेरित होकर जो काम होता है, उसे उद्यम नहीं कहा जा सकता। उद्यमके पीछे त्याग, निस्स्वार्थता, शुद्धता और नम्रता होना चाहिए। गुणपूजाके सिवा दूसरी सब पूजायें दोषयुक्त हैं। मेरी ही बात लूं। मैं कौन हूं? यदि आप पंच महाभूतोंके इस पुतले पिंजरेकी अंधश्रद्धासे अनुसरण करते हों, तो यह भी जड़ पूजा ही है। इसलिए मैं सदा यह कहता हूं कि आप पहले जो काम मैं करता हूं उसे भली भांति समझ लें और बादमें उसका अनुसरण करें। मैं स्वयं भी देहधारी होनेके कारण बहुत बार मोहमें पड़ जाता हूं। लेकिन तुरंत

ही भीतरसे कोई शक्ति मुझे सावधान कर देती है। आप सबमें भी वैसा ही ईश्वर बैठा है। हम सब देहधारी इस दृष्टिसे तो समान है। अन्तर केवल कम या अधिक जागृतिका है। मुझमें आपकी श्रद्धा विशेष रूपसे जागे और आप मेरी पूजा करे, तो इसमे आपकी तो उन्नति ही है। लेकिन पूज्य बनकर मै यदि अभिमान करने लगू, तो मै अवश्य नीचे गिर जाऊगा। इसीसे मैने बार बार कहा है और आज फिर कहता हू कि किसी देहधारी महामानवको भी ईश्वर अथवा ईश्वरकी कोटिका नही मानना चाहिये। ऐसे महापुरुषके लिए पूज्य, उपास्य, गुरु आदि सबोधन काममे लिये जा सकते है। परन्तु इन सब सम्बोधनोका मूलभूत तत्त्व तो सद्‌गुण ही है। ऐसा माननेके कारण ही प्रत्येक क्रियामे से जानने योग्य, छोडने योग्य और ग्रहण करने योग्य अश हम निकाल सकते है और बडेसे बडे मानवकी भी नम्रतापूर्वक उचित आलोचना कर सकते है। ऐसे तेजस्वी अनुयायियोके बीच जीनेमे ही मै गौरव अनुभव करता हू। लक्ष्मण और जानकीने भी यदि ऐसी सच्ची स्वतत्रता न ली होती, तो मै वनवासमे साथियोसे विहीन और एकाकी होकर सर्वसत्ताधारी बन जाता और गुरु वशिष्ठ जैसे सदाके मार्गदर्शकके अभावमें मै कहीका न रह जाता। सच्चे आलोचकोने मेरी आतरिक और बाह्य दोनो प्रकारकी प्रगतिमे बडीसे बडी सहायता की है।"

रामके वचन सुनकर सब पुलकित हो गये, मानो सबको जीवनका एक नया दर्शन प्राप्त हुआ। अवसरके अनुसार कुछ बाते करनेके बाद थोडे सशोधनोके साथ खाडीके मार्गसे ही जानेका निर्णय हुआ। इस प्रकार युद्धके लिए निकले हुए सैनिकोको शुद्ध राजनीतिक तालीम भी अनायास ही मिल रही थी। चन्द्रको देखनेसे पता चला कि सोनेका समय हो गया। इसलिए सोनेके नियत समयकी घटी बजी और सब लोग अपने अपने तम्बुओमे जाकर सोनेकी तैयारी करने लगे। थके हुए सैनिक तो देखते ही देखते गहरी नीदमे सो गये। केवल जागनेवाले सतरी चारो ओर घूमकर चौकी कर रहे थे। उनमे लक्ष्मणजी भी शामिल थे। हनुमान और सुग्रीव श्वाननिद्रा लेते हुए रामके दोनो चरण-कमलोके पास लेटे थे। वह दृश्य भी कैसा मनोहर लगता था।

५७

त्रिजटा और माल्यवतका सवाद

बहन त्रिजटा, लकाकी वर्तमान दशाको देखकर पिछले कितने ही दिनोसे मेरी आखोकी निद्रा लुप्त हो गई है और पेटकी पाचन क्रिया मद पड गई है। कहा भी चैन नही मिलता। क्या इस निरकुशता और खुले अत्याचारको दूर करनेका कोई मार्ग ही नही है? कुछ दरसे लिए यह बात भी मनमें आती है कि प्रजाको राज्यके खिलाफ बड़े पैमाने पर खुला विद्रोह घोषित कर देना चाहिये। लकाकी प्रजाको मै देखता हू तो लगता है कि इस भयभीत प्रजामें से विद्रोह करनेका साहस तो क्या परतु सामान्य नैतिक साहस भी चला गया है। राज्यमें खुशामदखोरीके सिवा और कुछ दिखाई ही नही देता। मुझे तो इस स्थितिसे बाहर निकलनेका एक ही मार्ग दिखाई देता है वह है पररामको लका पर आक्रमण करनेके लिए भडकाना। देखो न हमारे मानवता प्रिय मत्रीश्वर विभीषणजीका मुख कितना उदास रहता है। पररामको आक्रमण करनेके लिए भडकानेमें खतरा तो रहेगा ही। सच पूछो तो मुझे इस खतरेसे ज्यादा भय इस बातका है कि लकाकी गरीब प्रजा लडाईके फलस्वरूप बरबाद हो जायगी। लडाईमें लडनेके लिए तो सैनिक ही जाते है। लेकिन शारीरिक दृष्टिसे कम बरबादी होने पर भी प्रजाकी आर्थिक, मानसिक और सास्कृतिक बरबादी बहुत अधिक होती है। लेकिन तब क्या इन सारे अत्याचारोको चुपचाप सह लिया जाय?

ये वचन बोलते बोलते माल्यवतका चेहरा क्रोधसे लाल हो गया। कुछ ही क्षणमें उसकी लाल लाल आखोसे अश्रुधारा बहने लगी।

अरे भाई इस तरह भावुक बननेसे क्या होगा? बहादुर योद्धा होकर तू रोता क्या है? स्नेह और प्रेरणासे भरा उलाहना देते हुए त्रिजटाने अपनी साडीके आचलसे माल्यवतकी आखें पोछ डाली। अपने कोमल हाथोसे उसकी पीठको थपथपाते हुए त्रिजटा हृदयभरी वाणीमें बोली

"हम सब प्यास लगने पर कुआ खोदनेकी इच्छा करनेवाले लोग है। कुआ भी कोई दूसरा चुटकी बजाते ही खोद दे और पानीका गिलास लाकर हमारे मुहसे लगा दे तो हम पी ले — हमारी ऐसी मनोदशा है। भाई, मुझे तो यह लगता है कि रावणको ऐसा निरकुश राजा बनानेमे हमारा भी प्रत्यक्ष या परोक्ष हाथ निश्चित रहा है। यह सारी स्थिति आजकी आज बदल या सुधर नही सकती। और कही ऐसा हो भी गया, तो वह नई स्थिति ज्यादा समय तक टिकेगी नही। हमे धीरज रखकर दीर्घ दृष्टिसे यह काम करना होगा। यह काम दूसरोकी आशा न रखकर हमे अपने बल पर आरभ करना होगा। अपनी बात कहू तो मै महारानी मदोदरीके सम्पर्कमे रही हू। मै मानती हू कि उस भली रानीका बहुत चलता नही। लेकिन आज किसीकी भी बात न सुननेवाला रावण मदोदरीकी बात सुनता है। भले आज वह मदो-दरीकी बातको हसकर उडा दे, परन्तु मेरी यह श्रद्धा है कि उसका बीज अंतमे रावणके अतरमे जरूर उगेगा। बिभीषणके साथ भी सपर्क साधनेका प्रयत्न मैने किया था, परन्तु मै प्रत्यक्ष सपर्क नही साध पाई। इसमे मेरी स्त्री-सुलभ झूठी लज्जा भी कारण रही है। इस भयका भी इसमे हाथ रहा है कि कही राजाको पता चल गया, तो वह इस शुभ कार्यको आरंभ होते ही खतम कर देगा। मेरा सच्चा कार्य तो महिलाओमे चल रहा है। अत्याचारोकी शिकार बननेवाली स्त्रियोमे कही कही स्वजाति-अभिमान पैदा हुआ देखकर मेरा हृदय प्रसन्न हो जाता है। इसमे भी सीताके अपहरणके बाद इन महिलाओ-की आत्मा दु.खसे सतप्त हो उठी है। लेकिन मेरा यह कार्य अभी तक उच्च वर्गकी महिलाओमे नही पहुच पाया है, इसी तरह वह निचले वर्गकी स्त्रियोको भी नही छू पाया है। लेकिन उज्ज्वल भविष्य-के लिए मेरी श्रद्धा दृढ तो बनी ही है।"

"परन्तु चीटीकी चालसे चलकर यह काम पूरा कब होगा?" माल्यवत बीचमे ही बोल पडा।

त्रिजटाने पुन धीरज रखनेका स्मरण कराकर स्पष्ट शब्दोमे कहा "देखो, भाई माल्यवत! मेरी और तुम्हारी कार्य-पद्धतिमें भेद है।

और इसीलिए तुम आवेशमें आकर उतावल बन जाते हो। मेरी बात पूरी तरह सुननेका तो धीरज रखो।"

इसके पहले ही माल्यवत त्रिजटासे प्रभावित हो चुका था। वह मुंह बन्द करके एकाग्र मनसे त्रिजटाकी बात सुननेको तयार हो गया। जब त्रिजटाने अपनी बात आगे बढ़ाई मेरा आक्रमणमें विश्वास नहीं है। उसमें भी परराज्यको स्वदेशमें हिंसक क्रान्ति करनेके लिए बुलाना तो क्या परन्तु सुयोग्य शांति स्थापनाके लिए बुलाना भी अपने हाथों अपने राष्ट्रको गुलामीके पंजेमें फंसाना है। मैं तुम्हारे इस प्रस्तावसे सहमत नहीं हूं। चाहे जैसा सुयोग्य राजा हो लेकिन अगर वह विदेशी है तो जब तक हमारे राष्ट्रकी जनता मूलमें ही तालीम पाकर तयार न हो जाय तब तक वह कुछ नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, अगर स्वदेशी राज्यक्रांतिमें भी लोक मानस प्रतिकूल हो तो क्रांतिका कोई सुफल उसे नहीं मिल सकता। मनुष्य कितने मरते हैं या जीते हैं इसमें भी मुझे बहुत रस नहीं है मेरा रस तो इस बातमें है कि सच्चे मनुष्य कैसे उत्पन्न किये जायं।

माल्यवतको त्रिजटाकी बात सही लगी। वह बोला तेरी बात दूरकी तो लगती है लेकिन वह है सच्ची। जनताके निर्माणका कार्य ही महत्त्वपूर्ण है। वर्ना रावण आये विदेशी राजा आयें या हमारा आत्मीय विभीषण आये हम जडमूलसे जो क्रांति करना चाहते हैं वह नहीं हो पायगी। अच्छा हुआ कि मुझे तेरा सत्संग मिल गया नहीं तो देशहितके बहाने भी मैं लंकाका बडेसे बडा अहित कर बैठता। विद्रोहकी बात लोगोंके सामने रखकर असंतोष बढाना आसान है परन्तु एक बार जो प्रजा विद्रोहका मार्ग अपना लेती है वह बादमें सुराज्यको भी उखाड फेंकनेका षडयन्त्र रचनेमें नहीं हिचकिचाती। भयको दूर करनेके लिए भी रचनात्मक कार्यकी जरूरत होती है न कि खण्डन-कार्यकी। एक नारीके नाते तू प्रजा निर्माणका जो आधारभूत कार्य कर रही है उसके लिए मैं तुझे धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

माल्यवत विदा हो इसके पहले त्रिजटाने अपनी बातको स्पष्ट करते हुए कहा मुझमें राष्ट्रके लिए उपयोगी अभिनव दृष्टि आई

है ऐसा यदि तुम मानते हो, तो मुझे यह सत्य प्रकट कर देना चाहिये कि मुझमे जो कुछ भी है वह महादेवी जानकीकी देन है। उस महा-नारीके सत्सगसे मुझे सुराज्यके तत्त्वज्ञानसे परिचित होनेमे वडीसे वडी आत्मिक और बौद्धिक सहायता मिली है।"

इसके वाद दोनो विचार-मग्न दशामे ही एक-दूसरेसे विदा होकर अपने अपने स्थानकी ओर गये।

५८

रावणकी सभा

आज रावणने अपने मत्रि-मडलको बुलाया था। सव मत्रीगण अपने अपने आसन पर आकर वैठ गये थे। अपने सिंहासनसे उठकर रावणने सवके मुख देख लिये और पुन वह अपने सिहासन पर वैठ गया। तुरन्त उसने लकाके महाजनोको बुलानेका आदेश दिया। तथाकथित महाजन एक एक करके आने लगे। अतमे लका नगरीके नगरसेठ आये। कोतवाल, दडनायक तथा दूसरे कर्मचारी आये। शिक्षक और न्यायवादी भी आये। महारानी मदोदरी, सुलोचना और त्रिजटा जैसे नारी-प्रतिनिधि भी आये। मक्षेपमे, सपूर्ण राज्यका तथाकथित प्रतिनिधि-वल सभामे एकत्र हुआ। रावणने स्वय ही उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा "मेरे प्रजाजनो, लकाकी प्रतिष्ठाका ज्वलत प्रश्न आप लोगोके सामने मै प्रस्तुत करता हू। मुझे आशा ही नही परन्तु पूर्ण विश्वास है कि रामके साथ लडे जानेवाले युद्धका आप सब समर्थन करेंगे। आप सव जानते है कि मैंने इसके पहले ही रामकी पत्नीको पूरा पूरा मौका दिया है। रामने वहन शूर्पणखाका अपमान किया, इसका मजा तो उसे चखाना ही होगा।" दात कटकटाते हुए वह आगे वोला

"मै आप सबके साथ शपथ खाकर कहता हू कि इन हाथोसे मै राम और लक्ष्मणका वध करूगा और सीताको अपने अत पुरकी वासिनी वनाऊगा।"

तालियोंकी गड़गड़ाहटसे सभास्थल गूंज उठा। एकमात्र स्त्रीके नाते ही नहीं किन्तु सर्वसत्ताधारी राजाकी अर्धांगिनीके नाते भी मन्दोदरीके हृदय पर मानो उबलता तेल गिर गया। सुलोचनाका मुंह लज्जासे झुक गया। त्रिजटाकी भौंहें रोषसे चढ़ गईं। माल्यवनकी आंखें धरती पर गड़ गईं। ऐसे कुछ सज्जन नर-नारियोंके हृदय दुःखसे भर गये। *परन्तु रावणका विरोध करनेकी नैतिक हिम्मत कौन दिखाता?*

अंतमें विभीषणसे रहा नहीं गया। वे खड़े हुए। रावणने टेढ़ी आंखसे उनकी ओर देखा परन्तु विभीषणने इसकी परवाह नहीं की।

वे बोले — सभाजनो! आप सब जानते हैं कि मैं व्यक्तिगत रूपमें राजाका एक छोटा भाई हूं। मंत्रीके नाते मैं राज्यका एक अंग हूं और नागरिकके नाते लंकावासी प्रजाजन हूं। इस प्रश्नके उत्तर पर केवल लंकाका ही नहीं परन्तु जगतकी मानव जातिका भविष्य निर्भर करता है—ऐसा मुझे लगता है। इसलिए मैं इसे अत्यन्त गंभीर बात मानता हूं। सामान्य मानवता और अन्य कर्तव्योंके बीच कभी विरोध नहीं हो सकता। विरोधाभास अवश्य हो सकता है। इस विषयमें मुझे ऐसा विरोधाभास स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसे विरोधाभासमें *सत्य ही हमारा एकमात्र आश्रय होना चाहिये। सत्यका आश्रय* लेने पर इस सम्बन्धमें गहरा विचार करनेसे मुझे ऐसा लगा है कि हमारे लंका नरेश बहन शूर्पणखाकी गलत उत्तेजनाके शिकार बन गये हैं। बहन शूर्पणखाके साथ यदि वास्तवमें अन्याय हुआ हो तो भी अन्याय को मिटानेका उपाय न्यायवृत्ति है। लंका नरेश एक महान सतीको साधुवेश द्वारा भुलावेमें डालकर और अपने मायाजालमें फंसाकर राम लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें लंका उठा लाये हैं। मैं मानता हूं कि हमारे राजाने साधुवेश पर लोगोंकी जो श्रद्धा है उसका दुरुपयोग किया है। इसका हमें कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। जिनके चरणोंमें प्रणाम करके पवित्र होना चाहिये उन गंगाके समान पवित्र माताजीके लिए महाराजने अपने मनमें जो मैल भर रखा है उसे पौलस्त्य कुलके वंशजके नाते तो उन्हें धो ही डालना चाहिये। साथ ही उस महासतीके चरणोंमें जाकर हृदयसे क्षमा-याचना करनी चाहिये। मेरा यह स्पष्ट मत

है कि लकापतिको तुरन्त सीताजीसे क्षमा मागनी चाहिये और मान-सम्मानके साथ लकामे घुमाकर उन्हे रामके चरणोमे सौप देना चाहिये। इसमे जरा भी शका नही कि इतना करनेसे राम हमे क्षमा कर देगे।"

विभीषणके वचन सुनकर सारी सभा गभीर हो गई। कभी न सुने हुए वचन सुनकर वह शीतलताके अमृतमे डूब गई। त्रिजटा, माल्यवत, सुलोचना, मदोदरी तथा उनके जैसे अन्य अनेक नर-नारियोके हृदयोकी मूक सहानुभूति उसमे स्वभावत मिल गई। अनोखी वीरताका यह चित्र सभामे चमक उठा। लेकिन वह स्थायी न रहा। रावणका रोम रोम क्रोधसे सुलग उठा था। वह खडा हुआ। विभीषणके मुह पर लात मारकर वह बोला

"मूर्ख-शिरोमणि, और बाते तो जाने दे, लेकिन एक ज्येष्ठ भ्राताके रूपमे भी मेरे सम्मानकी तू रक्षा नही कर सका? तुझे लाखो बार धिक्कार है! नमकहराम, तू इतना तो सोच कि तेरे मुहमे किसका नमक भरा है।"

मानो कुछ हुआ ही न हो इस तरह रावणके पैरको सहलाकर विभीषण खडे हुए और बोले "राज्यके एक नागरिकके नाते अपने कर्तव्यका और ज्येष्ठ भ्राताके सम्मानका पूरा विचार करके मैंने यह बात कही है। सत्य और सदाचार हम सबके लिए आदरणीय है। जगतमे सत्यसे बडा कोई नही है। सत्य ही ईश्वर है। सत्यसे ही सारा विश्व चल रहा है। बडे भैया, मै जिस लकाका ऋणी हू, उस लकाका ऋण चुकानेका यह अमूल्य अवसर मुझे मिला है। मुझे इस सभासे यह कहने दीजिये कि लकाधीशको या आपमे से अनेक लोगोको मेरी बात आज ही समझमे नही आयेगी। फिर भी सत्य तो तीनो काल-में सत्य ही है। वैद्य होकर जो रोगीसे परहेजका पालन न कराये, वह रोगीका हितेच्छु नही बल्कि हितशत्रु है। मत्री होकर जो राज्य और प्रजा दोनोका भला न चेते, वह राज्यतत्रका बडेसे बडा घातक है। जो मनुष्य धर्मिष्ठ कहलाकर भी किसी भय या प्रलोभनके वश होकर सत्य या स्पष्ट बात कहनेका अवसर खोता है, वह सर्वनाशको निमत्रण देता है। आप सब मुझे क्षमा करे। आपमे से कोई भी मेरी बात नही मानेगे,

क्योंकि हमारे यहां खुशामदखोरी और स्वार्थीपनके सिवा दूसरा कुछ शायद ही दिखाई देता है। यहां रहकर मैं इस स्थितिका मूक साक्षी नहीं बन सकता।

इतना बोलकर तुरंत विभीषणने सभाका त्याग कर दिया। कुछ देरके लिए रावणके साथ सभाके सारे लोग निष्प्राण मूर्तियों जैसे बैठे रहे। समस्त सभा एक ही व्यक्तिके अभावमें निस्तेज बन गई। सत्यको संख्याकी परवाह नहीं होती। बेचारे माल्यवंत और त्रिजटा अंतःकरणसे विभीषणको प्रेम करते थे, परंतु वे विभीषणके साथ लंकाका त्याग नहीं कर सके। दोनों गुमसुम बनी हुई सभाके मूक साक्षी बने रहे और विभीषणके भविष्यकी चिंता करते रहे। कुछ समयके लिए तो रावण भी विचारमें पड़ गया। परन्तु जहां भीतरका उपादान कारण — मूल कारण — न हो वहां बाहरी निमित्त कितने ही बलवान क्यों न हों, उनसे कोई लाभ नहीं होता।

५९

विभीषणका लंकात्याग

विभीषणने केवल अपने ही बल पर लंका छोड़ी थी। वह कितना महान और अनायास हुआ भगीरथ त्याग था! उन्होंने घर छोड़ा, स्वजन छोड़े, जन्मभूमि छोड़ी और कुटुम्बीजन भी छोड़े। एक शब्दमें विभीषणने सर्वस्वका त्याग कर दिया। 'प्रेमपंथ पावककी ज्वाला'[1] इसीका नाम है। एक तिनकेका भी आधार मिले तब तक तैरना कैसे साधा जा सकता है? तैरना सीखनेके लिए एक बार तो डूबनेका खतरा उठाना ही होगा। संसार-सागरमें तैरना हो तो एक बार तो मनुष्यको स्वयं ही नाविक और नौका दोनों बनना होगा। इतना कहनेमें भी जब हमारी काया कांपने लगती है तब इसको व्यवहारमें उतारनेवाले विभीषणकी क्या गति हुई होगी?

1 प्रेमका मार्ग अग्निकी ज्वाला है।

विभीपणकी आखोसे आसुओकी धार वह रही थी। नगे पैरो और सादे वस्त्रोमे वे चले जा रहे थे। पीछे घूमकर वे लकाकी ओर देखते तक नही थे। लेकिन जन्मभूमिकी याद आये विना कैसे रह सकती है? 'जानकीजीका क्या होगा? वेचारे माल्यवत और त्रिजटा जेलके मेहमान वनेगे! निरकुश शासनमे मानवता-प्रिय मनुष्योके लिए जेलके सिवा दूसरा कौनसा स्थान सान्त्वनाका हो सकता है? वेचारी लका-की प्रजा रावणके अतिशय अभिमानकी शिकार वन जायगी।' ऐसे अनेक विचारोमे लीन वने विभीपण आगे वढ रहे थे। सौभाग्यसे उन्हे एक सेवाभावी नाविक मिल गया, जिसने अपनी नौकामे वैठाकर उन्हे खाडी पार करा दी। ज्यो ही विभीपण नौकासे किनारे पर उतरे, त्यो ही रामचन्द्रजीकी महासेना उन्हे दिखाई दी। वह रामकी सेना है और जानकीको रावणके पजेसे छुडानेके लिए आई है, यह जानते ही पलभरमे उनका हृदय आनन्दसे उमड पडा।

जिन रामके प्रति विभीपणका अपार आकर्षण था, जिनके दर्शन करनेके लिए वे वरसोसे तरस रहे थे, उन्ही रामसे प्रत्यक्ष मिलनेके इस प्रसगको विभीपण कैसे टाल सकते थे? रामके तम्वूके वारेमे पूछते पूछते वे आगे वढे। परन्तु सैनिक रामकी आज्ञाके विना उन्हे आगे कैसे वढने देते? विभीपणका परिचय पूछकर तुरन्त दो सैनिक रघुकुल-मणिसे पूछनेके लिए दौडे। उस वीच विभीपणको आदरसे योग्य आसन पर वैठाकर कुछ सैनिक पहरेदारके रूपमे उनके आसपास व्यवस्थित खडे हो गये। सैनिकोके आदर-सत्कार, सावधानी और विवेकपूर्ण व्यव-हारकी विभीषण पर गहरी छाप पडी। लेकिन मानव-सुलभ थोडी कमजोरी भी उनके मनमे पैठी 'हे दैव, तेरी कैसी करामात है? लका-नरेशका लघु भ्राता आज कहा और कैसी दशामे वैठा है?' उनके अन्तरसे एक गहरी सास निकली और आखे छलछला आई। लेकिन तुरन्त ही वे सचेत हो गये। 'अरे जीव, तू क्यो इतना दु ख मानता है? सुख और दु ख, मान और अपमान ये तो एक ही सिक्केके दो पहलू है। जीवनकी यात्रामे ऐसी तरगे तो आती ही है। जो इन्हे अपना स्पर्श न करने दे वही सच्चा पथिक है।'

एक ओर विभीषणके समाचार पाते ही राम प्रसन्न हो गये मानो किसी खोये हुए मित्रका पता लग गया हो। स्थूल जगतमें मनुष्य परस्पर मिलें या न मिलें एक-दूसरेका नाम भी न जानते हों तो भी क्या हुआ? सूक्ष्म जगतमें तो सजातीय आन्दोलन अगम्य रीतिसे अपना काम करते ही रहते हैं। दूसरी ओर विभीषणका नाम सुनते ही हनुमान चिन्तातुर हो गये। वे जब लंका गये थे तब एक विभीषणके महलके सामने ही आत्मीयताका आनन्द अनुभव करके लौटे थे। लेकिन विभीषण चाहे जितना पवित्र हो तो भी भाई तो आखिर रावणका ही है न? इस विचारसे हनुमानका मन उद्विग्न हो गया। सुग्रीवकी शंका पक्की हो गई। जरूर दालमें कुछ काला है। अंगद जैसा लाडला मनिक मौन कैसे रहता? वह तुरन्त रामके पास पहुँचा और उनके पाँव पकड़कर बोला — "स्वामी, आप तो भोले हैं। मनुष्यका विश्वास करनेवाले हैं। परन्तु हमें विभीषणके आगमनमें शत्रुके षड्-यन्त्रकी गन्ध आती है।"

पासमें खड़े लक्ष्मणने समर्थन किया — "हमारे शत्रु हर तरहसे नीच गिरे हुए पूरे गुण्डे हैं। मामाको हरिण बनाकर अभी कल ही उन्होंने आपको भुलावेमें डाला था। मुझे भी ठगा था और सीतामाताको भी मार्गमें भगा लिया था। ऐसी है उन राक्षसोंकी विचित्र माया! छलनेसे ही हमारे पीछे और ऋषिकुलके पीछे पड़े रहते वे अपवित्र लोग हैं। शूर्पणखा जैसी नारियोंको वे आपके समान पवित्र तपस्वीके पास

सब साथियोकी आखे आसुओसे भर गई। स्वय रामकी आखे भी गीली हो गई। लक्ष्मण तो फूट-फूटकर रोने लगे। रामने उनकी ओर देखकर कहा "नही, केवल इतना ही करके छोटे भाईके नाते मेरे साथ नही रहा जा सकता। कट्टरसे कट्टर शत्रुदलमे भी मानवता होती है। दुष्टतापूर्ण वातावरणके बीच भी कही न कही ईश्वरीय अश रहता है। अविश्वास, अविश्वास और अविश्वास! ऐसे पूर्वाग्रहसे प्रेरित वातावरणके बीच अविश्वाससे कैसे काम चलेगा? किसी भी जाति, समाज, राष्ट्र अथवा वर्गके पास सत्य या असत्यका एकाधिकार नही होता। यह बात सबको समझनी होगी। तुम वैसे तो बचपनसे सर्वस्वका त्याग करके मेरे पीछे पीछे घूमते रहे हो। लेकिन यह बात तुम्हारी समझमे नही आई। इसमे मै अपना ही मुख्य दोष देखता हू। मेरे सगका किसीको रग न लगे तो मै स्वय ही कच्चा हू, यह सत्य मुझे स्वीकार कर लेना चाहिये।"

सारा वातावरण कुछ ही देरमे बदल गया और आशापूर्ण वाणीमे रघुपति बोले "भाइयो, आपकी श्रद्धाको मै देख सकता हू। इसके पहले भी मैने उसे देखा है। लेकिन आपकी इस श्रद्धाके साथ मै बुद्धिका योग कर देना चाहता हू। पापी और पापके बीच भेद करके चलना ही हमारी सच्ची पूजी है। इसीमे हमारी और हमारे राष्ट्रकी विशेषता है। अभी तो विभीषण आये ही है। अगर यहा आनेमे उनका कोई दुष्ट हेतु होगा, तो भी उनसे निबटनेमे हमे कितनी देर लग सकती है? मेरी आकाक्षा यही है कि आप सबमे बुद्धियुक्त श्रद्धा प्रकट हो। तभी मानव-ससार स्वर्ग बन सकता है। वर्ना अविश्वास, छल-कपट, अनीति और असत्यके नरकसे मनुष्य-जाति कभी भी बाहर नही निकल सकेगी।"

सत्य सबकी समझमे आ गया, अपनी गलतियोका पश्चात्ताप भी होने लगा। अपने आसपासके वातावरणको शुद्ध कर लेनेके बाद रामचन्द्रजीने हनुमानको आज्ञा दी. "जाओ, तुम ही सम्मानके साथ भाई विभीषणको यहा ले आओ।"

देखते ही देखते विभीषण हनुमानके साथ आ पहुचे। तम्बूसे बाहर निकले रामके चरणो पर वे लोट गये। उनकी प्रत्येक क्रियामे

स्वाभाविकता दिखाई पडती थी। यह दृश्य देखकर कुछ क्षण पहले रामने जो उद्गार प्रकट किये थे उनकी यथार्थता सबके अंतःकरणको प्रत्यक्ष रूपमें स्पर्श करने लगी।

यह अनुभूत वचन कितना भव्य था — सबमें ईश्वरका अंश है। *सबका विश्वास करो। अपनेको शुद्ध बनाओ — अधिक पवित्र बनाओ* और आत्मशुद्धिके बल पर तथाकथित शत्रुके हृदयको भी हिला दो। उसके भीतरके ईश्वरीय अंशके दर्शन करनेके लिए सदा तत्पर रहो।'

*

फलाहार और जलपानकी विधि पूरी करनेके पश्चात राम और विभीषण एकान्तमें बैठे। लक्ष्मण, अंगद और दूसरे छोटे बडे साथी अन्य कार्योंमें लगे थे। भक्तराज हनुमान राम और विभीषणकी बातचीतमें कोई बाहरी बाधा न पडे, इस प्रकार सावधानीसे पहरा दे रहे थे।

विभीषण बोले — मैं और रावण दोनों सगे भाई हैं, पौलस्त्य कुलके समान वंशज हैं, तो भी हम दोनोंके स्वभाव मिलते नहीं थे। वर्षों तक यह स्थिति बनी रही। जानकीजीके अपहरणके बाद और उनके लंकामें आनेके बाद रावणका अन्याय मेरे लिए असह्य हो उठा। कितनी ही रातें मन मनोमंथनमें बिताईं। कितनी ही बार मन आंसू बहाये। रावणसे अपने मनकी बात कहूं या न कहूं यही विचार अनेक बार मनमें उठता रहा। अन्तमें मौका मिल गया। किसी अव्यक्त शक्तिने एक जोरका धक्का लगाया। मन बडे भाईके सामने भरी सभामें अपना अंतर खोलकर रख दिया। उसके फलस्वरूप मुझे लंका छोडना पडी।

कुछ क्षण रुककर विभीषण फिर कहने लगे — अपनी जन्मभूमि को छोडना अन्याय दूर करनेका स्थायी उपाय नहीं है। यह ठीक है कि कुछ परिस्थितियोंमें स्थान छोडनेका भय दिखानेसे प्रमादी हृदय द्रवित हो जाता है। जिस राज्यतंत्रका मुख्य संचालक प्रजाके साथ हार्दिक प्रेमसे ओतप्रोत हो जाता है, उसमें ऐसा उपाय कुछ परिस्थितियोंमें असरकारक सिद्ध होता है। लेकिन सामान्य परिस्थितियोंमें स्थान छोडनेकी रीति असरकारक नहीं होती। कभी कभी राज्यतंत्रके निरंकुश शासक

पर कुछ इने-गिने व्यक्तियोका नैतिक दवाव अंकुशका काम करता है। किन्तु यदि ऐसे व्यक्ति समय रहते कोई स्पष्ट वात न कहे या स्थान छोडकर अन्यत्र चले जाय, तो निरकुश शासकको मनमानी करनेकी पूरी छूट मिल जानेका भी भय रहता है। इसके फलस्वरूप राज्य और प्रजा दोनोकी हानि होती है।"

कुछ देर राघवके चेहरेकी ओर एकटक देखकर विभीषणने अपनी वात आगे वढाई "हे राघव, जहा अन्यायके मूक साक्षी वनने जैसी दशा हो उस राज्यमे कैसे रहा जाय?"

"विभीषणजी, जव राज्यकी समस्त प्रजा अन्याय सहते सहते उसकी आदी वन जाती है, तव आपने वताया वैसा होता जरूर है। परन्तु न्यायप्रिय मनुष्यसे अन्याय सहन न हो सके तव उसे प्रजाकी सोयी हुई न्यायप्रिय आत्माको जगानेके लिए अधिक असरकारक कदम उठाने चाहिये।

"वे असरकारक कदम कौनसे है?" जिज्ञासासे पूछकर विभीषण रामके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे।

राम . "जव वाणी व्यर्थ हो जाती है तव अनशनका साधन गहरा असर उत्पन्न करता है। हमारे इस महान देशमे ऐसी स्थिति खडी होने पर हमारे कुछ ऋषि-मुनियो तथा पूर्वजोने स्वेच्छासे उत्साहपूर्वक देहदान किया है। आप ऐसा न मानिये कि किसी विरले व्यक्तिके वलिदानका विशाल मानव-समूहो पर कोई असर नही होता। सख्याके वडे जोडकी अपेक्षा गुणोकी अल्प सख्या सदा ही अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई है और सिद्ध होनेवाली है।"

"आपका कथन यथार्थ है। मेरे अकेलेके लकात्यागसे ही सपूर्ण सभा पर असर पडता दिखाई दिया; परन्तु मुझे लगता है कि वह असर स्थायी नही रहा होगा। यदि वह असर स्थायी सिद्ध न हुआ हो, तो मेरे आश्रयमे और मेरी सहायतासे उन्नतिकी दिशामें आगे वढनेवाले लोगोके कार्यकी प्रगतिको रोकनेमें रावण जरा भी सकोच नही करेगा। मुझे तो अव यह भी लगने लगा है कि निर्दय रावण सीतामाताको भी अधिक कष्ट देगा। यहा न आकर मैंने लकामें ही अपना वलिदान

या होता तो अधिक अच्छा होता। मेरे बलिदानसे रावणकी आँखें खुलतीं या नहीं इसमें मुझे शंका है। परन्तु मेरे बलिदानसे लंकाके नर नर-नारियोंके मनमें मृदुता भर और उनके अन्तरका हाहाकारी कोलाहल अवश्य दूर होता। इतना कहते कहते विभीषणके मुख पर नानाविध भाव उभर आया।

रघुपति बोले — आपने सचमुच बलिदान किया होता तो आपकी। बलिदानकी उत्कट अभिलाषा और सन्तोष भरा — ये दोनों गुण इसमें लग जाते हैं। ये दोनों गुण मनुष्यमें हों और भूल-चूकसे न न हों तो भी उसका काम चल सकता है।

विभीषण — मेरा अन्तःकरण बचपनसे आपकी ओर झुकता हुआ रहता और आकर्षित रहता था। आजके इस प्रसंगसे मेरे मनकी तो मनसाध सिद्ध है। मेरी आत्मा आह्लादसे आप्लावित हो गई है। अब आपके पास रहना चाहता हूँ। मुझ पर रावणका जो ऋण है उसके ऋण चलके लिए मैं अपना गरव दूर रखकर निरंकुश सहायक रहना चाहता हूँ।

' आपको साथ रखनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इसके विपरीत आप जैसे एक और श्रेष्ठ मित्रका साथ मिलनेसे मुझे बड़ा आनन्द होगा। परन्तु आज मैं जिन परिस्थितियोंमें रहता हूँ उनमें मेरा यह कर्तव्य हो जाता है कि आपको मेरे साथ रखनेके प्रश्न पर मैं अपने साथियोंकी समति प्राप्त कर लूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह समति अवश्य ही मिल जायगी। दूसरी बात यह कि मैं अभी भी रावणके साथ हिंसक युद्धको टालनेकी आशा रखता हूँ। परन्तु मान लीजिए कि ऐसा युद्ध अनिवार्य हो जाय तो उस समय सहायक अस्त्र शस्त्र हाथमें लेकर अपने भाइयों और भतीजोंके विरुद्ध लड़नेमें आपको कितना आघात नहीं पहुँचेगा ?"

रामचन्द्रके ये वचन सुनते ही विभीषण एकाएक बोल उठे

"नहीं जरा भी आघात नहीं पहुँचेगा। आघात क्यों पहुँचना चाहिए ? मैं इस बातको भलीभाँति समझता हूँ कि सत्य और न्यायके समक्ष सारे नाते रिश्ते नगण्य हैं। सत्य और न्यायकी अग्नि-परीक्षा

कभी कभी वहुत कठिन होती है। अपने प्राणोकी आहुति देनेकी अपेक्षा अपने सगे-सम्वन्धियोके प्राण लेनेका कारण वनना जगतकी दृष्टिसे परहिंसा हो सकती है, परन्तु न्यायप्रिय और सत्यप्रिय मनुष्यको वह स्वेच्छासे किये जानेवाले प्राणत्यागकी अपेक्षा अधिक भयकर आत्म-हिसा लगती है। लेकिन जहा ऐसा करना अनिवार्य हो वहा तो उसमें सम्मिलित होना ही पडेगा।"

"लोग आपको देशद्रोही अथवा कुटुव-द्रोही कहेंगे तव?"

रामचन्द्रका यह वाक्य सुनकर विभीषण वोले · "देशहितके लिए तो मेरे जीवनका एक एक क्षण वीता है, इसलिए लोगोकी ऐसी टीकाका मुझ पर कोई प्रभाव नही पडेगा। कुटुम्व-द्रोहकी शकाका समाधान भी मुझे मिल गया है। वैसे आपके जैसे पुरुष भी कहा लोगोकी टीका-से वचे है? यह देखकर मुझे लगता है कि लोगोकी उलटी-सीधी या झूठी टीकाओसे भी सत्य-शोधकको कुछ न कुछ सीखनेको मिलता है, और श्रद्धेय व्यक्तिका आश्रय मिल जानेके पश्चात् भी अतिम वल तो मनुष्य स्वय ही होता है।"

इस प्रकार लकाकी, राजा रावणकी, लकाके राज्यतत्रकी, स्वय अपनी और अन्य कुछ लकावासियोकी व्यक्तिगत वातचीत पूरी करके दोनो उठे तव तक रामके सारे साथी तम्बूके पास आ पहुचे थे। रामने सवका स्वागत किया तथा विभीषणको उनके वीच सम्मानपूर्वक वैठाया। सवमे सहज भावसे आत्मीयता स्थापित हो गई और आगे क्या कदम उठाये जाय इसका विचार करनेमे सव एकरूप होकर लग गये।

रामचन्द्र और विभीपणकी चर्चा आगे वढी। विभीषणने कहा . "हे राघव, लकाके मानसको अथसे इति तक समझकर अतिम सारके रूपमे इतना मै आपसे कह देता हू कि राम और रावणका युद्ध त्रिकाल-मे भी किसीसे रोका नही जा सकता। और रावणकी तो आपसे क्या वात कहू? रावण जव कभी वोलता है तव गरजकर यही कहता है कि वे तापस लकामे आये कि मै उन्हे कच्चे चवा जाऊगा। आप दोनो भाइयोको वह तापसके रूपमें ही जानता है।" कहते कहते विभीपणके मुख पर निराशा और कुछ घवराहटकी रेखायें उभर आई।

लेटनेकी मुद्रामें पडे हुए रामचन्द्रका शरीर थोडा ऊँचा हो गया। आतुरतासे उन्होंने पूछा "विभीषणजी, क्या लंकाकी सारी प्रजा युद्ध चाहती है? हनुमानसे तो मुझे मालूम हुआ है कि लंकाका लोकमत युद्धके विरुद्ध है। सीताजीके अपहरणके बाद जैसी व्यथा आपको हुई, वैसी ही दूसरोंको भी हुई और होती रही है ऐसा मेरे जाननेमें आया है। आपका इस विषयमें क्या अनुभव है?"

"एक दृष्टिसे आपकी बात सच है। लंकाकी प्रजा राजा रावणके ऐसे अनेक कुकृत्योंसे पूरी तरह त्रस्त हो उठी है। फिर भी जब युद्धके विषयमें प्रजाका मत पूछा गया तब खुले रूपमें केवल मेरा ही मत युद्धके विरुद्ध रहा। और लगभग सारी ही सभाने मेरे मतकी हँसी उड़ाई। ऐसी है लंकाकी प्रजा और उसकी मनोदशा!"

"जिस राज्यमें राजाकी निरंकुश सत्ता होती है उस राज्यमें प्रजाकी यही दशा होती है"—*यह कहते कहते सुग्रीवने अपना पुराना अनुभव सुनाया। अभिनयकी वाणीमें उन्होंने यह भी सुना दिया कि* वालिकी तरह रावणका भी संहार करना होगा, दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। ऐसी बात जब कभी उठती तब वीर लक्ष्मण उसका समर्थन कर दिया करते थे। वीर अंगद भी लंका देखनेको आतुर था। रघुकुल मणि रामके मनमें विचारोंका मंथन चल रहा था बीच बीचमें वे चर्चाकी बातोंमें भी रस ले रहे थे। केवल हनुमानजी ही विशेष मौन थे। उनका रस केवल राम चरणोंकी सेवामें ही था।

देखते ही देखते संध्या बीत गई। आकाशमें रजनीनाथ चन्द्र अपनी सोलहों कलाओंसे चमकने लगे। पर्णकुटीके बाहर थोड़ी दूरके मैदानमें सैनिकगण प्रकृतिकी शोभाका रसपान कर रहे थे। कुछ सैनिक तो राम और उनके साथियोंके बीच चल रही अंतिम मंत्रणा क्या रूप लेगी इस बारेमें भविष्य-वाणी भी करने लगे थे। इतनेमें लक्ष्मणको एकाएक काला बादल दिखाई पड़ा। लक्ष्मण भला ऐसी बातको गुप्त कैसे रख पाते? वे बोल पड़े "भाई, वह बादल तो देखिये! और बिजली भी चमकने लगी।"

हसते हसते विभीपण बोले "वीर पुरुष, आपकी बात ठीक है। लेकिन घबराइये नही। वह तो बिना जलका बादल और बिना आवाजकी बिजली है। वे दोनो हमारे युद्धकार्यमे बाधा नही डाल सकते।" कुछ क्षण रुककर बातको स्पष्ट करते हुए विभीषणने आगे कहा "हम नीचे स्थान पर हैं। इसलिए ऊची दिखाई देनेवाली लका (चन्द्रबिम्ब इस ओर झुका हुआ होनेके कारण) काले बादलकी तरह मालूम होती है। और बिजलीकी तरह चमकनेवाला राजा रावणका राज-महल है।"

मत्रणा रातमे देर तक चलती रही। उसमें अधिकसे अधिक गभीरता भी आ जाती थी और हास्य-विनोदकी भी रेलपेल हो जाती थी। चर्चामे अनेक रस आते और चले जाते थे। वीररसकी प्रधानता रही, परन्तु शान्तरस भी अपनी झाकी कराये बिना नही रहता था। समय समय पर करुण रस भी उत्पन्न होता रहता था। चर्चाके अतमे सब लोग इस बात पर एकमत हो गये कि अभी भी युद्धको रोकनेका एक अतिम प्रयत्न कर लिया जाय। किसी कुशल राजदूतको रावणके पास भेजा जाय और उसे इस बातकी स्पष्ट कल्पना करा दी जाय कि जानकीजीको लौटा देनेसे ही आज तकके सारे विरोध खतम हो जायगे, यद्यपि सबको यह भी लगा कि हमारे इस प्रयत्नका अर्थ रावण तो हमारी निर्बलताके रूपमे ही करेगा। परन्तु राम सदा समझौता करनेमे विश्वास रखते थे। उनके मनमे यह बात जम गई थी कि यदि अपनी शक्तिमे हमारा विश्वास हो और सदाका ओजस्वी सिद्ध हो चुका हमारा व्यवहार हो, तो फिर हमें इस ऊहापोहमे नही पडना चाहिये कि दूसरे हमारे बारेमे निर्बलताकी कल्पना करेगे। वीर अगदको राजदूत बनाकर भेजनेका निर्णय किया गया। इसके दो कारण थे: (१) अगद किसी भी राजसभामें प्रभावशाली सधिवार्ता करनेमे कुशल थे। (२) वे वालिके पुत्र थे। उन्हे व्यक्तिगत रूपमे दो प्रकारके अनुभवोका लाभ प्राप्त हुआ था। उन्होने रामचन्द्रकी अपार नैतिक शक्तिका दर्शन किया था। साथ ही, इसके पूर्व अनेक बार रावणका सामना उनके पिताके साथ हो चुका था और उसमें रावण पराजित

हुआ था। इससे किंकर्तव्यमूढ़ बनी हुई लंकाकी प्रजा धाके तो अपने कर्तव्यके प्रति सजग बन सकती थी और रावणको रामकी अगीम शक्तिका भान हो सकता था।

६०

अंगदकी संधिवार्ता

मंदोदरी मैंने तुमसे हजार बार कहा है कि तुम्हारी पतिभक्ति सच्ची है परंतु राजकाजकी बातें तुम्हारी समझमें नहीं आ सकती। मैंने दृढ निश्चय कर लिया है कि जीते-जी मैं रामपत्नी सीताको मुक्त करनेके लिए कभी तयार नहीं होऊंगा। इसके लिए मैं और लंकाकी समस्त प्रजा युद्धकी चुनौती स्वीकार करने तथा बड़से बड़ संकट उठानेको तयार हैं। एक विभीषणके लंका छोड़कर चले जानेसे या तुम्हारे जैसी एक भोली नारीके नाराज होनेसे क्या मैं राज्यके स्वीकृत निर्णयोंको छोड़ दूं? नहीं, नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता।'

इतना कहते कहते रावणने दांत कटकटा कर अपना एक पैर जमीनसे उठाकर फिर जमीन पर जोरसे पछाड़ा। उसके भीषण प्रहारसे सारी धरती कांप उठी। फिर भी मंदोदरी भयभीत नहीं हुई। वह बोली

लंकाके राज्यतंत्रमें यदि स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रजाजन माने जाते हों तो हम स्त्रियोंकी यह आवाज स्पष्ट है कि लंकाकी नारियां रामपत्नी सीताजीके समान एक आदर्श सन्नारीका अपहरण अपमान और कष्ट नहीं देख सकतीं। बेशक आज हमारी आवाज रुंध गई है। ऐसे दुष्कृत्योंके प्रति मनमें चिढ़ रहते हुए भी हम उसे व्यवस्थित और सामुदायिक रूपमें प्रकट नहीं कर सकतीं। यह मानसिक गुलामी हमारी जातिके लिए लज्जाकी बात है। परन्तु क्या करें? आजकी आज यह शक्ति हममें उत्पन्न नहीं हो सकती। इसीलिए आपकी अर्द्धांगिनीके रूपमें मेरा दावा लंकाके एक प्रमुख शासकके

रूपमे राजा रावणके सामने नम्रतासे प्रस्तुत करके मै सन्तोप कर लेती हू। आप यदि व्यवस्थित राज्य-सविधानमे विश्वास रखते हो, तो मेरा यह दावा आपको सुनना चाहिये। मै गदी राजनीतिकी वाते भले न समझ सकू, सभव है मैं अपने भोलेपनके कारण ऐसी राजनीतिका खिलौना भी वन जाऊ। परन्तु ऐसे दाव-पेच या छल-कपटका शिकार वननेमे मुझे हीनताका अनुभव नही होता; हीनताका अनुभव मुझे इस वातसे होता है कि लकाके राजाकी पटरानी मानी जाने पर भी मै इतनी सीधी-सादी वात भी आपके गले नही उतार सकती। मेरा अपने ईश्वरसे वार वार यह पूछनेका मन होता है कि क्या इस जगतसे सत्यका सर्वथा लोप हो गया है? परन्तु नही, मेरा अन्त करण इस वातको स्वीकार नही करता कि सत्यका इस जगतसे सर्वथा लोप हो गया है। तो फिर प्रश्न यह उठता है कि विनय और नम्रताको त्यागकर भी सत्य वात आपको क्यो न सुनाई जाय? महाराज, मुझे क्षमा कीजिये। मुझे आपकी राजनीति प्रजाके अधीन नही लगती, आपको सूझनेवाले सत्यके अधीन भी नही मालूम होती, आपकी यह राजनीति मुझे केवल आपके वासना-शरीरमे भडके हुए शैतानके अधीन वनी मालूम होती है। महापुरुषोके कथनानुसार आज आपके जीवनमे 'विनाश-काले विपरीत-वुद्धि.' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है। आप याद रखें कि काल (मृत्यु) किसीको हाथमे लकडी लेकर नही मारता। सिद्धान्तके पालनके लिए जो नर या नारी कालका ग्रास वनती है, वह महा भाग्यशाली है। परन्तु आप आज मिथ्याभिमान और अवमसे अवम वासनाके दास वनकर कालके मुखमे अपनी आहुति देनेको तत्पर हुए हैं। हे स्वामी, हे नाथ, आपकी पत्नीके नाते आपके इस कार्यसे मुझे अपार दु ख होता है। लकाकी एक नागरिक होनेके नाते मुझे वडा क्रोध आता है, परन्तु राजाकी पटरानीके नाते तो गहरा आघात ही लगता है। इस दावानलकी साक्षी वनानेकी अपेक्षा भगवान मेरे प्राण ले ले तो वड़ा अच्छा हो।"

महारानी मंदोदरीके एक एक वचनसे हृदयकी आग और व्यथा टपकती थी। परन्तु इसका भी रावणके हृदय पर कोई प्रभाव नही

पडा। इसके विपरीत उसके राम रामग नापकी ज्वालायें फूटने लगी। उसकी मुख राक्षसी मुद्राकी पराकाष्ठाको पहुच गया। इतनमें एक राज सेवक महलमें आया और राजा रावणको प्रणाम करके बोला लकाधिराज पधारिये विलम्ब न कीजिये। रामका कोई दूत हमारी राजधानीमें आ पहुचा है। वह आपसे मिलना चाहता है। किसी भी प्रकार युद्धको टालनेकी रामकी आतुरता वह आपके सामने प्रकट करना चाहता है।

सवककी वात सुनकर रावणने अट्टहास किया मानो मन्दोदरीकी बातोका उपहास कर रहा हो। सेवकसे कहा जा रामके उस दूतको बठा। म अभी आता हू। वह तापस राम यद्धसे डरता है और सीताको वापस लेनेके लिए दौडा आया है! आ हा हा मूर्खोंका शिरोमणि!'

मदाधताकी उन्मत्त वाणी मुहसे निकालते निकालते रावण सभा गारमें घुस गया। एसे अवसर पर उसे मदिरा और वारागनाके नृत्य के सिवा और सूझ भी क्या सकता था?

*

अगदने जसे ही रावणकी सभामें प्रवेश किया वसे ही सारी सभा खडी हो गई। पता नही किस कारणसे परन्तु रावणसे भी सिंहासन पर बठा नही गया। एक क्षणके लिए उठकर वह तुरत बठ गया यद्यपि बठनके साथ ही उसे लगा कि बहुत बुरा हुआ। शत्रुके इस छोटसे दूतको मेरी सभाने इतना महत्व क्यो दिया? म स्वय भी एकाएक कसे खडा हो गया? उसे इसका पता ही नहा चला कि उसका घोर अहकार इस क्रियामें गलकर कहा बह गया! इसीलिए कविने कहा है '*क्रियासिद्धि सत्त्वे भवति महता नोपकरणे*।

अगदका यह स्वाभाविक प्रभाव रावणसे सहा नही गया। उसका मन आवेशसे भर गया। अगद रावणकी इन सारी चेष्टाओको मुस कराते हुए देखते रहे। वे बोले लकाराज सबसे पहले तो म आपसे थोडी व्यक्तिगत बात करना चाहता हू। आप मुझ एकान्तमें बात करनेका अवसर देंगे तो म आपका बडा कृतज्ञ हूगा।' अहकारी रावणने कहा

"आप राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाली बाते करने आये है, इसलिए मै चाहता हू कि उस विषयमे जो व्यक्तिगत बात मुझसे करनी हो वह भी आप भरी सभामे ही कहें। फिर भी यदि आप मेरे साथ एकान्तमे बात करना चाहे, तो मै एकान्तमे वार्ता करूगा। लेकिन मै चाहता हू कि बातचीतके समय मेरे मामा मारीच भी मेरे साथ रहे।"

"आप यदि चाहते हू कि सभाके सामने ही मै अपनी बात कहू, तो मुझे इसमे कोई आपत्ति नही है।" ऐसा कहकर अगदने अपनी सधिवार्ता आरभ की।

"महाराज, क्या आप यह स्वीकार करते है कि आपने सीताजीका हरण किया है?"

"हा, हा, मैने सीताका हरण किया है। आपको इस बारेमे क्या कहना है?" इस प्रकार बोलते बोलते रावणका क्रोध भडक उठा।

अगद शातिसे बोले· "लकानरेश, शात रहिये, शात रहिये। मै आपके एक मित्रके नाते आपसे विनती करने आया हू। आप पवित्र पौलस्त्य कुलके वशज है। ब्रह्मा और महादेवके आप परम भक्त है। भक्तिके लिए आप अपने मस्तक काटकर शकरके चरणोमे रखते भी नही हिचकिचाये। इन्द्रको भी आपने अपने तपसे वशमे कर लिया है। आप इतने महान है। फिर भी आपने सीताजीके समान जगद्वन्द्य माताका अपहरण करनेका मार्ग अपनाया और वह भी साधुके वेशमे आपने उन्हे धोखा दिया! मुझे लगा है कि मामा मारीच और (उनके भानजे) आप दोनो ही अपना मार्ग भूल गये है। अभी भी बाजी आपके हाथमे है। रघुकुल-भूषण राम अत्यन्त उदार है। वे पतितोका उद्धार करनेवाले है। पथ भूले हुओके पथ-प्रदर्शक है। यदि आप जानकीजीको स्वाभिमान और सम्मानपूर्वक उन्हे सौप दे, तो वे क्षमा करनेको तैयार है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि स्वय अपने कल्याणके लिए भी आप यह सच्चा मार्ग ग्रहण करे।"

रावणसे सहा न गया। सिंहासनसे खडे होकर उसने पृथ्वी पर जोरसे पैर पटका। सारी पृथ्वी डोल उठी। सभामे घबराहट मच गई। रावण गरजा "वन्दर जैसे मर्ख लोग दूत बनकर चले आये है और

मरे उपदनक बन रह ह। सभामें म आवाज उठी आप्ता दीजिय, महाराज! भरी सभामें आपका अपमान करनेवालेको हम जीभ गाच लेंग। सभाजनोंके य शब्द सुनकर रावण प्रसन्न हो गया। मूछा पर ताव देकर उसन कहा 'नहीं सभाजनो ऐसा भी हो, यह दूत बनकर आया है। दूतका दण्ड देनम हमारे राजतन्त्रकी निन्दा होगी उसकी प्रतिष्ठाको कलक लगेगा।'

अब बार अगद बाल उठे वाह महाराज धोखा देकर जग दम्बाको उठा लानेमें जिस राज्यतन्त्रकी प्रतिष्ठाको कलक नहीं लगा वह एक दूतको दण्ड देनेमें लज्जित हो यह सबथा असगत बात है। राजा रावण आप राजतन्त्रके नाम पर अथवा राजनीतिके नाम पर रकारी भोली भाली प्रजाको भुलावमें डालनेका दभ छोड दीजिय। म इस सभाको चुनौती देता हू कि मुझ तो क्या लेकिन मेरे इस पैरको भी यदि कोई यहाँसे डिगा द तो म जीवन भर उसका दास बनकर रहूगा। मेर सामने दूतका नाम लेकर कोई बलवान योद्धा अपनी वीरताको न छिपावे!

अगदकी इस चुनौतीसे सारा सभा स्तब्ध हो गई। कुछ क्षण पश्चात् एकमात्र इन्द्रजित मेघनाद अवश्य खडा हुआ। परन्तु जब ही वह अगदके पास आया उनके छोटे पहाडके समान पावको देखकर वह काप उठा। दूसरोकी तो कोई बिसात ही नहीं थी। रावण भी रामके दूतकी ऐसी शक्तिको देखकर आश्चयचकित हो गया। उसन अगदसे पूछा आपका नाम क्या है?'

मेरा नाम अगद है। म बालिका पुत्र हू और रामके चरणामें समर्पित हो चुका हू।

अगदके परिचयमें बालिका नाम सुनते ही रावण काप उठा। वह बोल पडा क्या आप सचमुच बालिके पुत्र ह? बालिजी कहा ह?"

मेरे पिताजी रामचन्द्रके पवित्र हाथोसे रणमें मारे गये ह। मरते मरत वे मुझे रामके चरणामें सौंप गये ह। अवसर देखकर अगदने आग कहा और इन दोनो अधिकारोंके आधार पर म सधिवार्ता करनेवाले दूतके रूपमें आपके समक्ष उपस्थित हुआ हू।'

लकाके नागरिकोको हनुमानजीकी शक्तिका परिचय मिल चुका था। वालिपुत्रकी वात सुनकर लकामे खलवली मच गई। सव मनमे कह रहे थे कि अव जल्दीसे जल्दी लकाका राजा अपनी गलती सुधार ले तो वहुत अच्छा। परन्तु कठोर और स्पष्ट सत्यको सुननेके लिए कोई तैयार नही था।

डरते डरते भी उद्धत रावणने कहा "आप रामके दूत वनकर सधिवार्ता करने आये यह तो ठीक है। परन्तु रामपत्नीको लौटानेकी वातको छोडकर दूसरी कोई वात करनी हो तो आप कीजिये। दूसरा सव-कुछ करनेको मै तैयार हू। मेरा सिर यदि चाहिये तो सिर भी मै दे दूगा।"

"वस कीजिये, राजन्! अव मेरी सहन-शक्तिकी सीमा आ गई है। जगज्जननीको शठतासे उठा लाने पर भी आपको दु ख नही होता, दु ख प्रगट करनेके वदले आप सीताजीके अपहरणको गौरवकी वस्तु समझ रहे है। है न ऐसा ही? और वर्तमान जगतके सर्वश्रेष्ठ वीर रामचन्द्रकी अपार उदारताका आदर करना तो दूर रहा, आपको अभी भी उनका मजाक सूझता है। जिस सधिवार्तामे जानकीजीको सम्मानके साथ लौटानेकी वातका स्थान नही है, वह वार्ता निस्सार है। अव मै यह समझ गया हू कि आप युद्धके लिए वहुत उत्सुक है। तो आप अपनी यह उत्सुकता पूरी कर सकते है। लेकिन युद्ध न चाहनेवाली आपकी इस वेचारी प्रजाका क्या होगा? खैर, जो प्रजा आपके जैसे सर्वसत्ताधारियोके विरुद्ध सिर न उठा सके, उस प्रजाको ऐसी शक्ति प्राप्त करने तक इस तरहकी मुसीवते भोगनी ही पडेगी। अच्छा तो प्रणाम। मै अव जाता हू। मुझे दु ख है कि आपका और मेरा इतना समय व्यर्थ नष्ट हुआ। फिर भी इतना सन्तोप मुझे जरूर है कि भावी जगत यह वात नही कह सकेगा कि रामचन्द्रजीने राजा रावणको समझकर अपनी गलती सुधारनेका अवसर नही दिया। और यदि इतनी वात भी भविष्यकी पीढियोके ध्यानमें रहे, तो मुझे, मेरे साथियोको तथा परम पूज्य राघवको पूरा सन्तोप होगा।"

लेकर भले न मारे, परन्तु जब मनुष्यका धर्म, बल बुद्धि और विचार भ्रष्ट हो जाय तब समझ लेना चाहिये कि कालका प्रहार होनेवाला है। आपके बारेमें भी मुझे यह स्पष्ट दिखाई देने लगा है। वर्ना सूयक प्रकाशका तरह स्पष्ट बातमें आप उलटा रुख किसलिए अपनाते? परमात्मासे मेरी अतिम प्रार्थना है कि हे भगवान, हम सब भल हा नष्ट हो जाय परन्तु मृत्युके समय भी मेरे पतिदेवकी इतनी सहायता तू अवश्य करना कि ये अत-समयमें तेरा नाम लेकर प्राण छोडें।'

इतना कहनेके बाद मन्दोदरी चुप हो गई। उसका दोनों आखें आसुओसे छलक रही थी। उसके आसू पोछनवाले कर-कमल रावणसे कह रहे थे 'जाग जाग नर जाग रे!

६५

तीन भाई

आखें मलते बड भाई कुभकर्णके पास पहुचकर रावण बोला बड भया आप जानते ह कि लकाके आसपास महायुद्धके नगाडे बज रहे ह?'

रावण तुम जानते हो कि मेरा स्वभाव ही कुछ एसा है कि भय और कामवासना पर मेरा जितना नियत्रण है उतना आहार और निद्रा पर नही है। मेरी जठराग्नि सदा तेज रहती है और मस्तिष्क सदा जड बना रहता है। मेरी नींद इन नगाडोके कारण ही बिगडी है। कहो किसके विरुद्ध और किस कारणसे यह महायुद्ध लडा जा रहा है?

भया यह महायुद्ध हमारी रक्षाके लिए हमारी प्रतिष्ठाके लिए लडा जा रहा है। जिस जनक-पुत्रीको म मिथिलामें नहा पा सका उसे मामा मारीचकी सहायतासे म दण्डकारण्यसे यहा ले आया हू। एक शिवभक्तके नाते मेरा कमसे कम सकल्प यह है कि सीताकी इच्छाके बिना उसक एक भी अगको म वासनावश होकर स्पश नहा करूगा। भय और प्रलोभन दानोंसे परे रहनवाली उस सन्नारीको और मेरा

आदर भी अवश्य वढता जा रहा है। परन्तु लकामे उठा लानेके वाद उसे मेरे जीवित रहते वैसे ही रामको सौप दू, तो हमारे समस्त कुलकी प्रतिष्ठा धूलमे न मिल जाय? टेक रखनेमे भले ही सिर कट जाय, परन्तु टेक चली जानेके वाद तो इस जगतमे जीना व्यर्थ है। कहो भैया, आपका क्या कहना है?"

"भाई रावण, टेककी कीमत तो मै समझता हू। परन्तु नीति-विहीन टेक सच्चे अर्थमे टेक मानी जा सकती है या नही, इस वारेमें मुझे शका है। मुझे लगता है कि मिथिलाकी राम-विजय नीतिकी विजय थी। अलवत्ता, उन्ही रघुपति रामकी उपस्थितिमें वहन शूर्पणखाके नाक-कान काटे गये थे, इसका मुझे वहुत दुख है। परन्तु उस कारणसे सीता जैसी महान सतीका अपहरण करना पौलस्त्य कुलके लिए उचित नही है। अनुचित कारणसे सारी लकाको हानि उठानी पडे, ऐसा महायुद्ध करनेका लकापतिके नाते तुम्हे अधिकार है?"

कुभकर्णके ये वचन सुनकर रावणकी आखे क्रोधसे लाल हो गई। उसका मन दुखसे भर गया। शरीर कापने लगा। क्षणभरमे शोककी घनी छाया उसके सारे शरीर पर छा गई।

यह देखकर कुभकर्ण सहानुभूतिसे वोला

"मुझे जो लगा वह मैने तुमसे कहा। परन्तु यदि यह युद्ध अव निश्चित ही हो गया हो, तो सगे भाईके नाते मै सच्चे हृदयसे तुम्हारा साथ दूगा।" इतना कहकर उसने रावणकी पीठ थपथपाई और रावणके शरीरमे उत्साहकी लहर दौड गई।

उसी समय रामकी आज्ञा लेकर विभीषण कुभकर्ण-निवासमे आये। उन्हे देखते ही रावण वहांसे चलने लगा। विभीपणने तुरन्त रावणके पैर पकड लिये और उनसे चिपट गये। कैसी उत्कट भातृ-भक्ति! परन्तु मदांध रावणने तीखी कडवी नजरसे उन्हे देखा और जोरसे पैर उठाकर चलने लगा। विभीषण खडे हो गये। कुछ कदम चलकर अपने सुदृढ, महाकाय ज्येष्ठ भ्राता कुभकर्णकी गोदमे उन्होने अपना मस्तक छिपा लिया। विभीपणके सिर पर हाथ फेरते हुए कुभकर्णने आशीर्वाद दिया और कहा

भाइ विभीषण, तुम बड़े भाग्यशाली हो कि तुम्हें न्याय और नीतिके महासागरके समान रामचन्द्रकी शरण प्राप्त हुई। अहा, राम कैसे उदार महामानव हैं! उन्होंने अपने शत्रुके भाईको भी विश्वासपूर्वक अपना लिया!'

बड़े भैया अवधेश रामकी प्रशंसा शब्दोंमें नहीं हो सकती। उनके साथ मेरा सहवास जितना बढ़ता जाता है उतना ही अधिक मुझे यह विश्वास होता जाता है कि वे मानव-देहमें एक महाप्रभुके समान सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। यह महायुद्ध आरंभ हो उसके पहले उन्होंने स्वयं मुझे आप दोनों भाइयोंके आशीर्वाद पानेके लिए प्रोत्साहित किया। बड़े भैया, अब मुझे परेशान करनेवाला एक प्रश्न आपके सामने रख दूँ। लंका-नरेश रावण और आप दोनोंके विरुद्ध छोटे भाईके नाते मेरे लड़नेमें धर्मभंग — कर्तव्यका भंग — होता है या नहीं? भ्रातृ कर्तव्य बड़ा है या समाज-कर्तव्य? इसमें थोड़ी भी शंका नहीं कि भाई रावणका त्याग मेरा सामान्य दृष्टिसे देखने पर भी नीतिके विरुद्ध जरूर है। आप क्या मानते हैं? आपका क्या आदेश है?

भाई विभीषण, धर्म अधर्मका गहरा तत्त्वज्ञान तो श्रीराम जैसे महापुरुष ही समझ सकते हैं। मुझमें यह शक्ति नहीं है। अपनी अल्प बुद्धिसे मैं थोड़ा-बहुत जो कुछ समझ सकता हूँ उसमें मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम सच्चे मार्ग पर हो। रामके नैतिक पक्षमें जाकर तुमने हमारे पौलस्त्य कुलका नाम उज्ज्वल कर लिया है। मैं तो रावणके भ्रातृ-सम्बन्धमें बँध गया हूँ, जब कि तुम उस बन्धनसे मुक्त हो गये हो। यह तुम्हारे पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंका फल है। मैं तुम्हें हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ। तुम निश्चिन्त होकर जाओ। बहुत बार सत्यके खातिर अपने सगे-सम्बन्धियोंका ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है — इतना ही नहीं, समय आने पर उनसे लड़ना भी पड़ता है।

कुम्भकर्ण जैसे अनीतिवादीसे नीतिकी इतनी सुन्दर बातें सुननेकी आशा विभीषणको नहीं थी। उनके मनको सच्ची शान्ति हो गया। वे रामके पास गये और उन्हें अपने दोनों बड़े भाइयोंसे स्वयं परिचित कराया।

६६

युद्धका आरम्भ

१

'धर्मवीर रामचन्द्रजीकी जय! वालिवन्धु सुग्रीवराजकी जय!' —इस प्रकार जयघोष करता करता रामका महासैन्य लकागढके पासके मैदानमे जमा होने लगा। अहा! कैसी अपार और कितनी असख्य सेना थी श्रीरामकी?

अपने प्रियपुत्र मेघनादको एकान्तमे बुलाकर रावणने कहा

"आज हमे अपने एक भी सैनिकको दुर्गसे वाहर नही जाने देना है। लकागढके सभी द्वार वन्द करा दो। प्रजामे ढिंढोरा पिटवा दो कि प्रत्येक घरसे वडी उमरके सारे नर-नारी वाहर निकले और दुर्गकी दीवारके पास छिप जाय। ज्यो ही रामकी सेना दुर्गको घेरनेका प्रयत्न करे त्यो ही भेरी, ढोल और रणसिंघा दुर्गके वाहर वजाये जाय। इससे रामकी सेना यह समझेगी कि रावणकी सेना दुर्गके वाहर निकल आई है और रामके सारे सेनापति लडनेके लिए वाहरकी ओर दौडने लगेंगे। इस मौकेसे लाभ उठाकर हमारे प्रजाजन वडी वडी शिलायें गिराने लगे। इससे शस्त्रो और सेना दोनोका वचाव होगा और रामकी सेनाके व्यूह टूट जायगे। रामकी सेना विखर जायगी। इतने समयमे यदि रामकी सेनाके मुख्य-मुख्य सेनापति मार डाले जाय, तव तो राम पर विजय प्राप्त करना वहुत सरल हो जायगा।"

छल-कपट सदा उसका सहारा लेनेवालेको ही मारता है। रावणका यह कपट हनुमानसे गुप्त नही रह सका। उन्होने अगदको समय पर सावधान कर दिया "मै रामकी आज्ञा लेकर अकेला ही लकामे घुस जाता हू। इसलिए भीतरका मै सव कुछ देख लूगा और माता जानकीजीको निश्चिन्त रहनेका सन्देशा भी पहुचा दूगा। क्योकि यदि मै ऐसा न करू तो रामके विषयमे झूठी अफवाहे लंकामें वहुत

लेंगी जो सीताजीको चिन्तामें डाल देंगी। अंगदजी आप तो किसी सोचविचाहटके बिना दुर्ग पर चढ जाइये। दुर्गकी दीवालके पास बहुतसे लोग छिपे हैं, लेकिन आपको देखते ही या तो वे भाग जायंगे या आपके हाथों मारे जायंगे।

दोनों सेनापति रामकी आज्ञा लेकर अपने अपने काममें लग गये। दूसरी ओर रामकी बाकी सारी सेना दुर्गसे बहुत दूर मैदानमें सावधान खडी हो गई। लंकामें हनुमानको फिरसे आया देखकर 'यह फिर कहीं लंकामें आग न लगा दे' इस भयसे सब लोग भागकर घरोंमें घुस गये। एक ओर अंगदने और दूसरी ओर हनुमानने देखते ही देखते मानो सारी लंका पर अधिकार कर लिया। सैनिकोंमें से कोई बाहर भाग तो कोई घरमें घुस गये। इससे युद्धकी व्यवस्था टूट गई। रावणके काफी सैनिक युद्धमें मारे गये और लंकाकी सेनामें हाहाकार मच गया। रावण और मेघनाद — दोनों पिता-पुत्र अपने छल-कपटको इस तरह घोर असफलतामें परिणत हुआ देखकर बडी चिन्ता और निराशामें पड गये। युद्धके आरंभमें ही भयंकर अमंगलके चिह्न दिखाई देने लगे।

२

प्रथम दिवसके युद्धकी सारी कारवाई अंगद और हनुमानने आकर रामके सामने कह सुनाई। विभीषण रामके पास ही बैठे थे। वे बोले युद्धके आरम्भमें ही प्राप्त हुई यह महाविजय हमारे पक्षके अनेक सैनिकोंमें गर्व उत्पन्न किये बिना नहीं रहेगा। रघुकुलमणि रामचन्द्र तो योगिराज हैं, इसलिए उनसे भला मैं क्या कहूं? परन्तु सुग्रीवराज और अन्य लोगोंसे मैं अवश्य प्रार्थना करूंगा कि आप लोग इस युद्धमें अत्यन्त सावधान रहिये।

सब लोग ध्यानपूर्वक भक्त विभीषणके आत्मसंयमी उद्गार सुन रहे थे। उसी समय एक दूत आज्ञा लेकर अन्दर आया। आते ही उसने कहा — प्रभु स्वयं राक्षस और उसका पुत्र इन्द्रजित एक अलक्षित यज्ञकी रचना कर रहे हैं। इस एक-दो दिनमें ही अपने वीर सैनिकोंको वहांसे दूर हटाना है तो टाल दो।

दूतकी वात सुनकर अगदसे रहा न गया। वे बोल उठे "मैं अपने पिताके समयसे राजाधिराज रावणको नखसे शिख तक जानता हू। उनके पास शारीरिक और वैज्ञानिक दोनो शक्तिया है, परन्तु उनकी मानसिक शक्ति बहुत मन्द है। इस कारणसे वे सकटके समय शिथिल पडे विना नही रहते। इस युद्धमे भी ऐसा ही होगा। इसलिए कोई जरा भी घबराहटमे न पडे।"

लक्ष्मणने इसका समर्थन करते हुए कहा "कुमार अगदजीका कहना विलकुल सच है।"

विभीषण बोले "वात तो सच है। परन्तु इसका मूल कारण नैतिक दुर्वलता ही है। मेरे वडे भाई राजा रावण मिथ्याभिमानके कारण नैतिक दुर्वलताके शिकार हो गये हैं। अव तो उनका मिथ्याभिमान इस सीमा तक पहुंच गया है कि इस जन्ममें वे उससे शायद ही मुक्त हो सकेंगे। सच बात यह है कि उनके पास भगवानकी दृष्टिसे तो लक्ष्य है, परन्तु गुरुकी दृष्टिसे उनके पास कोई लक्ष्य नही है। मनुष्य चाहे तो स्वयको ही अपना गुरु मान सकता है, परन्तु ऐसे मनुष्यको सतत अपनी कडी टीका करते रहना चाहिये। इसके अभावमे जगतका महानसे महान मानव भी अन्ततोगत्वा सव ओरसे हार ही जाता है। वैसे इस युद्धमें मुझे राजा रावणका तथा मेरे वडे भाई कुभकर्णका भी भय नही है, क्योंकि इन दोनोंने अपनी आत्माको स्थूल सम्वन्धोके सामने गौण स्थान दे रखा है। इस युद्धमे सवसे ज्यादा भय मुझे इन्द्रजितका है। *उसके पास प्रभुभक्ति, गुरुभक्ति और तत्त्वभक्ति तीनो है।*"

इन्द्रजितका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुननेकी सबकी जिज्ञासाको देखकर विभीषणने आगे कहा "मेघनादका नाम तो आप सव जानते ही है। वह मेरा भतीजा और लकापति रावणका पुत्र है। अपनी तपस्या और त्यागके द्वारा एक समय उसने इन्द्रको भी पराजित कर दिया था, इस कारण उसका नाम इन्द्रजितके रूपमें प्रसिद्ध हुआ।" इस प्रकार कहते कहते विभीषणने इन्द्रजितकी वीरता, तपस्या तथा पत्नीभक्तिकी भी अनेक वाते सुना डाली।

सभी मदोदरीके नामसे तो सारे साथी परिचित थे ही। परन्तु आज इन्द्रजितकी कथासे वे सती सुलोचनाके नामसे भी परिचित हुए। राक्षसाम भी ऐसी महान सन्नारिया समाजको सुशोभित करती है, यह जानकर बहुरत्ना वसुधरा जैसे वचनकी सार्थकता सबकी समझमें आई और उनके हृदय हर्षसे नाच उठे।

मेघनाद यदि इतना पवित्र है, तो वह सीताजीको लौटा देनेकी सूर्यके प्रकाशकी तरह स्पष्ट बात अपने पिताको क्यो नही समझा सकता ?' जाम्बवतका यह प्रश्न सुनकर विभीषणकी वाग्धारा फिरसे बहने लगी

'वीर जाम्बवन्तजी आपका प्रश्न वास्तवमें बडा सामयिक और मौलिक है। मनुष्यकी जीवन-लीला एक अर्थमें आघातो और प्रत्याघातो के योग जैसी ही है। प्रकृतिकी लीला इसीलिए तो किसीकी समझमें नही आती। इन्द्रको जीतते समय तो मेघनादकी तपस्या और त्याग चरम सीमाको पहुच गये थे। इससे मेघनाद इन्द्रिय जितसे आगे बढकर इन्द्रजित बन गया। परन्तु इन्द्रको जीतनेके बाद उसने लावण्य-पुज इन्द्रपत्नी पर कुदृष्टि डाली और मुग्धता उत्पन्न होनेके साथ ही मेघनादमें मदाधता भी उत्पन्न हुई। इसके फलस्वरूप एक ओर उसने इन्द्रको लकामें लाकर कारावासमें डाल दिया और दूसरी ओर लकाकी छोटासी राज्यसभामें बन्धनमें बधे इन्द्रकी उपस्थितिमें इन्द्राणीका अशोभनीय अपमान भी कराया। रावणने तो पुत्रकी इस निर्लज्जताकी प्रशसा ही की परतु वह प्रसग लकाके इतिहासका एक करुण पृष्ठ बन गया है। निश्चित ही सीताके अपहरणको मेघनादने उचित नही माना और आज भी वह उसे उचित नही मानता। परतु उपरोक्त अपकृत्यके पश्चात मेघनादका तेज नष्ट हो गया है। अब आप ही कहिये कि मेघनाद अपने पिताको यह बात कैसे समझा सकता है कि सीताजीको लौटा दिया जाय ? और इस प्रयत्नमें उसे सफलता कैसे मिल सकती है ?'

रामचन्द्रजीको जिस प्रश्नका हल अभी तक मिल नहीं रहा था वह विभीषणकी यह बात सुनकर उन्हे मिल गया। मेघनादसे कौन योद्धा लड सकेगा और इसके लिए कितने समय तक प्रतीक्षा करनी

पडेगी, इन प्रश्नोका उत्तर भी रामको तुरन्त मिल गया। किसी महामानवको छोटी छोटी बातोसे भी जिस रहस्यका क्षणभरमे पता चल जाता है, उस रहस्यको जाननेके लिए सामान्य जनोको अनेक जन्म बिता देने पडते हैं। क्योकि महापुरुष छोटीसे छोटी प्रक्रियाकी तुलना भी सैद्धान्तिक मूल्योके साथ करके ही आगे बढते है, जब कि सामान्य मानव निमित्तोके सिर पर ही दोषारोपण करके रोते और भटकते रहते हैं। भवमुक्ति और भव-भ्रमणके बीचका भेद जो लोग जान सकते हैं, उन्हे किसी क्रियाकी अपेक्षा उसके पीछेके आशयकी महत्ता आसानीसे समझमे आ सकती है।

६७

मेघनादका पराक्रम

"प्रिये, सुलोचना! मै जानता हूं कि तुममे नारी-जातिकी जो ममता लहरा रही है, उसके कारण सीताजीकी ओर तुम्हारा विशेष पक्षपात है, और रामके प्रति भी तुम्हारे मनमें आदरका भाव है। फिर भी तुम मेरी अर्द्धागिनी हो, इसलिए मैं तुमसे एक भिक्षा मागने आया हू। तुममे सतीत्वका जो महान गुण है, तुम्हारे भीतर सतीत्वके तपका जो तेज है, उसे तुम अपने अन्तरकी शुभेच्छासे मुझ पर बरसा दो, जिससे रामको पराजित करके मैं पितृभक्तिके ऋणसे उऋण हो सकू।"

इस तरह बोलते बोलते मेघनाद गद्गद हो गया। उसकी आखोसे आसुओकी दो-चार बूदे चू पडी। पतिका यह करुण दृश्य देखकर सती सुलोचनाकी आखें भी सजल हो आई। परन्तु धैर्यके साथ सत्य भगवानका स्मरण करके वह बोली

"प्राणनाथ, हम जैसी नारियोके लिए अपने पतिके सिवा दूसरा शायद ही कोई उपास्य होता है। परन्तु स्वामिन्, स्त्रीका 'हृदय जिस प्रकार पानीकी तरह तरल होता है, उसी तरह पतिसे एकनिष्ठाकी उसकी आशा भी अत्यन्त तीव्र होती है। इस कठिन प्रसग पर

ा बात आपसे कह रही हू, उस आप कही ताना या उलाहना न न लेना। क्योकि मुझ विवश होकर अपने हिमरूप बने हुए हृदयको लानके लिए इतना कहना पडता है। द्रौपदीका खुला राज्यसभामें वीभत्स अपमान किया गया था, उसके दृश्यको म किसी भी तरह नहा पाती।

अपने इन शब्दोंके कारण पतिके लज्जित बने हुए मुखको देख सुलोचना बोली आपके अतरका इतना पश्चात्ताप मेरे हृदयको तोष देनेके लिए पर्याप्त है। बिना सोचे विचारे मुझसे अविनय हो हो तो मुझे क्षमा करना स्वामी ! अब जानकीके विषयमें अपनी स्पष्ट कर दू। नारीके प्रति नारीका पक्षपात हो इसमें कोई स्वाभाविकता नही है। परन्तु स्वामीभक्तिके सामने यह वस्तु गौण बन ी है ऐसा मेरा स्पष्ट अनुभव है। सीताजीके प्रति मेरी सहानुभूति एक महासतीके प्रति मेरे सदभावके कारण थी और है। उस महा के सतीत्व पर अथवा शरीर पर जब तक सीधा आक्रमण नही होता तक तो म सहन करूगी परन्तु यदि बात ऐसे आक्रमण तक बढ़ी मेरा पतिभक्ति मुझ पतिके अथवा ससुरके ऐसे अपकृत्योके विरुद्ध नके लिए अवश्य प्रेरित कर देगी। मेरी पतिभक्तिकी य स्पष्ट मर्या है। और म इस अवसर पर आपसे नम्र प्रार्थना करना चाहूगी आपकी पितृभक्तिकी भी ऐसी स्पष्ट मर्यादा होनी ही चाहिए। बहन शूर्पणखाके साथ रामके सामने लक्ष्मणने जो दुर्व्यवहार किया का दुख मेरे मनमें आज तक बना हुआ है। रामचन्द्रजीके प्रति मनमें अकल्पनीय सद्भाव उत्पन्न होता है। लेकिन यह बात मेरी झमें नहीं आती कि यह कुकृत्य उनकी उपस्थितिमें कैसे हुआ। यह वकर ही म अपने मनको सान्त्वना देता हू कि कभी कभी प्रत्यक धारामें छोटे या बड़े दोष दिखाई पड़ते है। परन्तु जिसके अधिकतर य शुभ हो जिसका आशय पूर्ण पवित्र हो उसे भगवान मानकर मनमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

इतना बातचीतके बाद अपने पतिके गलेमें माला पहनाकर तथा ार कंधे पर अपना मस्तक और प्रेमसे हाथ रखकर सुलोचना बोली

"मेरे प्राण, कौनसी पत्नी ऐसी होगी, जो अपने पतिकी विजय न चाहेगी?" लेकिन इतना कहते कहते उसका हृदय धडकने लगा और उसके मुखसे निकल गया "इस समय आंशिक विजय तो आपकी अवश्य होगी, परन्तु भविष्यके गर्भमें क्या होगा, कौन जानता है? .."

इसके बाद सुलोचना पुन. पतिप्रेममें बहने लगी और आखे झुकाकर मूक आशीर्वाद देती हुई खडी रही। अपनी प्रणयवश होते हुए भी सत्य तथा शीलके व्रतोका स्मरण करनेवाली सुलोचनाकी सुन्दर छविको मेघनाद कुछ क्षण और एकाग्रतासे देखे, इसके पूर्व तो पिताने उसे पुकारा। मेघनाद इस दृश्यको हृदयमे अंकित करके तुरन्त सीधा रणागणमे पहुच गया।

चारो दिशाओमे बज रही रण-दुदुभियोके नादसे वातावरण गूज उठा। आज पिता-पुत्रकी इस जोडीने युद्धमें अपूर्व कौशल दिखाया। धरती कापने लगी। आकाशसे जमे हुए हिमके टुकडे बरसने लगे। जहा तहा आगकी ज्वालाये लपलपाने लगी। चारो ओर कोहरेका अधकार छा गया। रामके पक्षमे असख्य सैनिक घायल होने लगे। न तो अगद इससे बचे, न सुग्रीव बचे। हनुमानका सिर भी खूनसे लथपथ हो गया और लकाको एक बार जलानेवाले हनुमान आज स्वय ही मानो जलने लगे! रामकी सारी सेना अस्त-व्यस्त हो गई और उसमे भाग-दौड मच गई। राम-लक्ष्मण दोनो युद्धके स्थान पर दौड गये। घने अधकारको दूर करके दोनो भाई घायल सैनिकोकी सेवा-शुश्रूषामे लग गये। कितने ही समय बाद बडी कठिनाईसे परिस्थिति सभली। लकामे सर्वत्र नगाड़े बजने लगे। रावणकी विजयकी घोषणा समग्र समर-भूमि पर गूजने लगी। अहकारी रावण मूछो पर ताव देने लगा। लकाके दुर्गमे सर्वत्र मद्यगृहोकी तैयारिया होने लगी। केवल गुप्त भविष्य ही 'विनाश-काले विपरीत-बुद्धि' कहकर इस ऊपरी तथा निरे बाह्य विज्ञानका विचित्र विनाश-ताडव देखकर रहस्यपूर्ण हसी हस रहा था!

*

अपने पतिके दुष्ट आचरणसे मंदोदरी अतिशय दु खी थी। आज वह गुमसुम बनकर आवासमे बैठी बैठी आकाशके सामने एकटक देख

सचमुच य न्ही राजरानिया हा ऐसा था जिन्होंने न्कामें छाये हुए आनन्दोत्सव वातावरणमें सिहर चोरांग घटाम अन्न जन छा गया था। दोनाक हृदयकी एक ही प्रार्थना थी भगवान हमारे स्वामियोंको सद्बुद्धि दे। इसके विपरीत रावण और मघनादको तो अपनी बाह्य शक्तियों पर ही पूरा विश्वास था। दोनो स्वप्नमात्र न्का स्वप्नमें रमे रहते थे कि राम लक्ष्मणके साथ उनकी पूरी सेनाका धनुमार निकल गया है अथवा निकलनवाला है। इसके विपरीत वातावरणमें सती मदोदरी और सुलोचनाके वेदनापूर्ण हृदयकी पुकार कौन सुनता ? लकामें पग पग पर ऐसा घटनायें घटती थीं जिन्हें देख सुनकर सामान्य मनुष्यका श्रद्धा सत्य प्रेम और न्यायके मगल तत्त्वा परसे डिग जाय।

उधर रामके पक्षमें जाम्बवतसे लेकर अगद तक सभी महारथी अपनी सेनामें सावधानीका नया प्राण फूककर सनिकोंकी प्रामाणिक करनेके कार्यमें लग गये। हनुमान सुग्रीव और विभीषण भी सबमें साहस और चतन्यका सचार कर रहे थे। ऐसे समयमें वीर लक्ष्मण एक ओर खडे खडे सोच रहे थे। प्रथम तो वे दुर्बल विचाराके प्रवाहमें बहने लगे ऐसा महायुद्ध लडकर लाखा जीवोंका सहार करनेकी

अपेक्षा गुप्त रूपमे सीतामाताको अशोक वनसे उठा लाना क्या गलत होगा ? " लेकिन तुरन्त उन्हे रामके इन उद्‌गारोका स्मरण हो आया . "हमारे कार्यमे ऐसा छल-कपट या गुप्तता हो ही नही सकती, हम ऐसा करे तो वह एक प्रकारसे रावणका अनुकरण ही माना जायगा। भले ही हमारी चीज चोरी गई हो, परन्तु उसे चोरीसे वापिस लानेका काम हमारी मानवताको शोभा दे ही नही सकता। चोरी कभी चोरीसे नही मिट सकती। हमे तो शैतानोको भी मानव बनानेका भगीरथ कार्य करना है। हमे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे जगतके प्रत्येक प्राणीको इस बातकी प्रतीति हो जाय कि अन्तमे अन्यायकी पराजय होती ही है।"

इन प्रेरक उद्‌गारोने लक्ष्मणको अपने मोहसे जगा दिया। वे सावधान हो गये। उन्होने सकल्प कर लिया "इस युद्धका जल्दीसे जल्दी अत लानेके लिए मुझे समग्र शक्ति एकत्र करके शत्रु पर टूट पड़ना चाहिये।" वर्षोंके ब्रह्मचर्य-पालनके कारण लक्ष्मणकी शक्ति अनेक गुनी बढ गई थी। उन्होने सोचा "यदि भगवान रामके पास जाऊगा, तो वे मुझे अकेले रणमे जूझनेकी आज्ञा नही देगे।" अत रामके समीप गये बिना ही मनमे उन्हे प्रणाम करके लक्ष्मण अकेले सग्राममे कूद पडे।

मेघनादने अकेले युद्धमे कूद पडनेवाले लक्ष्मणको देखा। तुरन्त उसने लक्ष्मणके आसपास राक्षसोकी एक टुकडी खडी कर दी।

लक्ष्मणको अपनी गलती तुरन्त समझमे आ गई। परन्तु अब क्या हो सकता था ? रामके पक्षमे भी लक्ष्मणके साहसी कदमके साथ कुछ बहादुर सैनिकोने साहस दिखाया, परन्तु वे राक्षसोके घेरेके बाहर ही रहे। घेरेको तोडनेके लिए उन्होने जी-तोड परिश्रम किया, परन्तु घेरेके भीतर लक्ष्मणको मेघनादने उलझा रखा था और घेरेके बाहर हनुमानसे लेकर अगद तक तथा दूसरे भी मुख्य मुख्य योद्धा कुभकर्णसे लडनेमे लगे हुए थे। इसके सिवा, इस ओर रावणने ऐसी माया रची कि सर्वत्र मेघाच्छन्न रात्रिके जैसा अंधकार छा गया। राम लक्ष्मणको खोज रहे थे। वे लक्ष्मणके मुहसे युद्धके समाचार सुननेको आतुर

रावण, मेघनाद और लकाकी प्रजाके ऐसे लोग, जो युद्धप्रेमी थे, सारी लकामे जय-जयकार कर रहे थे। मिथ्याभिमान सारी लका पर छा गया था। दूसरी ओर रामकी छावनीमे लक्ष्मणकी मूर्च्छा दूर करनेके विविध प्रयत्न किये जा रहे थे। परन्तु कोई भी प्रयत्न सफल नही हो रहा था। सारी छावनीमे शोक-सागर लहरा रहा था। वातावरणमे सर्वत्र उदासी और निराशा छा गई थी।

विषादकी मूर्ति बने हुए रामचन्द्रका हृदय भर आया। कुछ क्षण बाद अश्रुधारा बहने लगी और उनकी वाणी फूटी

"भाई लक्ष्मण, एक बार तो जागो और दो शब्द मुझसे बोलो। सहोदरके बिना मै यहा कैसे जीवित रह सकूगा? तुमने मेरे लिए कितने कष्ट उठाये? अयोध्यामे तुमसे मिलनेकी आशामे दिन-रात तुम्हारा ही ध्यान धरनेवाली बेचारी उर्मिलाका क्या होगा? माता सुमित्रा जब अपने लाडले लालको नही देखेगी, तब उनके हृदयके कैसे टुकडे टुकडे हो जायगे? विदाके समय कहे हुए उनके वचन और सागरके समान उनका उदार और विशाल हृदय याद आता है, तब मेरे हृदयको गहरा आघात लगता है। मै तो अपने धर्मका पालन करनेके लिए वनमे आया था, परन्तु तुम्हे क्यो साथ लाया? तुम और सीता मेरे साथ न होते, तो कितना अच्छा होता? हाय, अब मै क्या करू? जीवन-सगिनीके नाते सीताका विरह मुझे अतिशय पीडा पहुचाता है, परन्तु उतना नही जितना तुम्हारा विरह सताता है। इतनी चरित्रशील होते हुए भी सीताके मनमे सुवर्ण-मृगका आकर्षण क्यो उत्पन्न हुआ होगा? अधीर बनकर उसने मेरे पीछे तुम्हे क्यो भेजा होगा? तुमने जो रेखा खीच दी थी, उसे सीताने क्यो लाघा होगा?"

शोकग्रस्त राघव अपार विलाप करने लगे। तरह तरहकी बाते याद करके वे लक्ष्मणके सुषुप्त मनको आदोलित करने लगे। उधर अशोक वाटिकामें अकेली जानकी भी अगम्य वेदना अनुभव करने लगी।

रामचन्द्रजीकी अपार मनोव्यथासे हनुमान घबरा गये। परन्तु उन्होने समझ लिया कि यह समय रोने-धोनेका नही, विवेकके साथ तुरन्त कर्तव्य-पालन करनेका है। वे तेजीसे लकाकी ओर दौड़े और वहासे

एक सत्यनिष्ठ तथा नीतिप्रेमी वैद्यको बुला लाये। उनका नाम सुषेण था। सुषेण कर्तव्य निष्ठ थे। सच्चे वैद्यके लिए अपने कर्तव्यके सामने राजनीतिक दलबंदी जरा भी बाधक नहीं होती। तब शारीरिक कष्ट तो उसके कर्तव्यमें बाधक हो ही कैसे सकते है ? सुषेणने निद्राके स्वाभाविक शरीर धर्मकी भी परवाह न की और किसी तरहकी पूछताछ किये बिना ही अपने साधनोंके साथ वे रामकी छावनीमें आ पहुंचे।

सर्व प्रथम उन्होंने लक्ष्मणजीके शरीरकी परीक्षा कर ली और रघुकुल मणि रामसे कहा आप किसी तरहकी चिंता न करें। इनका शरीर पूरी तरह खतरेसे बाहर है। आपके साथ इनके भक्तिपूर्ण मनका जो अनुसंधान बना हुआ है उसके कारण मूर्च्छित अवस्थामें भी लक्ष्मण व्यथित मालूम होते है। इसलिए पहले आप स्वस्थ हो जाइये।

सुषेणके ये वचन सुनते ही रामका आत्मयोग पुन तेजस्वी बन गया। उन्होंने तुरंत अपने भीतर पैठी हुई दुर्बलताको निकाल फेंका। और वे अपने साथियोंको आश्वासन देने तथा सेनाके मनिकोंको स्वस्थ करनेके कार्यमें लग गये। इतनेमें लक्ष्मणने भी धीरेसे करवट बदली। लक्ष्मणकी आँखें तो नहीं खुली परन्तु उनके करवट फेरनेसे ही रामकी सेनामें प्राण-संचार हो गया। सुषेणने कहा 'मैं प्राणोंको टिकाये रखनेवाली सामान्य औषधि तो देता हू। परन्तु एक विशिष्ट औषधिकी आवश्यकता होगी जो मेरे पास नहीं है। वह औषधि द्रोणगिरि पर मिलेगी। और उन्होंने गिरि शिखरके औषधिवाले भागका निशानियां भी लिखकर रामको दे दी।

यह काम हनुमानके सिवा दूसरा कौन कर सकता था ? रामचन्द्रने हनुमानके सामने देखा। हनुमान तो राम-कार्यके लिए ही समर्पित थे। उन्होंने प्रसन्नतासे रामके चरणोंमें प्रणाम किया और एक छोटेसे विमानमें बैठकर द्रोणगिरिकी दिशामें प्रस्थान किया।

हनुमान औषधि लेकर लौटें उसके पूर्व ही लक्ष्मणके शरीरमें चेतना स्फुरित हो चुकी थी। परन्तु सुषेणने एक क्षणके लिए भी लक्ष्मणको छोड़ा नहीं। सच्चे वैद्यके लिए तो महारोगसे पीड़ित रोगी ही मानो भगवानकी तरह उपास्य देवता बन जाता है। सुषेणके इस

आचरणको भगवान राम पुलकित होकर निर्निमेष देखते रहे। इतनेमे हनुमानने आकर रामके चरणोमे मस्तक रख दिया। रामने हनुमानके मस्तकको चूमकर उन्हे दृढ आलिगनमे वाध लिया।

"हनुमान, इतना वडा वनस्पतिका पहाड किसलिए उठा लाये? क्या हम सवको मूर्च्छित वनाना है?" रामचन्द्रके अतिम वाक्यने आस-पासके सव लोगोमे हास्यकी लहर दौडा दी।

सुग्रीवने विनोद किया "मेरे इन मित्रको वोझ उठानेमें वड़ा आनन्द आता है।"

परन्तु वैद्य सुषेण तुरन्त समझ गये कि औषधिकी पहचान भूल जानेके कारण मुख्य मुख्य औपधियोका सग्रह हनुमान उठा लाये है। उनकी कुशाग्र वुद्धिको देखकर वैद्यराजकी प्रसन्नताका पार न रहा। उन्होने आवश्यक औषधिको तुरन्त पहचानकर लक्ष्मणजीकी नाकके पास रख दिया। इसके वाद ब्रह्मरन्ध्रसे लेकर विविध द्वारोके पास उसका लेप किया। फिर सारे शरीर पर हलके हाथसे तेलकी मालिश की। इसके फलस्वरूप लक्ष्मण कुछ ही देरमे एकाएक उठ वैठे, मानो गहरी नीदके वाद अगडाई लेकर जागे हो। रामकी छावनीमे आनन्द-की लहर फैल गई।

मुख्य मुख्य योद्धा एक-दूसरेके पास वैठ गये। हनुमानजीने अपनी यात्राका वर्णन सुनाया। हनुमान वहासे कैसे गये, औषधिकी पहचान भूल जानेसे उन्हे कितनी परेशानिया उठानी पडी, मार्गमे साकेतकी राजधानी अयोध्याके पास कैसी परिस्थितिमे वे दुर्घटनाके शिकार वने तथा घडी दो घडीमें ही अयोध्यावासियोसे उनका कैसा अनोखा मिलन हुआ—यह सारा वृत्तान्त सवने एकाग्रतासे सुना। वह कैसी आनन्दकी घडी थी! लक्ष्मणजी अव पूर्ण स्वस्थ दिखाई देते थे। परन्तु कौन जाने किसलिए रामका मन चिन्तातुर वनता मालूम हुआ। अपनी चिन्ता किसी पर प्रकट न हो इस ढगसे राम ि कर रहे थे। परन्तु हनुमान जैसे भक्तसे यह वात सकती थी? वे समझ गये कि अयोध्यावासियोको लका सी कल्पना आयी, वह भी श्रीरामको अच्छी नही

६९

भरतका धनुष-प्रयोग

भरत नन्दिग्राममे रहकर अपने दिन विता रहे थे। वनवासी रामका स्मरण कभी कभी उन्हे वियोगकी वेदनामे डुवा देता था। परन्तु चौदह वर्षकी अवधि उन्हे कुछ ही देरमे आश्वस्त कर देती थी। 'लक्ष्मण कैसे भाग्यशाली है! उन्हे श्रीराम और सीताजीकी चरण-वन्दनाकी प्रत्यक्ष प्रसादी मिलती है।' इस विचारसे क्षण भरके लिए भरत निराश हो जाते थे, परन्तु रामकी चरण-पादुकाये उन्हे आह्लादकी दिशामे ले जाती थी। राज्यतत्रमे उन्होने ऐसे सुन्दर प्रयोग चलाये थे कि कमसे कम खर्चमे कर्मचारी मन लगाकर राज्यका काम करते थे। करोके अल्प भारके कारण प्रजा भी प्रसन्न और समृद्ध रहती थी। इस सवका मुख्य कारण जिस प्रकार गुरु वशिष्ठकी शिक्षा थी, वैसे ही भरतका दैनिक तपस्वी जीवन भी इसका एक मुख्य कारण था। वट-वृक्षका दूध डालकर जव भरत अपने काले वालोकी जटा वनाते थे, तव वह दृश्य वडा भव्य लगता था। वल्कल-वस्त्र पहनकर और वन-वासका कठोर, तपोमय जीवन जीते जीते भी सफलतासे राज्यतत्र चलाया जा सकता है, इसका आदर्श प्रयोग देखनेके लिए अन्य प्रदेशोके निष्णात अयोध्यामे आते थे। जव वे लोग किसी भी तरहकी टीमटाम या तडक-भडकसे दूर रहनेवाले सीधे-सादे तपस्वी राजपुरुषके रूपमे भरतको देखते थे, तव उनका मस्तक भरतके चरणोमे अपने आप झुक जाता था। भरतकी नम्रता भी अनोखी थी। गद्गद स्वरसे और झुके हुए मस्तकसे वे सवका प्रणाम स्वीकार करते और उन्हे प्रणाम करते थे। एक भी दिन ऐसा नही जाता था जव उन्होने अपनी तीनो माताओके चरणोमे प्रणाम न किया हो। और जव वे माताओको प्रणाम करने जाते तव माडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्तिको भी भरतके दर्शन हो जाते थे। विशाल वैभवके वीच और अपनी पत्नीके नित्य निरीक्षणमे भी जो

भरत निर्लेप और निर्विकार रह सकते थे उनके चरणोंमें कौन प्रणाम न करेगा? इस सबके होते हुए भी साधनाका मार्ग तो कठिन ही होता है। प्रकृति यदि साधककी परीक्षा न करे तो और किसकी करे?

आज भरतके मनमें आया चलो आज धनुष-बाणका प्रयोग किया जाय। तपस्वीको यह प्रयोग शोभा नहीं देता और धनुष बाण भी हिंसक शस्त्र ही है। उन्हें अपने पास क्या रखा जाय? शस्त्र पास रख जाय तो कभी किसीको (कौतुकके लिए ही सही) मारनेका मन हो सकता है। भरतको भी आज ऐसा ही हुआ। उन्होंने लक्ष्यको ताकनेके लिए आज अपने आसपास न देखकर ऊपर आकाशमें देखा, जहा उन्हें कोई पर्वत जैसी वस्तु उडती दिखाई दी। भरतने तो केवल कौतुकके लिए ही यह प्रयोग कर डाला परन्तु कौतुकमें से कभी कभी भयंकर कल्पनाओंका सर्जन हो जाता है। भरतने आकाशमें जो वस्तु उडती देखी वह पर्वत नहीं था परन्तु मूर्छित लक्ष्मणके लिए औषधि ले जा रहे हनुमान थे। उन्होंने पर्वतकी वनस्पतियोंका एक बडा समूह इस प्रकार अपने विमानके साथ जोड रखा था कि दूरसे वह वनस्पतियोंका छोटासा गिरि शिखर दिखाई दिया।

और भरतका बाण व्यर्थ तो जा ही नहीं सकता था। जैसे ही बाण धनुषसे छूटा कि विमानको छेदकर सीधा हनुमानके हाथमें जाकर लगा। बाणकी चोट लगते ही हनुमानके हाथसे विमानका नियंत्रण चला गया। इसके साथ ही विमान और हनुमान दोनों नीचे धरती पर आ गिरे। 'हे राम' के उच्चारके साथ ही हनुमान मूर्छित हो गये। अब क्या हो? बाण तो छोड़ दिया लेकिन उसका परिणाम देखकर भरतको गहरा पश्चात्ताप हुआ। यह केवल कोई निर्दोष मनुष्य ही नहीं है परन्तु रामका परम भक्त मालूम होता है। वनस्पतियोंकी असंख्य लतायें देखकर भरतने सोचा क्या राम स्वयं रोगग्रस्त होंगे? मैंने यह कैसा भयंकर पाप कर डाला!' तुरन्त कुशल वैद्य बुलाये गये। योग्य उपचार विधिके बाद ही हनुमानने आखें खोल दीं। घबराकर राम-सेवक यहां राम कहांसे आ गये! बोलते हुए एकाएक उठे और भरतके चरणोंमें उन्होंने मस्तक झुका दिया।

१

अब भरतका मन स्वस्थ हुआ। इस दृश्यको देखनेके लिए आसपास अयोध्यावासियोका बहुत बडा समूह एकत्र हो गया था। हनुमान समझ गये कि ये राम नही है, परन्तु रामके ही परम प्रिय छोटे भाई भरत है, और आसपास रामचन्द्रका सारा परिवार तथा सरयू-तीरके सौभाग्य-शाली अयोध्यावासी खडे है। हनुमानने भक्तिभावसे सबको प्रणाम किया और सक्षेपमे रामके प्रथम दर्शनसे आरभ करके सुग्रीव-अगद मिलन, सीता-हरण तथा लकामे रावणसे चल रहे भयकर युद्ध तकका सारा वृत्तान्त सुना दिया। अन्तमे गद्गद कठसे कहा "मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मै अपने प्रभुके निकट सम्बन्धियोसे इस प्रकार प्रेम-भावसे मिल सका। यहा रहनेकी मेरी बडी इच्छा है। इसके लिए आप सबके आग्रहकी आवश्यकता ही नही है। परन्तु लक्ष्मणजी जिस स्थितिमे मूर्च्छित पडे है, उसे देखते हुए मुझे तुरन्त लका पहुच जाना चाहिये।"

यह सारी कथा सुनकर वहा एकत्र हुए सब लोग आनदित भी हुए और शोकग्रस्त भी हुए। आनदित इसलिए कि रामके कुशल-समाचार उन्हीके एक निकटके सेवकके मुखसे सुननेको मिले और शोकग्रस्त इसलिए कि सीता-विरह तथा लक्ष्मण-मूर्च्छाकी दु खद बातें अचानक मालूम हुई। इन सबमे आश्चर्यकी बात तो यह थी कि लक्ष्मणकी माताजी लक्ष्मणके समाचार सुनकर प्रफुल्ल हो गई थी। उर्मिलाके मुख पर भी स्मित फैला रहा। उनके शोकके लिए कोई कारण नही था, बल्कि हर्षका ही कारण था। दोनोको इस बातका सन्तोष था कि उनका लक्ष्मण पूरी निष्ठासे अपने कर्तव्यका पालन कर सका। जिस समाजमें स्नेहीजन केवल कर्तव्य पर ही ध्यान रखते है, वह समाज तेजीसे प्रगति कर सकता है।

अब हनुमानको रोकना उचित नही है, ऐसा मानकर अपनी गलतीके लिए पश्चात्ताप प्रकट करके भरतने सबसे हनुमानजीको जाने देनेकी प्रार्थना की और प्रेमसे उन्हे विदा किया। हनुमानका विमान देखते ही देखते ऊपर उठा और जब तक वह आखसे ओझल न हो गया, तब तक अयोध्यावासी रसपूर्वक उसे निर्निमेष दृष्टिसे देखते ही रहे।

भरतने सोचा, मेरी बाण-कलाकी एक भयकर भूल क्षण भरमें हो गई। इसके कारण भाई लक्ष्मणकी सेवा-शुश्रूषामे भी बाधा पहुची।

परन्तु हजारों भूलोंमें से किसी एकमें जब कभी कभी अद्भुतोंके दर्शन होते हैं, उसी प्रकार मेरी इस ममतारूपी भूलमें से मुझे हनुमान जैसे रामभक्तोंके दर्शन हुए। रामकी करुणा कैसी अगाध है!

७०

मेघनादका वध

लंका-नरेश रावणके वैज्ञानिक युद्ध-साधनोंके साथ उसके छल-कपट भी निष्फल गये थे। रावणके सैनिकोंमें दिन दिन प्राणार्पण करनेकी वृत्तिके स्थान पर जीवित रहनेकी इच्छा अधिक प्रबल बन गई थी। इसके विपरीत रामके पक्षमें नैतिक बल दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। लंका-वासियोंके मन भी राम और जानकीकी ओर अधिकाधिक झुकते जा रहे थे। रामके सैनिक पहले पहल तो असावधान रहे, परन्तु अब उनमें बलिदानकी वृत्तिके साथ जागृति और कुशलता भी बढ़ गई थी। इसके फलस्वरूप रावणकी विजयकी आशा दिनोंदिन घटती जा रही थी। रानी मन्दोदरीके साथ सती सुलोचनाकी चिन्ता भी बढ़ गई थी। सुलोचनाने अपने पतिको समझानेका अत्यधिक प्रयत्न किया। अन्तमें केवल आजके ही दिन युद्धको रोकनेकी विनती उसने मेघनादसे की। लेकिन कौन सुनता? आज तो मेघनाद पुरानी स्मृतिको ताजा करता उछलता कूदता वीर लक्ष्मणके सामने युद्धमें अच्छी तरह जम गया था। लक्ष्मण भी आज अत्यन्त स्फूर्तिवान और तेजोमय दिखाई देते थे। मेघनादने अनेक युक्तियां आजमाईं, त्रिशूलोंसे प्रहार किये परन्तु वीर लक्ष्मणने मेघनादकी सारी युक्तियां निष्फल बना दीं और उसके त्रिशूलोंको बाणवर्षा करके बीचमें ही उड़ा दिया। इन्द्रविजयी मेघनाद जैसे जैसे यह सब देखता गया वैसे वैसे उसका क्रोध बढ़ता गया। मनुष्य कितना भी वीर और गुणी क्यों न हो परन्तु क्रोधमें उसे पामर और दूषित होने देर नहीं लगती। मेघनादकी दशा भी उत्तरोत्तर ऐसी ही होती गई। कुम्भकर्णको मेघनादकी सहायतामें दौड़ना पड़ा। परन्तु

लक्ष्मणके पास ही रहनेवाले मयद, नल और नील रणक्षेत्रमे ऐसी सावधानीसे लड़ रहे थे कि कुभकर्णकी सहायतासे मेघनादको कोई लाभ न हो। पीछेसे रावण स्वय मेघनादकी सहायता करने आ पहुचा। परन्तु जव रावणने देखा कि अगद और हनुमान दोनो शस्त्रसज्ज होकर उसके सामने खडे है, तो उसकी हिम्मत टूट गई। उसने निश्चित रूपसे समझ लिया कि अव दुर्गके वाहर लड रही लकाकी सपूर्ण सेना यदि इस एक ही मोर्चे पर केन्द्रित नही हुई, तो आज लकाका सर्वनाश हो जायगा। उसने अपनी वुलन्द आवाजसे घोषणा करके लकाके समस्त सैनिको तथा प्रजाजनोका आह्वान किया। परन्तु यह सब कौन सुनने लगा? अन्तमे रावणने अवसरको पहचान लिया और जान-बूझकर वह पीछे हट गया। आज रावण अपनेको वचाता वचाता कठिनाईसे ही भाग सका। लकाके सैनिक तो भागनेकी ताकमे ही बैठे थे। अव भला वे क्यो रुकते? मेघनादको लगा कि यह तो गजव हो रहा है। स्वय मेरे पिताजी भी मुझे अकेला छोडकर रणक्षेत्रसे पलायन कर गये है! इससे मेघनादकी आशा टूटने लगी। इतना जरूर था कि कुभकर्णने अभी तक उसका साथ नही छोडा था। कुभकर्णकी शक्ति अपार और असीम थी, परन्तु हनुमान, अगद और लक्ष्मणके सामने किसीकी क्या चल सकती थी? मेघनादने इस स्थितिको अच्छी तरह समझ लिया था, परन्तु वह रणक्षेत्र छोडकर भागनेवाला नही था। और रणक्षेत्र आसानीसे छोडा जा सके ऐसी स्थिति भी अव नही रह गई थी। अन्तमे मेघनादकी रही-सही शक्ति लडते लडते क्षीण होने लगी। अव उसे लगा कि सुलोचनाकी सीख सच्ची थी, परन्तु थोडी ही देरमें लक्ष्मणका वाण एकाएक आया और उसने मेघनादका हृदय छेद डाला। उसी समय अन्य योद्धाओके दूसरे शस्त्र भी एकसाथ उसके शरीर पर वरसने लगे। उसका एक हाथ टूट गया। पैर डगमगाने लगे। मेघनाद मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरा और उसके साथ ही उसका सिर और धड दोनो अलग हो गये।

इस घटनासे रावणकी सेनामे चारो ओर हाहाकार मच गया; और आजका युद्ध वन्द रखनेकी घोषणा हुई। दोनो छावनियोके सैनिक

मेघनादकी शुश्रूषामें एकमात्र वायमें लग गये। लक्ष्मण भी इस परिचयामें सम्मिलित थे। उनकी गोदमें मेघनादके मस्तक और धडको जोडनेकी क्रिया चल रही थी। स्वयं रामका हाथ मेघनादके मस्तक पर घूम रहा था। लेकिन टूटीकी बूटी कहां होती है? (जिसकी जीवन डोर टूट जाती है उसे जिलानेवाली जडीबूटी दुनियामें कहां होता है?) आश्चर्यकी बात यह थी कि मरते मरते मेघनादके मुहसे पहला नाम सुलोचनाका निकला दूसरा रामका और तीसरा लक्ष्मणका। इन तीनोंके प्रति मानो अपनी कृतज्ञता प्रकट करते करते उसके प्राण पखेरू उड गये। सबके मुंह पर शोककी घनी छाया फैल गई।

किसकी प्रशंसा की जाय? रामचन्द्रके एक कट्टर विरोधी राक्षसकी मृत्युसे पहले हुए उसके अलौकिक हृदय परिवर्तनकी? अथवा ऐसे हृदय परिवर्तनकी स्थिति उत्पन्न करनेवाले विश्ववंद्य विभूति रामचन्द्रजीकी? अथवा उनके निकटके सच्चे साथियोंकी?

७१
सुलोचनाकी पतिभक्ति

मेघनादकी मृत्युसे रावण टूट गया परन्तु उसका मेरुके समान आकाशको छूनेवाला अभिमान तो टूटनेवाला नहीं था। उसने अपनी सेनाके भग्न हो चुके उत्साहको फिरसे जगानेका मिथ्या प्रयास आरम्भ कर दिया। कुंभकर्णके समान शूरवीर भ्राताकी मृत्यु तो रावणको प्राप्त थी ही।

रावण अपनी पुत्रवधू सती सुलोचनाको सान्त्वना देने स्वयं गया। परन्तु निरा नकाम भरी रावणकी सान्त्वनासे सुलोचनाको कैसे संतोष होता? वह दौडती दौडती अपनी सास मंदोदरीके पास गई और बोली माताजी अपने पतिका शव प्राप्त करनेके लिए मैं स्वयं रघुपति रामके पास जाना चाहती हूं। आप क्या आज्ञा देती हैं? महारानी मंदोदरीने उत्तर दिया 'अवश्य जा बेटी! तुझे मेरे आशीर्वाद हैं। रामकी

छावनीमे अकेली स्त्रीको जानेमे कोई सकोच नही हो सकता। रामचन्द्र एकपत्नी-व्रतधारी तो है ही, परन्तु सुना है कि तपस्वी-वेशमे वनमे आनेके बाद उन्होने अपने साथ रहते हुए भी जानकी देवीके शरीरकी ओर कभी विकारी दृष्टिसे नही देखा। ऐसे परम पवित्र प्रभुके दर्शन किसी सौभाग्यशालीको ही प्राप्त होते है। लक्ष्मण रामकी पवित्र छायामे पूर्णतया निर्विकार रहे है। दोनो बन्धुओकी ऐसी वीर जोडीके साथ रहनेवाले सैनिकोमे भी शील और सदाचारका प्रेम उमड आये, तो कोई आश्चर्यकी बात नही। मै तो सीतापति श्रीरामके दर्शनोके लिए तरस रही हू, किन्तु तेरे ससुरकी अनिच्छा देखकर मुझे अपने मनको रोकना पडता है। इसलिए तू अवश्य जा। मेरी ओरसे रामचन्द्रके अधिकाधिक मात्रामे दर्शन करके तू अपनी पवित्रतामे वृद्धि कर।"

रानी मदोदरीके वात्सल्यसे परिपूर्ण और रामभक्तिसे ओतप्रोत मधुर वचन सुनकर तृप्त हुई सुलोचना पालकीमे बैठकर रामकी छावनीके समीप आई।

पालकीको देखकर सुग्रीव जैसे साथियोको क्षण भरके लिए लगा कि "रावणने जानकीजीको लौटा दिया, यह अच्छा हुआ। इतनेसे ही मानवोका सहार करनेवाला युद्ध अब रुक जायगा।" परन्तु इतनेमे कोई अपरिचित नारी पालकीसे उतरी और सीधे जाकर सबसे पहले उसने विभीषणके चरणोमे प्रणाम किया।

अपने भतीजे इन्द्रजितके अवसानसे विभीषणके मनको जो गहरा आघात लगा था, वह सुलोचनाको देखते ही अधिक गहरा हो गया। वे जोरसे रो पडे। छावनीके दूसरे साथी उनके पास कुतुहलवश होकर दौड आये। सबकी आखें भीग गई। स्वय रामचन्द्रके नेत्र भी छलछला उठे। सुलोचनाने समयको पहचान लिया। अपने भीतरके आसुओको उसने बाहर न आने दिया। रघुनाथको देखते ही वह उनके चरणोमे लोट गई और अपने आसुओसे उनके चरणोको धो डाला।

"पुत्री, बोल तेरी क्या इच्छा है?" इतना कहकर रामचन्द्रजीने स्वयं ही सुलोचनाको अपना हृदय खोलनेका अवसर दे दिया। सुलो-

चनाने ऐसी उन्मुक्तताका अनुभव किया जैसी अपनी माताके पास भी उसने कभी अनुभव नहीं की थी। अपने जीवनके कितने ही अनगुँथे चित्र जो किसीके सामने उसने कभी खोले नहीं थे वह रामके सामने खोलने लगी। राम पुरुष हैं इसका भी सुलोचनाको भान नहीं रहा और राम भी अपना मातृ-सुलभ वात्सल्य उस पर बरसाने लगे। तभी मेघनादका सिर और धड़ लाकर सुलोचनाके पास रख दिये गये। सतीने तुरन्त अपना जूड़ा खोलकर अपूर्व भक्तिभावसे पति चरणोंकी धूल सिर पर चढ़ाई और विधिपूर्वक पतिका महापूजन किया।

रामने गद्गद होकर कहा — पुत्री सुलोचना! मेघनादने मृत्युसे पहले तेरा नाम लिया और बादमें हम दोनों बन्धुओंके प्रति स्नेह जता कर प्राणत्याग किया। बोल अब तू क्या चाहती है?''

सती बोली — परमपिता आप जरा भी दुखी न हों। मैं सच्चे हृदयसे कहती हूँ कि अब पतिके जानेका मुझे जरा भी दुख नहीं है। इसके विपरीत आपके चरणोंमें मेरा और मेरे पतिकी ऐसी सुन्दर मृत्यु हो इसमें हम दोनोंका अहोभाग्य समझती हूँ। हाँ, इतना दुख अवश्य होता है कि भविष्यकी पीढ़ियाँ यह कहे बिना नहीं रहेंगी कि मेघनाद जैसा नरवीर अपने पिताको स्पष्ट सत्य नहीं सुना सका। दूसरी एक बात मनमें यह रह जाती है कि मृत्युसे पूर्व मैं अपने पतिका स्मित-मग्न आत्मामें नहीं देख पाई।

सुलोचनाका अंतिम वाक्य पूरा होते ही मेघनादका मस्तक जोरसे हँस पड़ा। सुग्रीव अंगद विभीषण लक्ष्मण हनुमान, जाम्बवंत, नल नील द्विविद, मयंद पनस आदि योद्धा आश्चर्यचकित हो गये। यह कैसा चमत्कार!

रघुकुल-मणि राम बोले — बेटी तेरी एक अभिलाषा पूर्ण हुई। फिर साथियोंसे कहने लगे — इसमें कोई चमत्कार नहीं है। फिर भी चाहें तो आप चमत्कार शब्दका उपयोग कर सकते हैं। यह चरित्रका चमत्कार है। मृत्युसे पहले मेघनादके अन्तरके किसी कोनेमें पति-पत्नीकी हार्दिक एकताकी जो भावना थी उसीकी यह प्रतिध्वनि

है। दूसरा कुछ नही। प्राण शरीरसे पूरी तरह निकले न हो वहा तक सुयोग्य साथीके अन्तरके शब्द सुनकर ऐसी घटना घट जाती है।"

इतना बोलनेके बाद सुलोचनाकी ओर देखते हुए रामने कहा: "सती-शिरोमणि, भविष्यके मानव मेघनादके विषयमें क्या कहेंगे, इसका शोक करना अब तू छोड दे। जगतके कल्याण पर दृष्टि रखनेवाले महामानव तो इससे भी सीख लेंगे। अपने अतरकी अतिम बात भी तुझसे कह दू। पूरी प्रामाणिकता और सचाईसे प्रबल प्रयत्न करनेके बाद जो अवाछनीय घटनाये होती है उनके लिए पश्चात्ताप तो करना चाहिये, परन्तु प्रकृतिकी इच्छाकी महत्ताको स्वीकार करके अन्तमें सान्त्वना ग्रहण करनी चाहिये और प्रयत्नकी शुद्धिको बढाना चाहिये। हमे यह भी नही भूलना चाहिये कि जिसका अन्त अच्छा है, उसका सब-कुछ अच्छा होता है।"

भगवान रामके इन शब्दोसे प्रसन्न हुई सुलोचनाकी चेतना नाच उठी। इतनेमे रावण और मन्दोदरी भी वहा आ पहुचे। उसी समय महासती सुलोचनाके शरीरमे से अग्नि स्वय प्रज्वलित होती दिखाई दी। दडवत् प्रणाम करके सुलोचनाने सबसे क्षमा मागी और सबके देखते ही देखते पति-पत्नी दोनो भस्म हो गये। उस समय वातावरणमे शोक और उद्वेग नही, परन्तु सुगधित प्रकाश व्याप्त हो गया। रावण तुरन्त चला गया। पतिके पीछे मदोदरी भी गई। बाकी सब सतीके अपने शरीर पर सिद्ध आत्माधिपत्यके तेजको आदरपूर्वक लम्बे समय तक देखते रहे।

उसने तुरन्त कटार निकाली और बोला बडी योगिन बननेका ढोंग कर रहा है! मेरी बहन शूर्पणखाके नाक-कान काट गये तब तेरा यह योग कहां चला गया था? उस समय तेरा यह ध्यान कहां था? बोल झूठी ढोंगी कहींकी बोलती क्यों नहीं? इतना कहकर उसने सीताजीको कटार मारनेके लिए हाथ उठाया। परन्तु किसी न किसी कारणसे उसका हाथ अपनी जगहसे उठा ही नहीं। इतना ही नहीं कटार उसके हाथसे छूटकर नीचे गिर पडी। उसे उठानेका प्रयत्न रावण कर ही रहा था कि इतनेमें महारानी मन्दोदरी आ पहुंची। उसने कटार अपने हाथमें ले ली।

रावण गरजा तुमसे यहां आये बिना रहा नहीं गया? क्यों आई तू यहां? चल अपना रास्ता पकड यहांसे।

मन्दोदरीने शान्त स्वरमें कहा स्वामिन् अब आप अपनी मर्यादाका उल्लंघन कर चुके हैं। शैतान पूरी तरह आप पर सवार हो गया है। आप मुझे क्षमा करें। मैंने कभी आपकी आज्ञाकी अवगणना नहीं की। आज आपके कल्याणके लिए आपकी इस आज्ञाके विरुद्ध मुझे सत्याग्रह करना पडेगा। जब तक आप अपने क्रोध पर नियंत्रण न पा लेंगे तब तक मैं यहांसे जाऊंगी नहीं। एक इंच भी यहांसे नहीं हटूंगी। इतना कहकर उसने पतिके चरण पकड लिये और अपना आंचल फैलाकर पतिसे प्रार्थना करने लगी पौलस्त्य कुलके वंशज यह सब आपको शोभा देता है भला?

ये शब्द बोलते बोलते मन्दोदरीकी आंखें तरल हो आईं और आंसूकी दो बूंदें रावणके चरणों पर गिरीं। वे आंसुओंकी बूंदें नहीं थीं परन्तु अंतरमें बरसनेवाले अमृतके छींटे थे। रावण हार गया। उसका कठोर और क्रूर हृदय पसीजने लगा। परन्तु मदान्धताका पारा तुरंत तो कम होता? वह बोला तू चाहे तो सदा रह सकती है चल जानकी आना मैं स्वयं मौका देता हूं। मैं पुलस्त्य मुनिका वंशज अवश्य हूं परन्तु अब तो मुझे लगता है कि मैं सीताको जानसे मार डालूं! अंतिम वाक्य बोलते बोलते मानो अंतरमें ही किसीकी आवाज सुनकर उसने सिर घुमाया और नीचे बैठ गया। अपने शेष

और क्रोधके प्रत्याघातोके कारण ही वह वहुत देर तक मौन वैठा रहा और वादमे एकाएक वोला

"प्रिय मन्दोदरी, तू ही वता कि रामको जीतनेका दूसरा क्या उपाय है? मुझे लगता है कि अव सीताकी मृत्यु हो, तो ही रामका हृदय टूट सकता है। मुझे यह भी लगता है कि मेरे हाथो सीता-का वध हो, तो रामका नैतिक वल भी टूट जायगा। रामका नैतिक वल मै तोड न दू तव तक मुझे चैन नही पडेगा। भले ही मैं कल मरनेवाला होऊ तो आज मर जाऊ!"

"प्राणनाथ, आप यह क्या वोलते हैं? शिवके परम भक्त होने-का दावा करनेवाले आपके मुखसे यह वात शोभा देती है? आपने रामको अभी भी नही पहचाना! पुत्री मुलोचना होती तो आपको वताती कि रामचन्द्र कितने निर्विकार पुरुप हैं। और वह यह भी वताती कि मेघनादकी मृत्युसे रामको कैसी गहरी वेदना हुई थी! क्या ऐसे समत्वयोगी रामचन्द्र सीताकी मृत्युसे नीतिभ्रष्ट हो जायगे? और राम क्या सीताके लिए यह युद्ध लडनेको तैयार हुए हैं? मैं कभी इस वातको नही मान सकती। रामचन्द्रजीकी एक एक धमनीमें भारतवर्पकी उस सस्कृतिका रक्त वह रहा है, जिसमे सत्य और नीतिकी रक्षाको ही एक अखड तपोवल माना जाता है। जो वात मैं पहले अनेक वार कह चुकी हू उसीको एक वार और कह दू कि राम-को यदि झुकाना ही हो, तो आप रामसे अधिक तप, त्याग और नीतिका पालन करने लग जाइये। सीताजीको रामके हाथोमें सौप दीजिये। और यदि ऐसा कुछ भी आप न कर सके तो विजय और जीवन दोनोकी आशा छोडकर लडते रहिये। परन्तु आज नीतिके जिस स्तर तक आप नीचे उतर चुके हैं, उससे अधिक नीचे तो कभी न उतरिये। यहा मैं अपने हृदयकी अतिम वात भी आपसे कह दू: आजके वाद मुझसे कहे विना यदि आप जानकीके पास आयेंगे, तो मैं उसी क्षण अपने प्राण त्याग दूगी। मेरी अशातिको आप मिटाना चाहे तो जव कभी आपको जानकीके पास आना हो तव मुझे भी अपने साथ लानेका वचन दीजिये।"

रावणने धमकाते देखकर मन्दोदरीने बचकर बचपनसा और उसके हाथको अपने हाथमें लेकर माना मौन करा लिया। अच्छा आजसे मैं सीताका जरा भी अपमान नहीं करूँगा और उसके पास जाऊँगा भी नहीं। कभी जाया तो तुझे अपने साथ लूँगा।

इस दृश्यको देखकर त्रिजटाके लोचन हर्षसे नाच उठे। रावण और मन्दोदरी तुरन्त ही उस स्थानको छोड़कर चले गये। त्रिजटाने शान्तिकी सास ली और सीताजीकी ओर देखा। वे तो अभी भी शान्त भावसे रामके ध्यानमें मग्न थी! जिसने मृत्युको जान लिया है उसे किसका भय हो सकता है? और जिसने देहका मोह छोड़ दिया है उसे किस बातका क्षोभ हो सकता है?

७४

जनकपुरीमें नारदजी

अहा नारदजी पधारिये पधारिये! बड़े लम्बे समयके बाद आपके दर्शन हुए। कहकर जानकीकी माता सुनयनाजीने महर्षि नारदका हार्दिक सत्कार किया। उसके बाद संसारकी घटनाओंके विषयमें उनसे पूछा।

जनक-पत्नी माताकी दृष्टिमें तो प्यारी पुत्रीके कुशल समाचार संसारकी घटनाओंकी चरम सीमा होते है। इसलिए आज मैं सीताजीके विषयमें ही आपसे कहूँगा।

यह तो आप जानती ही है कि सीताजी आज अवधपुरीमें नहीं है। वनमें जानेके बाद आप स्वयं उनसे दंडकारण्यमें मिल आई है इसलिए वहाँ तककी बात तो आप जानती है। आज वे रावणकी लंका नगरीमें है। अन्तिम वाक्य सुनते ही सुनयनाजीके मुहसे क्या कहा? का उद्गार निकल पड़ा और उनके चहरेके भाव बदल गये।

यह देखकर नारदजीने कहा सारी बात मैं संक्षेपमें कह सुनाऊँगा। उसके बाद आपको चिन्ता नहीं रहेगी। यह तो आप जानती

ही है कि रामचन्द्रके सिवा अन्य किसीका विचार उस समर्थ सतीके मनमे पैठ नही सकता और जगतकी कोई भी शक्ति सती सीताको पराजित नही कर सकती।"

इतना सुननेके वाद सुनयनाजीका मन शान्त हुआ और एकाग्र चित्तसे सारी वातका सार सुननेमे वे तल्लीन हो गई।

नारदजीने आगे कहा "मिथिलाकी महारानी, जनक राजाने तो राम और सीताके वारेमे मुझसे कुछ भी नही पूछा। उलटे मेरे कहने पर उन्होने टालनेका प्रयत्न किया। मुझे लगा कि धन्य है यह पिता ओर श्वसुर, जिसे तेरह वर्षोके दीर्घकालके वाद भी अपनी पुत्री अथवा जमाईके समाचार सुननेकी आतुरता नही है! वे मानते है कि चौदह वर्ष पूरे होने तक तो मनसे भी ऐसे ही विचार करने चाहिये, जिनसे जमाई और पुत्रीके स्वधर्म-पालनमे सहायता मिले।"

"ऋषिराज, मै भी ऐसे ही विचारोकी समर्थक हू, जिनसे जमाई और पुत्रीको दृढतासे स्वधर्मका पालन करनेमे सहायता मिले। परन्तु मेरे मनमे सदा ये विचार उठा करते है कि 'सीता क्या करती होगी? क्या खाती होगी? कैसे रहती होगी? मेरे राम और लक्ष्मणकी दिन-चर्या कैसी होगी?' उन लोगोके कुशल-समाचार पानेके लिए मन भी अत्यन्त आतुर रहता है। मुझे स्वीकार करना चाहिये कि इस विषयमे मिथिलेशके जितना मानसिक सयम मुझमे नही है।"

सुनयनाजीकी आतुरता देखकर नारदजी वोले "भरत, कौशल्या, गुरु वशिष्ठ, कैकेयी तथा आप सव राम-सीता और लक्ष्मणसे वनमे मिल आये, उसके वाद तुरन्त ही श्रीरामको दूर दूरके स्थानोमें जाना पडा। वर्षो तक राम, सीता और लक्ष्मण ऋषि-मुनियोके तथा वन्य-जनोके सम्पर्कमे रहे। परन्तु एक अमगल दिन ऐसा आया, जव जानकी वनके एक स्वर्ण-मृग पर मोहित हो गई। इस प्रकार रावणकी मायाकी विजय हुई। उसके फलस्वरूप सीताजीको रावणकी लकापुरीमें जाना पडा। राम-सीताका वियोग हुआ। जानकीको अतिशय पश्चात्ताप हुआ। विश्व-वल्लभ रामचन्द्रजीको भी सीताका वियोग वहुत खला। इस घटनाके वाद राम-लक्ष्मण आगे ही आगे वढते रहे। मार्गमे महा-

साध्वी शबरीसे उनका मिलाप हुआ। पम्पा सरोवरको छोड़कर आगे जाने पर हनुमान और सुग्रीवसे रामकी भेंट हुई। बालिकी पराजय हुई। हनुमानने लंकामें सीताकी खोज की। मारुतिसे जानकीको इससे बड़ी सान्त्वना मिली। अन्तमें अंगद रावणसे सन्धिकी बातचीत करने गये और अनिवार्य होनेके कारण युद्ध भी आरम्भ हो गया। मैं क्या कहूँ? स्वयं रामचन्द्रको भी युद्धमें भाग लेना पड़ा। युद्धमें अनेक उतार चढ़ाव भी आये। इन्द्रजित मेघनादके बाणसे लक्ष्मण मूर्छित हो गये, उस समय श्रीरामने समत्वयोगकी उत्तम कड़ी परीक्षा दी। अन्तमें इन्द्रजित और कुम्भकर्ण जैसे रावणके कुछ महारथी युद्धमें मारे गये। रामके योद्धाओं और सैनिकोंको भी युद्धका बहुत कड़वा स्वाद चखना पड़ा। मैं यह बात कह रहा हूँ तब भी राम रावणका युद्ध चल रहा होगा।"

यह सारा वृत्तान्त सुननेके बाद सुनयनाजीने नारद ऋषिसे दो प्रश्न किये (१) हे ऋषिराज इस युद्धमें रामचन्द्रजीकी विजय तो होगी न? (२) रामको इतने सैनिक अयोध्या अथवा मिथिलाकी सहायताके बिना कैसे मिल गये?

महादेवी रामकी विजयके विषयमें तीन कालमें किसीको कोई शंका नहीं है। सत्यमें और सत्यनीतिमें पराजय शब्दके लिए कोई स्थान ही नहीं है। इसके अतिरिक्त महापुरुषोंकी विशेषता यह है कि वे अकेले किसी मार्ग पर चल तो भी जगत उनके पीछे दौड़ता चलता है। प्रकृति स्वयं अनायास ही उनको स्थानीय सहायता कर देती है।

इतना कहनेके बाद नारदजी विदा हो गये। मिथिलाकी महारानी एक ओर राजा जनककी खिन्न अवस्था पर विचार करने लगी और दूसरी ओर ग्यारह ग्यारह वर्षोंके राम-स्मरण तथा जानकीकी वन्दनाके साथ सहानुभूतिपूर्वक एकरूप हो गई।

७५

पापकी पुकार

"पतिदेव, आपका नाम जैसा कल्याणकारी है वैसा ही आपका काम भी कल्याणकारी है। आज मै अपने हृदयकी बात आपके सामने रखना चाहती हू। रावण अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट होकर भले ही ब्राह्मणसे राक्षस बन गया, परन्तु आज भी वह अपनेको आपका परम भक्त और परम शिष्य कहता है। मुझे नही लगता कि अब रावण पर आपके सिवा अन्य किसीका प्रभाव पड सकता है। मै यह भी जानती हू कि भगवान रामके लिए आपके मनमे बडा आदर है। ऐसी स्थितिमे आप राम-रावणके महायुद्धमे हस्तक्षेप क्यो नही करते? उस युद्धमे हो रहा लाखो मानवोका सहार तो मुझे कष्ट देता ही है, परन्तु इससे भी अधिक कष्ट मुझे इस बातसे होता है कि जानकी जैसी एक पवित्र और पति-परायणा सन्नारी आज असह्य यातनाये भोग रही है। प्रभो, मेरे सतीत्वकी रक्षाके लिए आपने महात्याग करके ससारके सामने एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। तब जगतकी एक महती सन्नारीके सत्य और शीलकी रक्षाके लिए आप कोई सक्रिय मार्ग क्यो नही अपना रहे है? मेरी अशिष्टता हो रही हो तो क्षमा करे, देव! परन्तु आज अपने मनके इस प्रश्नको आपके सामने रखकर मै इसका सच्चा समाधान चाहती हू।"

सती पार्वतीके इन हार्दिक उद्‌गारोसे प्रसन्न होकर शिवजी बोले "सती, तुमने अपने मनकी जो बात कही वह मुझे अच्छी लगी। तुमको जैसा लगता है वैसा अनेक नर-नारियोको लगता होगा। मेरे अपने मनमे भी कभी कभी इस प्रश्न पर मन्थन चलने लगता है, परन्तु बादमे तुरन्त इसका समाधान भी हो जाता है। भगवान राम आजके युगके समाजको सन्मार्ग पर ले जानेवाले पुरुषोमे सर्वश्रेष्ठ है। मेरी यह श्रद्धा और विश्वास है कि रामचन्द्र जो कुछ कर रहे है

वह आज भले हो लोगोंकी समझमें न आये परन्तु भविष्यकी पीढ़ियोंको उनके इस कृत्यसे हजारों वर्ष तक प्रेरणा मिलती रहेगी। यह विश्वास होनेके कारण ही रामको किसी भी कार्यसे मुझे चिन्ता नहीं होती। राजा जनककी पुत्री श्रीमती जानकीजीके शील और सदाचारमें मैं तुम्हारे जितनी ही श्रद्धा रखता हूँ साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि ऐसे शीलवान और सदाचारी लोगोंको इस जगतकी कोई भी शक्ति पराजित नहीं कर सकती। तब राम और जानकी दोनोंकी सहायता करनेवाला मैं कौन होता हूँ? तुम जानती हो कि सोनेको कसौटी पर तो चढ़ना ही पड़ता है।

'अब बाकी रहती है मेरा शिष्य कहलानेवाले रावणकी बात। इस सम्बन्धमें मुझे सदा यह लगा करता है कि गुरु भी अन्तमें तो निमित्त ही बन सकता है। मनुष्य जब तक केवल जीवन साधनकी अभिलाषा रखकर काम करता है तब तक उस पर गुरुका अथवा मार्गदर्शकका प्रभाव अवश्य होता है। कहीं न कहींसे मार्गदर्शन पानेके लिए वह आतुर भी रहता है। परन्तु जब मनुष्य बाहरी साधनोंमें डूब जाता है और बाह्य विज्ञान पर ही परम श्रद्धा रखने लगता है तब उसका अन्तरात्माके सिवा दूसरा कोई उसका मार्गदर्शक बन ही नहीं सकता। रावणके मन पर अहंकारने इतना अधिक अधिकार जमा लिया है कि आज उस पर किसीका भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसके सिवा मैं रावणको अपना ऐसी कोटिका शिष्य मानता हूँ जिसने स्वयं ही गुरुके नाते मुझे स्वीकार किया है मेरे मनमें उस पर कभी स्वयंस्फूर्त प्रेम नहीं उमड़ा और न आज ही उमड़ता है।

प्राणेश्वर वैसे भी आपके स्वभावमें कोई ऐसी बात है कि आप मुझ जैसे अत्यन्त समीपके व्यक्तिको भी केवल संकेतसे ही अपना विचार कहते हैं उस पर किसी प्रकारका आग्रह नहीं लादते।

हाँ देवी अनेक व्यक्तिगत अनुभवोंके बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि थोड़े संकेतमें अधिक आग्रह करनेमें गुरु शिष्य दोनोंमें से किसीके लिए भी परिणाम अच्छा नहीं होता। इसके विपरीत गुरु शिष्य पति पत्नी मित्र मित्रके सम्बन्धोंमें उदारतापूर्ण भाषा-संयम जितना अधिक

होता है, उतनी ही अधिक गतिसे और अधिक मात्रामे दोनोका कल्याण होता है। जो गुरु यह मानता हो कि उसकी जिम्मेदारी शिष्यके विषयमे अधिक है, उस गुरुको तो अपना माने जानेवाले शिष्यके मार्ग भूल जाने पर स्वय उसका प्रायश्चित्त भी करना चाहिये।"

"प्रभु, इतना सुननेके बाद अब मेरी समझमे भलीभाति आ गया है कि आप जो कहते है वही यथार्थ है। आपके साथ चर्चा करके मैने आपका इतना समय लिया, इसके लिए मै क्षमा चाहती हू। अन्तमे एक बात मै आपसे पूछ लू. आपके अनुमानसे इस युद्धका अन्त कब होगा? लका नगरी जली, मन्दोदरीका हृदय शोक और चिन्ताकी आगमे जलकर राख जैसा हो गया, विभीषणके समान नम्र भ्राताको विरोधी छावनीमे जाकर रावणके विरुद्ध लडना पडा, मेघनाद जैसा महारथी पुत्र खोना पडा और कुभकर्ण जैसा भाई युद्धमें मारा गया — इतने कठोर आघातोके बाद और युद्धके सहार-ताडवके बाद भी रावण सचेत क्यो नही होता?"

"सती, विनाशका समय जब तेजीसे आ पहुचता है और मनुष्यके कुकर्मोका लेखा-जोखा होने लगता है, तब सहार-लीलाका ऐसा ताडव अनिवार्य हो जाता है। मुझे इससे कोई आश्चर्य नही होता। आश्चर्य तो इस बातका होता है कि रामचन्द्रजीने अपने सौम्य शान्त स्वभावके अनुसार मूर्ख रावणको सुधरनेके इतने सुन्दर अवसर दिये, फिर भी वह सुधरा नही। परन्तु इसमे अकेले रावणका ही दोष नही है। अनेक कारणोके मिलनेसे यह परिणाम आया है। जब मनुष्य 'रोकने पर भी बुरे कामोमे न रुकने' की भूमिकामे पहुच जाता है, तब तो विलय — नाश — ही उसके उद्धारका एकमात्र मार्ग रह जाता है। किसी महापुरुषकी उपस्थितिमे ऐसा विलय हो, तो समझना चाहिये कि उसकी गहराईमे कोई कल्याणकारी वृत्ति ही काम कर रही है। रावणका मन अब इसी कक्षा पर पहुच चुका है। अब तो मरते मरते भी उसका हृदय रामचन्द्रजीको उनके सच्चे स्वरूपमे पहचान ले तो बस है। मेरे मनमे जरा भी शका नही कि उदारताके महासागरके समान भगवान रामके हृदयमे तो आज भी रावणके लिए करुणाका भाव है और अन्त

तर बना रहेगा। दूसरी ओर इन आघातोंके बाद अब रावणका हृदय भी कुछ कुछ रामाभिमुख होता जा रहा है। मेरा मन कहता है कि हनुमान पहले या उसके बाद अथवा मेरे पकड़ लेनेके बाद रावणका हृदय रामकी शरण स्वीकार किये बिना नहीं रहेगा। इतना हो जाय तो सब पूरा कल्याण होगा। परन्तु इसमें कुछ समय और लगेगा।

सच है प्रभु! परन्तु हमारा उपाय? पवनजान पूछा।

इसका उपाय यही है कि हम अपने चरित्रको और उज्ज्वल बनाकर अत्यन्त परम उत्तम प्रार्थना करते रहें।

निष्पाप-पावनताके इस पवित्र सवादने निश्चय पवित्र सत्कारोंका प्रेरणा दी और रावणके अंतरमें भी तत्काल उसकी प्रतिक्रिया हुए बिना न रहा। सुन्दर और सूक्ष्म विचारोंका प्रभाव तत्काल सुन्दर रूपमें सुन्दर परिणाम लाये बिना कभी शान्त नहीं होता।

*

सती मन्दोदरी आज मैं स्वयं चलकर तेरे सामने अपना हृदय खोलने आया हूँ। यह वाक्य पूरा करनेसे पहले ही रावण बालकका तरह रो पड़ा। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली।

मन्दोदरीकी आँखें भी छलछला आईं। मेरे पतिदेव आज स्वयं ही अपना हृदय खोलनेके लिए मेरे पास क्या आये होंगे! — सतीके हृदयमें यह आश्चर्य लम्बे समय तक नहीं टिक सका। आज तो दोनों हृदय सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपमें एक-दूसरेसे मिल गये। वे क्षण कितने सुन्दर और सुखद थे! जब महापापी हृदय भी पश्चातापकी आगसे सुलग उठता है तब सन्मार्ग भी पिघले बिना नहीं रहता। इसीलिए गीता कहती है

अपि चेत सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग् व्यवसितोऽहि स ॥
क्षिप्र भवति धर्मात्मा

रावणका हृदय अब सचमुच चूर चूर हो चुका था। इसके दो कारण थे (१) मेघनाद विभीषण और कुम्भकर्णके साथ अनेक

साथियोका वियोग उसे सता रहा था, उसमे भी विभीपणके तिरस्कार-का प्रत्याघात आज उसके लिए सवसे अधिक दु खदाई वन गया था। (२) सती मन्दोदरीके समान महानारी द्वारा कल्याणकी भावनासे की गई प्रार्थनाओको उसने वार वार जो ठुकरा दिया था, उसका स्मरण आज उसे सौ गुनी वेदना पहुचा रहा था।

रावणने आर्त स्वरमे मन्दोदरीसे कहा "देवी, तू मुझे क्षमा कर देगी न? मेरी यह श्रद्धा है कि तेरी क्षमा मिल जानेसे सीता जैसी महासतीके प्रति किये गये मेरे सहस्रो अपराध भी अवश्य नष्ट हो जायगे। महामानव रामको अव ही मै थोडा पहचान पाया हू। परन्तु इसमे इतना अधिक समय व्यतीत हो चुका है कि अव तो मै तेरे द्वारा ही राम और सीताके पास क्षमाकी अपनी प्रार्थना पहुचा सकता हू। मेरी मृत्यु अव द्वार पर आकर खडी है, परन्तु इसकी मुझे वहुत चिन्ता नही है। चिन्ता मुझे केवल अपने भयकर पापोकी है। कुछ ही क्षणोमे इन सवको मै कैसे जला सकूगा?"

अपनी गोदमे पडे हुए रावणके अगो पर 'माता' के समान वात्सल्यसे हाथ फेरते हुए मन्दोदरीने सान्त्वनाके शब्दोमे कहा

"मेरे हृदयेश्वर, आज मुझे जो आनन्द हो रहा है, उसका वर्णन शब्दोमे नही हो सकता। भगवान शकर और प्रभु रामका मे कितना उपकार मानू?"

शकरके नामसे प्रभावित हुआ रावण वोला "देवी, कल मै तन्द्रामे पडा था उस समय मैने 'पार्वती-परमेश्वर' (शकर-पार्वती) के मानो प्रत्यक्ष दर्शन किये! और उस दर्शनके प्रतापसे ही मुझे अपनी स्थितिका सच्चा भान हुआ। मेरे असख्य दोप आखोके सामने तैरने लगे। मुझे लगा कि 'इस विश्वमे मेरे जैसा अधमसे अधम मनुष्य आज दूसरा कौन होगा?' और मै यहा तेरे पास दौड आया। इस समय तेरा जो प्रेम और आश्वासन मुझे मिला, उसने मुझे इस वातकी प्रतीति करा दी है कि नारी केवल 'पत्नी' ही नही है, परन्तु 'माता' भी है। हे सती, सच कहना केवल स्त्रियोको ही क्षमा और उदारताके सहज सद्गुणोका वरदान परम कृपालु प्रभुने क्यो दिया होगा?"

प्राणनाथ स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर ही संपूर्ण बन सकते हैं। नारीमें यदि कुछ सद्गुण अधिक मात्रामें हैं तो कुछ दुर्गुण भी उसमें अधिक मात्रामें हैं। कभी कभी उत्तम नारीमें भी ईर्ष्या और मर्मभेदी वचन इतने प्रबल हो जाते हैं कि उनके फलस्वरूप विश्वके महा युद्धोंका जन्म होता है। देखिये न स्वयं रामचन्द्रजीकी माता कैकेयी भी इन दुर्गुणोंकी शिकार हो गई थी। अब मैं एक अंतिम प्रार्थना आपसे कर रही हूं हम धूमधामसे सीताजीको ले जाकर स्वेच्छासे रामके चरणोंमें क्यों न सौंप दें?'

महादेवी तेरी प्रार्थनाओंकी मेरे भीतर जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई है उससे मुझे भी ऐसा ही लगता है। परन्तु मैं पहले कह चुका हूं कि ऐसा कुछ करनेका समय अब मेरे लिए नहीं रहा। सती तू जानती है कि लंकाकी प्रजा तथा सेनाको विकृत वैभव विलासकी जो मदिरा मैंने पिलाई है और उनमें जो अंध उत्साह और जोश मैंने पैदा किया है उसके फलस्वरूप दोनों इतनी उत्तेजित हो गई हैं कि मेरे कहनेसे भी अब वे तुरन्त उस मार्गसे लौट नहीं सकेंगी। अब यदि मैं सीताको वापिस लौटानेकी बात करूं तो वे मेरी ही हत्या करनेको तैयार हो जायंगी इतना ही नहीं इससे आगे बढ़ कर वे सीताकी भी हत्या करनेको उद्यत हो जायंगी। तुझे या त्रिजटा जैसी महानारियोंको भी लंकाकी प्रजा और सेना जीवित नहीं छोड़ेंगी। इसलिए यह काम अब मैं तेरे और विभीषणके हाथमें छोड़ जाता हूं। रामके हाथों मरनेका सौभाग्य जब मुझे प्राप्त हो ही गया है तो उसका भी लाभ मैं क्यों छोड़ूं? केवल मरनेसे पूर्व मेरी एकमात्र अभिलाषा तुमसे और तेरे द्वारा राम और सीतासे क्षमा मांगनेकी थी उसे पूरा करके आज तूने मुझे अपना जन्म-जन्मांतरका ऋणी बना लिया है।'

इतना कहते कहते ही रावण एकाएक खड़ा हो गया। रानी मन्दोदरीने उसके कंधे पर हाथ रखा ही था कि रणसिंघेका नाद सुनाई पड़ा। चार आंखें और दो हृदयोंने एक दूसरेका आलिंगन किया। पति-पत्नी एक-दूसरेसे अलग हुए।

क्या यह दोनोका अतिम जीवन्त मिलन था? रानी मन्दोदरीकी आत्मा बोल उठी

"मिलन और विरह इस जगतमे सदा साथ ही रहते है।"

७६

अहिरावण

"पाताल-राज अहिरावण, तुम एकाएक यहा कैसे आ पहुचे?"

"मै तुम्हारी मददके लिए आया हू। सच्चे मित्रकी परीक्षा विपत्तिके समय ही होती है।"

अहिरावण और रावण दोनो मित्र एक ही आसन पर बैठकर बाते करने लगे। कुछ ही देरमे अहिरावणने एक निर्णय किया। रावण भी उसके साथ सम्मत हो गया। निर्णय यह था कि अहिरावण विभीपणके वेशमे रामकी छावनीमे जाये और नीदमे ही राम-लक्ष्मणका अपहरण करके दोनोको पातालमे ले जाय। अहिरावणका यह विश्वास था कि 'राम-लक्ष्मणके वियोगसे व्याकुल हो जानेके कारण रामकी सेनाका उत्साह अपने-आप टूट जायगा और लकाकी लाज रह जायगी।'

अतिम समय तक भी मनुष्यकी क्षुद्र वासनाये कैसे मिथ्या प्रयत्न करती रहती है, इसका यह एक ज्वलन्त प्रमाण है।

अहिरावण राम-लक्ष्मणका अपहरण जरूर कर सका। परन्तु स्थूल शरीरकी अनुपस्थितिमे भी चैतन्यका तेज अपना कार्य करता ही रहता है। हनुमानको तुरन्त पता चल गया कि शत्रुने पड्यत्र किया है। इतनेमे विभीपण वहा आ पहुचे। उन्होने कहा "मेरा वेश धारण करके यहा आनेवाला अहिरावणके सिवा दूसरा कोई नही हो सकता।"

यह बात सुनते ही सैन्यकी सारी व्यवस्था सुग्रीव, अगद तथा विभीपणको सौपकर हनुमान अहिरावणकी पाताल नगरीकी ओर चल पडे। द्वार पर पहुचते ही द्वारपालने उन्हे रोका।

हनुमान "अरे भाई, तू मुझे रोक नही सकता।"

[illegible]   अतिथि राज [illegible] स्वामी (अहिरावण) का आगार
[illegible] म आता। भार [illegible] जाता [illegible]।

द्वारपाल अहिरावण। आता। [illegible] जन्म [illegible]। म अन्त
वान्नरा। आगान भीतर प्रवेश कर सकेगा।

[illegible] आता) [illegible]। [illegible] ना [illegible] न भजाये भ [illegible] का
है।

[illegible] मल्लयुद्ध [illegible] का [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महत
[illegible]। मघनाद जग [illegible] जगनमें दा [illegible] [illegible] [illegible] करनमें
भी जो रात न [illegible] का था इस मल्लयुद्धमें हराने आ[illegible]। हामारा
जग [illegible] योद्धा [illegible] [illegible] हो गय। व [illegible] [illegible] [illegible]
बड़ा [illegible] [illegible] यौनमें [illegible] आई?

इतामें वीर द्वारपाल बोल उठा   जय हनमान जय बजरंग।
इस जयनादसे हनुमान चौंक पड़े। बोले अरे भाई, तू [illegible] हनुमानका
याद करता है? हनुमानसे तेरा क्या सम्बन्ध है?

हनुमान तो अपने नगरके अनोखे योद्धा हैं। मैंने सुना है कि
वे रामके अनन्य भक्त हैं। मैं स्वयं उन हनुमानका ही वीर्यजात
पुत्र हूँ।

यह सुनकर तो हनुमानके आश्चर्यका पार न रहा। अविवाहित
और ब्रह्मचारी हनुमानका पुत्र! फिर भी किसी न किसी कारणसे
उस युवकके प्रति हनुमानके मनमें वात्सल्य उमड़ आता था जिसे अभी
तक उन्होंने दबानेका प्रयत्न किया था। परन्तु अब अपने भीतरके
इस वात्सल्य पर नियन्त्रण रखना उनके लिए कठिन हो गया। वह
द्वारपाल भी इस वात्सल्यके वश हो गया। दोनों (पिता-पुत्र) कुछ
क्षणोंके लिए तो दुनियाकी अन्य सब बातोंको भूलकर एक दूसरेके
प्रेममें डूब गये। द्वारपाल मकरध्वजने अपनी मातासे सुनी हुई संपूर्ण
कथा अपने पितास्वरूप हनुमानको कह सुनाई। हनुमान भी यह बात
सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। पसीनेके द्वारा वीर्यका निकलना
उसका समुद्रमें गिरना और उसी समय एक महानारीका निमित्त मिलना
और उसे गर्भाधान होना। इस अलौकिक संयोगने हनुमानको गहरे

विचारमे डाल दिया। कुछ ही क्षणोमे वे विश्वके कारण और महाकारणकी गहराईमे पहुच गये। ब्रह्मचर्य और वीर्य, ससार और अनासक्ति — जैसे अनेक विचारोके सागरमे नीचे तक गोते लगा आये। वहासे आज उन्हे एक महारत्न प्राप्त हुआ· "गृहस्थ, ब्रह्मचारी या सन्यासी तीनो अपने अपने स्थान पर महान है। कोई न तो केवल ऊचा है और न केवल नीचा है। इसके अतिरिक्त, ऋणानुवन्ध भी कहा और कैसे प्राणियोका सम्वन्ध जोडते है? सव कुछ अद्भुत है।"

मारुति तुरन्त सावधान हो गये और उन्होने द्वारपाल मकरध्वजको उसकी कर्तव्य-निष्ठाके लिए धन्यवाद दिया। द्वारपाल पुनः अपने कर्तव्य पर आरूढ हो गया। हनुमान अपने कर्तव्य पर आरूढ हुए। पिता-पुत्रने सर्व-प्रथम वीररसका आस्वादन किया। उसके पश्चात् वात्सल्य-रसका। और इसके पश्चात् दोनो पुन अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिए युद्धरत हो गये। अन्तमे मकरध्वजको हटाकर हनुमानने नगरीमे प्रवेश किया। वहा राम और लक्ष्मणके आनदित चेहरे उन्हे दिखाई दिये। रामचन्द्र हसते हसते बोले "हनुमान, यहा भी तुम आ पहुचे?"

अहिरावणकी चाल सफल न हुई। राम, लक्ष्मण और हनुमानकी त्रिवेणी फिरसे लकाकी अपनी छावनीमे आ पहुची। तीनोको देखकर सारी सेनामे नये उत्साहका सचार हो गया।

इतनेमें माता मन्दोदरी बोल उठीं — "प्रभु, आपकी इच्छा और अयोध्याका आदर्श लंकाके राज्यतन्त्रकी शुद्धताका निर्माण करेगा।"

माता मन्दोदरीके इस वाक्यका सबने स्वनाद और तालियोंसे स्वागत किया। लंकामें विभीषणके राज्यारोहणकी तैयारियाँ धूमधामसे होने लगीं।

आज सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दिखाई देता था। रामकी विजयके पश्चात् अशोक वाटिका एक सार्वजनिक पवित्र धाम जैसा बन गई। प्रत्येक लंकावासी सवेरे पहले सीताजीको प्रणाम करके धन्यता अनुभव करता था। मन्दोदरी भी बार बार उनके पास आती थी। एक समय कष्टोंकी गंभीर स्थितिका अनुभव करनेवाली जानकीजीको लंका अब परायी नगरी नहीं लगती थी। समयकी कैसी बलिहारी है! अन्तमें तो सत्यशीलकी ही विजय होती है। जिन लंकाजनोंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें राम-सीताका अपमान किया था वे भी सीताजीके चरणोंमें प्रणाम करके हार्दिक पश्चात्ताप कर गये। इस निमित्तसे सारी लंकाकी अकल्पनीय शुद्धि हो गई। शक्ति जब कुमार्ग पर लगती है तब महान अनर्थको जन्म देती है, परन्तु जब वह सुमार्ग पर चलती है तब महान अनर्थको तुरन्त मिटा भी सकती है।

राम रावणका युद्ध आरम्भ हुआ उससे पहले ही लंकाकी सामान्य प्रजाका मानस बदलने लगा था। बादमें तो दिनोंदिन यह मानस अधिकाधिक रामके अनुकूल बनता गया। इसका प्रभाव अशोक वाटिका पर पड़े बिना कैसे रहता? केवल त्रिजटा ही नहीं, परन्तु अब तो अनेक राक्षसियाँ माताजीके पास आतीं, उनकी सेवाके लिए तत्पर रहतीं और राम रावण-युद्धकी छोटीसे छोटी घटनाओंसे भी सीताजीको परिचित करा देती थीं। जानकीकी दृष्टिमें तो राम और लक्ष्मणके समाचार पहुँचाना ही राक्षसियोंकी मुख्य सेवा थी। राम रावणके युद्धमें कितने ही चढ़ाव और उतार आये और चले गये। परन्तु जिस दिन लक्ष्मणकी मूर्च्छाकी बात सुनी उस दिन तो मानो माताजीके प्राण भी उड़नेकी तैयारी करने लगे! इस समय माताके नाते लक्ष्मणकी सेवा-शुश्रूषा न कर पानेका उन्हें बड़ा दुःख हुआ और स्वर्ण मृग पर मोहित

होनेकी अपनी भयकर गलती उन्हे अतिशय खलने लगी। परन्तु जब उन्होने सुना कि हनुमानजी औषधि लानेमे सफल हो गये और लक्ष्मणकी मूर्च्छा दूर हो गई, तब उनके हर्षका पार न रहा। हनुमानजीके उपकारोको याद करके उनके नेत्रोसे हर्षाश्रु बहने लगे। फिर तो मेघनाद, कुभकर्ण और रावण भी युद्धमे मारे गये। और अन्तमें विभीषणके राज्यारोहणकी मगल घोषणा हुई।

सीताजी मन ही मन इन सब बातो पर सोच रही थी, इसी बीच एक मस्तक नम्रतासे उनके चरणोमे झुक गया। वह किसका मस्तक था? विभीषणका। लकाके राज्यारोहणके निमित्तसे वे सर्व-प्रथम सीताजीके चरणोमे वन्दना करने आये थे। बोले "माताजी, अपने इस वत्सको आशीर्वाद दीजिये।" मदोदरीने भी सीताजीको अभिवादन किया। इस अतिशय सम्मानसे अकुलाकर वे बोली "मैं तो नारी-जातिकी एक सामान्य सदस्या हू। विश्वकी नारी-जातिको लकाका राज्यतत्र अभिवादन करता है, यह देखकर मेरा हृदय हर्षसे नाच उठता है। परन्तु दूसरी दृष्टिसे मैंने अपना स्वतत्र व्यक्तित्व रखा ही नही है। इसलिए रामके चरणोमे अर्पित अभिवादनोमे मेरा अभिवादन आ ही जाता है। राम नरश्रेष्ठके रूपमे जैसे सर्व-पुरुष हैं, उसी प्रकार नारीश्वरके रूपमे जगदम्बा-पदके भी वे ही अधिकारी हैं।"

"माताजी, आपकी दृष्टिसे तो यही उचित है। परन्तु हमारे जैसे लोगोके लिए, स्थूल आखोसे देखनेवालोके लिए, तो मातृ-शरीरमे स्थित मातृत्वकी सर्व-प्रथम वन्दना ही अधिक आकर्षित करनेवाली है और ऊचा उठानेवाली है।"

विभीषणके इन वचनो पर आगे कोई चर्चा न करके रामकी अर्धांगिनीके नाते सीताजीने अपने वरद हस्त विभीषणके मस्तक पर रख दिये। तुरन्त आसपास खडे सब नगरजनोने पुष्पवर्षा की और हर्षके जयनादसे वातावरणको भर दिया। इस घटनासे समस्त लकामे आनन्द छा गया। रामकी छावनीमे भी हर्षकी लहर दौड गई।

अब विभीषण राजमाता मदोदरीके साथ सीधे रामचन्द्रके पास आये और उनके चरणोमें उन्होने दडवत् प्रणाम किया। राम विभी-

पाँव पैदल ही रामके साथ आये थे। मित्र विभीषण मेरे अपने आत्मीयोंमें तो मुख्य मित्र भी बन गये हैं। अब मैं इन्हें पूरा कर रहा हूँ। इतना कहकर उन्होंने दोनों हाथ ऊँचे किये। तुरन्त सब लोग प्रत्येकका सिर नीचे झुक गया। मंगल वचनोंका उच्चार हुआ। माता मन्दोदरी राज्य-अभिषेकमें राजमाताकी तरह सम्मानपूर्वक सबकी इस प्रकार प्रजाने विभीषणका राज्यका अभिषेक विधिमें सम्मानपूर्वक अपने साथ स्वीकार किया हो था।

उस समय भगवान रामचन्द्रने कहा — सुग्रीवजी, हनुमानजी, जाम्बवन्तजी, अंगदजी और लक्ष्मण! तुम सब जाकर विभीषणके राज्यारोहणकी विधि पूरी कर आओ।

रामके ये वचन सुनकर कुछ समय लिए तो सब स्तब्ध रह गये। माता मन्दोदरी तथा विभीषणके प्रति अपनी ममताके कारण उन सबको लगा कि भगवान रामको भी इस शुभ विधिमें सम्मिलित होना चाहिये।

सबमें हनुमान साहस करके आगे आये और भक्तिभावसे रामके चरणोंमें प्रणाम करके बोले — भगवन् हम सब तो जायेंगे ही। हमारे परम मित्र विभीषणके राज्यारोहणके शुभ अवसर पर किसका मन आनन्दित नहीं होगा? परन्तु प्रभु क्या आप नहीं पधारेंगे? इसीलिए तो आपके न चलनेसे माता मन्दोदरी और विभीषण दोनों बड़े उदास हो गये हैं! हनुमानकी बात सबको पसन्द आई। सब भगवान रामके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे।

शांत और सौम्य वाणीमें भगवान राम बोले — मेरे परम प्रिय साथियो! मैं बिना कहे तुम सबकी अन्तरेच्छाको समझ गया था। मेरे परम मित्र विभीषणके मनकी तीव्र इच्छाको भी मैं अच्छी तरह जान सकता हूँ। सती मन्दोदरीके अन्तःकरणको भी समझ सकता हूँ। लंकाकी सामान्य जनतासे मिलनेकी अभिलाषा मेरे मनमें उत्पन्न हो यह भी स्वाभाविक है। क्योंकि युद्धके सब प्रत्याघात मिट जायें और साकेत तथा लंकाके बीच मीठे सम्बन्ध स्थापित हों ऐसा प्रयत्न करना मेरा भी कर्तव्य है। यह सब होते हुए भी आप सबको समझ लेना

चाहिये कि मैं अयोध्याको छोड़कर चौदह वर्षके लिए वनवास करने आया हुआ एक तापस हू। आज मेरा मुख्य धर्म तापस-धर्म है। मित्रधर्म और दूसरी सब बाते इस मुख्य और विशिष्ट धर्मके सामने गौण बन जाती है। विशेष कर्तव्य उत्पन्न होने पर अन्य सारे सामान्य कर्तव्योको छोड देना पडता है। तुम सब भी तो इसी मार्गमे प्राप्त हुए मेरे धर्मसाथी हो। देखो न, वालि पर मुझे स्वय प्रहार करके उसका वध करना ही पडा। उससे मुझे कितना दु ख हुआ? अन्तमे वालिने भी मेरे उस दु खको समझा, यह परमात्माकी दया थी। उसीके फलस्वरूप वालिका पुत्र अगद आज मेरा श्रेष्ठ विश्वसनीय साथी बन गया है। भाई हनुमान, तुम तो मेरे लिए प्राणप्रिय पुत्रके समान हो। इसीलिए मुझे आश्चर्य होता है कि इतने ज्ञानी होते हुए भी तुमने यह प्रस्ताव मेरे सामने कैसे रखा? लेकिन कोई बात नही। मै समझ सकता हू कि जब स्नेहकी सरितामे पूर आता है तब मनुष्य कभी कभी भावनाके प्रवाहमे बह जाता है। परन्तु मुझे विश्वास है कि तुम मेरी इस बातको सबमे पहले समझ लोगे।

"सती मदोदरीजी और विभीषणजी, आप आनन्दसे जाइये। आपके साथ और लकाजनोके साथ मेरी हार्दिक शुभ कामनाये है और आगे भी रहेगी, इसका विश्वास दिलानेकी आवश्यकता नही है। प्रिय लक्ष्मण, तुम सीतासे मेरा सन्देश कहना कि 'तुम सती मदोदरीजीके साथ ही रहकर लकाके राज्य-सिहासन पर आरूढ हो रहे विभीषणजीको अपनी शुभेच्छाये देना। मेरी सकारण अनुपस्थितिको समझकर मेरे प्रतिनिधिके नाते तुम वहा उपस्थित रहना।' और लकाजनोको मेरी ओरसे कहना कि 'रामने लकाकी समस्त प्रजासे यह प्रार्थना की है कि वह अपने मनकी सारी दुर्बलताको दूर कर दे। धन-पूजाके मार्ग पर वर्षोसे चल रही लका नगरी अब धनकी प्रतिष्ठाको तोडकर श्रम और नीतिको प्रतिष्ठा प्रदान करे और विश्वमें अपने यशको उज्ज्वल बनावे!' साथ ही यह भी कहना कि 'रामके साकेत लौटनेके बाद अवधपुरीके राज्यतत्रका नैतिक समर्थन नीति-परायण लकाको सदा ही प्राप्त होता रहेगा।'"

जब विभीषणके मनमें जरा भी गर्व न रहा। रामके व्यक्तिगत प्रतिनिधिके रूपमें जानकीजी राज्यारोहणके समारंभमें उपस्थित रहेंगी, यह जानकर सबके मनमें रामके स्वयं पधारने जैसा ही आनन्द हुआ। रामने सबको उत्साहपूर्वक जानेकी अनुमति दी। सेनाके प्रमुख मंत्रियोंको भी जानेकी आज्ञा मिल गई। परन्तु रामको बिलकुल एकाकी छोड़नेके लिए साथी तैयार न हुए। इसीलिए दो एक विश्वस्त सेवकोंको रामके पास रखकर सबने लंकाकी दिशामें प्रस्थान किया। यह समाचार वायुकी गतिसे लंकामें फैल गया और लंकामें आनन्दका सागर उमड़ आया। मार्गमें हनुमान अकेले ही गहरे विचारोंमें डूबे डूबे सबके साथ धीमी गतिसे चल रहे थे। उन्हें वह दिन याद आया जब विभीषण पहले-पहल रामकी सेनिक छावनीमें आये थे और सबके मन उनके प्रति शंकाशील हो गये थे। इसीके साथ उस समय भगवान रामने जो उदारता और सावधानी बताई वह भी उन्हें याद आई। मन ही मन वे बोले　वस योगापुरुष रामचन्द्रकी सर्वश्रेष्ठता यही है। वे छोटेसे छोटे प्रसंगको भी सदधर्मकी कसौटी पर चढ़ाकर ही उसका विचार करते हैं। उनकी वाणी और आचरणके बारेमें भी यही बात लागू होती है। समाजके प्रचण्ड प्रवाहके बीच भी वे स्थिर और अविचल रह सकते हैं। इसीलिए राम आजके विश्वके युग-पुरुष हैं।

सीतामाता और रानी मंदोदरीकी उपस्थितिमें बड़ी धूमधामसे विभीषणके राज्यारोहणकी विधि निर्विघ्न पूरी हुई। राजा विभीषणने साथ लंकाके सब नागरिकोंने रावणके राज्यकालमें सीताजीका जो अपमान हुआ और उन्हें जो कष्ट और यातनायें भोगनी पड़ी उन सबके लिए लंका राज्यकी समूची प्रजाकी ओरसे हृदयसे क्षमा-याचना की।

माताजीने इसका सुन्दर उत्तर दिया　कुन्दनकी परीक्षा इस संसारमें सदासे होती ही आई है। फिर भी इसके निमित्त बननेवाले आप सबके हृदयमें पश्चात्तापकी भावना पैदा हुई है　इसमें लंकाके उज्ज्वल भविष्यका शुभ लक्षण मानती हूँ। मेरे हृदयमें भी इस अवसर पर लंकाकी प्रजाके लिए अनोखा प्रेम उमड़ आया है। भूतकालके स्मरणोंको हम सब भूल जायं और भारतवर्षके एक अंगके रूपमें आपका

राष्ट्र अयोध्याका मित्र वनकर रहना चाहता है इसे परम तत्त्वरूप भगवानकी कृपा माने। आप सव पर भगवानकी कृपा और प्रभु रामके आशीर्वाद वरसे।"

इस समारोहके वाद जानकी तुरन्त अशोक वाटिकामे चली गई। राजमाताने उनसे राज-महलमे रहनेका आग्रह किया। किन्तु सीताजीने उसे प्रेमसे अस्वीकार करते हुए कहा "भगवान रामके दर्शन मुझे हो जाय और उनकी आज्ञा मिल जाय, तो महलमे रहनेमे भी मुझे कोई आपत्ति नही होगी। परन्तु अभी तो सव दृष्टियोसे अशोक वाटिका ही मेरे लिए सुयोग्य निवास-स्थान माना जायगा।"

जगदम्वा-स्वरूप जानकीजीकी इस इच्छाका सवने आदर किया और वे अशोक वाटिकामे लौट गई।

इस ओर विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, लक्ष्मण आदि पुनः रामके पास आ पहुचे और उन्हे राज्यारोहणसे सम्बन्धित सारी वाते सुनाने लगे।

रामने छोटे-वडे सारे सैनिकोकी एक सभा की और उनके सामने कहा "आजकी इस सभामे सवसे पहले तो मै अपने मित्र विभीपणको हजारो धन्यवाद दूगा। उसके वाद उनसे और आप सवसे मै कहूगा कि आप इस युद्धमे प्राप्त विजयका श्रेय जो मुझे देते है, वह आपके लिए शोभाकी ही वात है। हमारे राष्ट्रकी सस्कृतिकी विशेषता इसी वातमे है कि हम किसी कार्यमे प्राप्त यशके भागी तो दूसरोको — वस्तुत· ईश्वरको — मानते है और अपयशके भागी स्वय अपनेको — अथवा अपने कर्मोको — मानते है। इससे हमारे पुरुषार्थ — प्रयत्नमे अभिमानकी भावना नही पैठती और हमारी नम्रता बढती है। मेरे लिए भी यही नियम सत्य है। केवल शिष्टाचारके लिए मै ऐसा नही कहता, परन्तु सत्य यही है कि मै जो कुछ हू वह आप सवके सहयोगके कारण ही हू। वडीसे वडी शक्तिशाली आत्मा भी शरीरकी मर्यादाके कारण अपने-आपमे मर्यादित वन जाती है। इसलिए देहधारी मनुष्यको किसी भी क्षण यह नही भूलना चाहिये कि उसकी प्रगति उसके छोटे-वडे साथियोके सहयोगसे ही होती है। मेरा विश्वास है कि इस विजयके इतिहासके

साथ आप सब सनिकाकी सहायता तथा विभीषण आदि लकावासियाकी सहायता भी चिरस्मरणीय रहेगी । परम कृपालु भगवान हम सबको सदा नम्र सत्यनिष्ठ और उदार बनाय रख ! '

रामचद्रक एस नम्र और आत्मस्पर्शी वचन सुनकर सब पर अद भुत प्रभाव हुआ । ऐसे सुदर सहयोग और छोटे बडक भदभावसे रहित वातावरणके बीच हनुमानने एकाएक आकर रामके चरणामें सिर झुकाया । भगवान राम तुरन्त उनके आनका हेतु समझ गय । वे बाले जाओ भाई, विभीषणके साथ तुम अकेले ही जाआ । पहले जाकर तुम्हारी माता जानकीजाको सब कुशल-समाचार सुनाना और बादमें उ हे आदरपूर्वक यहा ल आना। अब यह विधि पूरी की जा सकती है। '

प्रत्यक सनिकक मनमें उमग उठी कि मुझे भी जानकाजाके प्रत्यागमनके इस महा समारभमें भाग लनका सुअवसर मिल तो कितना अच्छा हो। इतनमें स्वय राम ही बाल पडे जिनकी इच्छा हो वे सब इस अवसर पर लकामें जा सकत ह। फिर क्या पूछना था? सारा लका नगरीमें विभीषणके राज्यारोहणसे भी अधिक आनद फल गया। सवत्र सीताजीको धूमधामस विदा करनेकी तयारिया होन लगी। दिव्यगण भी इस अवसरकी प्रतीक्षामें ही बैठ थे । दिव्य विमानोस पुष्पवृष्टि होने लगी। चारा आर मगल भविष्यवाणिया सुनाई पडती थी। समूचा विश्व आज जगदम्बा सीताके स्वागतके लिए व्यक्त अथवा अव्यक्त रूपमें आनन्दसे नाच रहा था।

७९

लंकामे सीता-विरह

जिस लकामे एक क्षणके लिए भी रहना सीताजीके लिए असह्य था, वही लका आज मिथिला जैसी हो गई थी। उनका हृदय रामके पास जानेके लिए थिरक रहा था और मनमे वे भारी परेशानी अनुभव कर रही थी। लकामे राजा विभीपणके राज्याभिपेकके समारोहसे भी वडे समारोहका आयोजन सीताजीको विदा करते समय किया गया था, परन्तु प्रत्येक लकावासीका हृदय विरहकी वेदनासे व्याकुल हो रहा था। लकाकी स्त्रिया और वालक तो सिसकिया लेकर रोने लगे थे। सती मदोदरी और सेविका त्रिजटाके जीवनमे आज कोई आनन्द ही नही रह गया था। उस विराट् समारोहमे लकावासियोकी ओरसे राजा विभीपण इतना ही वोल सके

"जगदम्वा जानकीजी, मेरे वडे भाईके जीवन-कालमे उनके कारण लकासे जो भारी अपराध हुआ, वह जगतके इतिहाससे कव मिटेगा यह भगवान जाने। परन्तु इस सेवकको इतना विश्वास है कि आप और प्रभु राम उस अपराधको अयोध्याके लोक-हृदयसे अवश्य मिटा देगे। इसके लिए अपना प्रायश्चित्त मैने किया है, वडे भैयाका प्राय-श्चित्त उनके पश्चात् माता मदोदरीजीने किया है। लकाने भी इस भयकर अपराधका प्रायश्चित्त यथाशक्ति किया है। फिर भी यदि कुछ करना वाकी हो, तो आज भी लका उसे करनेके लिए तैयार है।" इतना कहते कहते विभीपणकी आखे छलछला आई। सारी सभा उनके साथ रो पडी। वातावरण करुण वन गया। विभीषणने सीताजीके चरणोमे मस्तक नवाया और उन्हे आसुओसे धो दिया।

सीताजीने अपने हाथसे उनके आसू पोछे। कुछ क्षणके लिए वातावरणमे पुन स्तव्धता छा गई। फिर सीताजी वोली

"यह अवसर भाषण करनेका नही है। अपराधके प्रायश्चित्तकी वात भी अव लका भूल जाय। आज तो लका मेरी मातृभूमि—

मेरी पीहर बन गई है। लंकाका एक भी मनुष्य आज मेरे लिए पराया नहीं है सारी लंका मुझे आज अपनी लगती है। जो धरती एक क्षण पूर्व ऊसर थी वह दूसरे ही क्षण उर्वर बाग बन जाय — कुछ इसी प्रकारका चमत्कार परम कृपालु परमात्माने यहां प्रत्यक्ष कर दिखाया है। हम सब इस आनंदमयताका लाभ उठाये और भूतकालका दुःखद वातावरण भूल जाय। हम सब एक ही परमात्माकी संसार-लीलाके विविध पात्र है। अंतमें तो हम सब उसी परमात्मामें लीन होनेवाले है। वहां रावण विभीषण और रामके भेद भी नहीं रहेंगे, जिस प्रकार शूर्पणखा मंदोदरी अथवा सीताके भेद नहीं रह जायगे। मैं तो इतना ही समझ सकता हूँ कि जिसका अंत अच्छा है उसका सब कुछ अच्छा है।'

माताजीके इन उद्गारोंसे सबके हृदयमें नये प्राणोंका संचार हुआ। धीरे धीरे वातावरण पुनः उल्लाससे भर गया। समारोहकी पूर्णाहुति हुई परंतु कोई सभास्थानसे गया नहीं। सबने अपने अपने स्थान पर खड़े रहकर जानकीजीके यथेच्छ दर्शन किये।

अब जानकीजी व्यासपीठ पर खड़ी हुई। उन्होंने सबको नमस्कार किया और सबसे विदा मांगी।

मंच परसे सीताजी उतरी कि सबने उन्हें जानेका मार्ग दे दिया। बीचमें माताजी थी। उनकी एक ओर माता मंदोदरी थी तथा दूसरी ओर त्रिजटा चल रही थी। उनके पीछे लक्ष्मण हनुमान और विभीषण चल रहे थे। इनके पीछे लंकाका नारी-समाज और उसके पीछे पुरुष समाज चल रहा था। वह कैसा अनुपम दृश्य था! सब लोग अनुशासन बद्ध होकर सभासे बाहर आये। इस दृश्यको देखनेके लिए चारों दिशाओंमें मानव-समुदाय उमड़ पड़ा था।

जगतके असुरोंकी असुरताका अंत होने लगा। देवोंकी दिव्यताका प्रकाश फैलने लगा। दसों दिशाओं आकाश पवन तथा आसपासकी सृष्टिने अनोखी शोभा धारण कर ली।

८०

सतीका अग्नि-प्रवेश

भगवान रामचन्द्रका प्रत्यक्ष दर्शन करनेको एक लम्बा समय हो चुका था। एक क्षणका भी वियोग न सह सकनेके कारण अयोध्याके स्वजनोको छोडकर सीताजी रामके साथ वनमे आई थी। परन्तु विधाताकी रचनाके सामने किसी मनुष्यका सोचा कब पूरा होता है? यह भी उतना ही सच है कि यदि जगतमे मनुष्यका सोचा होता, तो न मालूम वह क्या क्या कर डालता! केवल रामका नाम ही जो रात-दिन जपा करती थी, रामकी मुद्रिका देखकर भी जिन्हे रामके प्रत्यक्ष दर्शन जैसा हर्ष हुआ था, उन सीताजीको आज अपने प्राणनाथका प्रत्यक्ष दर्शन होनेवाला था। उनके लोचन रामको देखनेके लिए कितने आतुर थे! जब रामका दर्शन सीताको हुआ उस समय चारो आखे एक-दूसरेमे जैसे एकरूप हो गई। मानो मिथिलाकी वाटिकाका वह दृश्य फिरसे स्मृतिमे घूम गया, जब स्वयवरके समय राम मिथिला गये थे और वाटिकामे राम-सीताकी आखोका मौन मिलन हुआ था। परन्तु रसका पूरा प्याला जीवनमे किसीको पीनेका सौभाग्य नही मिलता।

एकाएक राम बोल उठे: "देवि, तुम्हारे शीलकी शुद्धिका प्रमाण तुम्हे सत्यदेवको साक्षी रखकर जनताके सामने देना चाहिये।"

रामके वचन सुनकर पहले तो सीताको गहरा आघात लगा। उन्होने सोचा "क्या प्रभु रामको भी मेरे सतीत्वके बारेमे शंका है?" तुरन्त मनने विरोध किया: "नही, स्वप्नमे भी ऐसा नही हो सकता। यदि मेरे मनमें रामके चरित्रके विषयमे कभी शका घुस ही नही सकती, तो मेरे चरित्रके विषयमे भी रामको कभी अश्रद्धा हो ही नही सकती। तब क्या राम लोगोकी अस्पष्ट शंकाओका समाधान करनेके लिए मेरी परीक्षा लेना चाहते होगे? ठीक ही है। लोगोकी अस्पष्ट मनोदशामे उत्पन्न शकाओ और भ्रमोका निराकरण कभी शब्दोकी सफाईसे नही

होना। परन्तु इन सब बातोंका विचार मुझे नहीं करना चाहिये। शास्त्रका पढ़नेवाली बात मुझसे ही सम्बन्ध रखती है इसलिए इस सत्यको प्रकट करनेके लिए मुझे शास्त्रका सहारा नहीं लेना चाहिये।

और उन्होंने रामसे कहा प्रभु मेरे सत्य और शीलका प्रमाण अग्निदेव ही हैं यह मुझे अच्छा लगता।

लक्ष्मणने रामकी ओर देखा। भगवान रामकी स्वीकृति पाकर उन्होंने तुरन्त माताजीकी इच्छाका पालन किया। लकड़ियोंका ढेर लगा दिया गया। उसमें अग्नि प्रज्वलित हुई। माताजीने सबको नमस्कार किया। एक क्षणके लिए उन्होंने ऊपर आकाशकी ओर देखा। फिर अग्निको नमस्कार करके बोली "अग्निदेव यदि मन वचन और कर्मसे राघवके अतिरिक्त किसी पर-पुरुषको मन विषयकी दृष्टिसे विचार किया हो तो आप मेरे इस शरीरको भस्म कर देना। नहीं तो मेरी पूरी तरह रक्षा करके जगतको मेरे सच्चे शील और सत्यका प्रमाण देना। मुझे आपमें संपूर्ण श्रद्धा है।"

इन उद्गारोंसे सबकी आंखें और हृदय भीग गये। सीताजीके सच्चे शीलके बारेमें लोगोंकी जो श्रद्धा थी उसे इन उद्गारोंने और दृढ़ बना दिया। 'माताजी, आगमें प्रवेश न कीजिये' ये शब्द लोगोंके मुंहसे निकलें न निकलें कि जानकीजी लपलपाती आगकी लपटोंके बीच कूद पड़ीं।

परन्तु कुछ ही देरमें ऐसी घटना घटी जिसे बुद्धिसे समझना संभव नहीं था। सबके आश्चर्यके बीच सीताजी जैसी भीतर गई थीं वैसी ही बिना जले—बिना झुलसे—सकुशल बाहर निकल आईं। उनका बाल भी बांका न हुआ।

करानी है। इसलिए मेरा मन कहता है कि मुझे तुरन्त जाकर अयोध्याका कामकाज अपने हाथमें ले लेना चाहिये।

विभीषण समझ गये। उन्होंने तुरन्त ही आभूषणों और सुन्दर वस्त्रोंसे भरा एक विमान बुलाया। रामने आज्ञा दी, "लक्ष्मण और हनुमानजी, तुम दोनों और विभीषणजी सब सैनिकोंमें ये आभूषण और वस्त्र बांट दें।" अन्तमें आनाकानी करनेवाले सब सैनिकोंसे रामने प्रेमसे कहा, "आप सबने हृदयसे मेरा जो साथ दिया, मृत्युके भय और स्वार्थके लोभसे दूर रहकर आप लोगोंने जो काम कर दिखाया, उसका बदला मैं या अन्य कोई कभी चुका नहीं सकता। परन्तु प्रेमाके रूपमें आपमें से हरएक कुछ न कुछ स्वीकार करके मेरे मित्र विभीषणका सम्मान बढ़ायें, यह मेरी आन्तरिक इच्छा है।"

भगवान रामके स्नेहसिक्त वचन, लक्ष्मण और हनुमानका प्रेमपूर्ण आग्रह तथा राजा विभीषणके मानवतापूर्ण हृदयको देखकर इच्छा न होने हुए भी प्रत्येक सैनिकने कोई न कोई वस्तु ले ली।

अब आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। अयोध्या जानेके लिए पुष्पक विमान आकर उपस्थित हो गया। कुछेक मुख्य वानर रीछ साथियों, परम भक्त हनुमानजी, लक्ष्मणजी, जानकीजी तथा भगवान रामको लेकर विमान घररर ... ररर आवाजके साथ ऊंचा उठा और आकाशमें उड़ने लगा।

समस्त लंकावासी तथा सुग्रीवकी सेना ऊंचे गिरि शिखरों पर चढ़कर तब तक पुष्पक विमानको देखते रहे जब तक वह आंखोंसे ओझल न हो गया। अन्तमें लंकावासियोंने लंकाकी दिशामें और सुग्रीवके सैनिकोंने किष्किंधाकी दिशामें यह धुन गाते गाते प्रयाण किया

राम लक्ष्मण जानकी
जय बोलो हनुमानकी!

सबके मनमें यह विचार रह रहकर उठा करता था, "जो लोग रामचन्द्रजीके समान जीवन्मुक्त महापुरुषके साथ रात दिन रहते हैं वे कितने भाग्यशाली हैं! वह भूमि धन्य है जिस पर ऐसी परम विभूतियोंके चरण पड़ते हैं।"

भरतकी व्याकुलता

आज नदीग्राममे दर्भासन पर आसन लगाकर एक महामानव बैठा है। उसके सिर पर जटाओका मुकुट है। उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया है, परन्तु उसके मुख पर अनोखा तेज चमक रहा है। देखनेवालोको कभी तो वह योगी जैसा दिखाई देता है और कभी राजपुरुप जैसा मालूम होता है। उसकी आखे वन्द है, परन्तु उनमे से आसूकी धारा वह रही है। यह ध्यानस्थ पुरुष आत्माका नही, किन्तु किसी देहधारीका चिन्तन कर रहा है। थोडी थोडी देरमे उसके होठोसे धीमा स्वर फूटता रहता है "हे राम, हे माता जानकी, . . हे लक्ष्मण कव आओगे ?"

कुछ समय वाद स्पष्ट आवाजमे सुनाई देता है "मै पापी हू, महापापी हू। चौदह वर्प वीतनेको आये है। आज निर्धारित अवधिका अतिम दिन है। परन्तु अभी तक तीनोके कोई भी समाचार नही मिले! क्या रामने मुझे विलकुल छोड दिया है? केवल मुझे सान्त्वना देनेके लिए ही क्या राम वे पादुकाये दे गये होगे? अहा भाई लक्ष्मण, तुम कितने भाग्यशाली हो? तुम्हे प्रतिदिन राम और सीताके दर्शन होते हैं। रात-दिन तुम रामकी सेवामे लगे रहते हो। मै ही एक ऐसा अभागा हू, जिसे वर्पोसे रामके दर्शन तो क्या, समाचार भी एक ही वार मिले है। और वह भी कैसी परिस्थितिमे? वे हनुमानजी भी कैसे उपकारी है? इस पापीके बाणका वदला उन्होने रामके समाचार सुनाकर चुकाया!"

भरतके मनमें रामके विरहकी व्यथाका यह चिन्तन चल रहा था, उसी समय उनके सामने एक आकृति आकर खडी हो गई। वे थे रामभक्त हनुमान।

लकाके सागर-तटसे रवाना हुआ विमान मार्गमे विश्राम करते करते और ऋपि-मुनियो, तीर्थस्थलो तथा शवरी, जटायु और गुह जैसे

भक्तोंके स्मरणीय स्थानोंका दर्शन और परिचय प्राप्त करते करते अयोध्याके समीप आ पहुंचा था। भगवान रामने अपने आगमनके समाचार सुनानेके लिए भक्त शिरोमणि हनुमानको पहलेसे ही भेज दिया था। भरतकी स्थितिको देखकर क्षण भरके लिए तो हनुमान गदगद हो गये। उन्होंने सोचा — जो वस्तु सदा हमारे पास रहती है वह कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, उसकी कीमत हम नहीं समझते। विरहीके दुःखको विरहका दुःख स्वयं भोगे बिना हम नहीं समझ सकते। इसके साथ ही यह खयाल हनुमानको चिंतातुर बनाने लगा कि मैं स्वयं जब भगवान रामसे अलग पड़ूंगा तब मेरी क्या स्थिति होगी। परंतु आज जो लाभ मिला है उसे भूलकर कलकी चिन्ता क्या की जाय — इस विचारके मनमें उठते ही हनुमान बोले — भरतजी, आप महा भाग्यशाली हैं। और आजसे भी अधिक भाग्यशाली आप बननेवाले हैं। राम, सीता, लक्ष्मण और अन्य मित्र कल प्रातःकाल पुनीत अयोध्या नगरीमें प्रवेश करेंगे। ये समाचार आपको सुनानेके लिए भगवान रामने ही मुझे आपके पास भेजा है।

ये शब्द सुनते ही भरतजी उठे और हनुमानको उन्होंने अपने बाहुपाशमें बांध लिया। परस्पर हृदयालिंगनने दोनोंको कुछ क्षणोंके लिए तो स्थल-भान भुला दिया। फिर दोनों शांत स्वस्थ मनसे बैठ गये। उस समय मुख अथवा वाणीकी अपेक्षा आंखें और हृदय पलभरमें मनकी गूढ़ बातें एक-दूसरेके सामने प्रकट कर देते हैं। फिर क्या पूछना?

सारी अयोध्यामें थोड़ेसे समयमें राम, सीता और लक्ष्मणके आगमनकी बात फैल गई। नागरिक दलके दल भरतकी पर्णकुटीकी ओर चल पड़े। भरत और हनुमान दोनों कुटीसे बाहर आये। सबको मार्गमें रामके शुभ-समाचार सुनाकर दोनों कौशल्या माताके भवनमें पहुंचे। माता सुमित्रा और माता कैकेयी तथा माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति भी वहां आ पहुंची थीं। सम्पूर्ण शासन प्रदेश राम-आगमनके आनन्दप्रद समाचारसे गूंज उठा। सब कोई स्वागतकी अनेकविध तैयारियोंमें लग गये। चौदह वर्षके बाद राम अयोध्यामें पधार रहे थे। रामके आगमनका उत्सव कैसा अनुपम होगा इस विचारसे आबाल-वृद्ध सब नागरिक

हृदय नाच उठे। एक समय वह भी था जब पिता दशरथजीको मूर्च्छाकी अवस्थामे छोडकर और मथरा तथा कैकेयीके अतिरिक्त सबको रुलाकर रामको वनमे जाना पडा था। परन्तु आज पिता दशरथकी आत्मा तथा प्रत्येक अयोध्यावासीका हृदय हस रहा था, हर्षसे नाच रहा था।

स्वधर्मका निरन्तर कठोर पालन अन्तमे सबके निरपवाद आनन्दका रूप लेता ही है।

८३

रामका अयोध्यामे प्रवेश

हजारो लोगोके हर्षनादोके बीच भगवान रामचन्द्रने अयोध्या नगरीमे प्रवेश किया। ऐसा एक भी मनुष्य नही था, जिसे आजका दिन पर्व जैसा पवित्र न लगा हो। रामचन्द्रजी भगवान तो इसलिए कहलाते थे कि वे सबके हृदयो पर समान प्रभाव डाल सकते थे। अपनी मीठी नजर घुमाकर वे अनजान और अपरिचित लोगोकी आत्माके भी स्वामी बन जाते थे। आज तो वे अपनी जन्मभूमिमे आ गये थे। इस कारण सुग्रीव, हनुमान आदि साथियोको साकेतकी हर्षोन्मत्त बनी हुई प्रजाको देखनेका अलभ्य लाभ मिला था।

सबसे पहले राघवने अपने गुरुदेव श्री वशिष्ठजीके चरणोमे भक्ति-भावसे प्रणाम किया और उनकी पदरज अपने सिर पर चढाई। भरतका हृदय रामसे मिलनेके लिए अधीर बन गया था। उनका रोम रोम खिल उठा था। उनकी आखोसे हर्षके आसू बहने लगे थे। अवकाश मिलते ही भरतने रामके चरण-कमलोमें दण्डवत् प्रणाम किया। रामने दोनो हाथोसे भरतको उठाया और दोनोके हृदयोका मिलन हुआ। भरत और रामकी भेंटका आनन्द शब्दोमे कैसे प्रकट किया जाय? सुग्रीवको दोनो भ्राताओ-का यह प्रेम-मिलन देखकर आश्चर्य हुआ। ऐसा उत्कट भातृप्रेम उन्होने जीवनमें पहली बार ही देखा। सपूर्ण अयोध्यामें और समस्त साकेतमें आज स्नेहका सागर छलक उठा था।

ऐसे समय भी योगी रामचन्द्रजी अपने स्वधर्मको कैसे भूल सकते थे? उन्होंने गुरुदेव वशिष्ठ तथा प्रजाजनोंसे भरतके राज्य-संचालनके दिनोंमें घटी उल्लेखनीय घटनाओंके विषयमें पूछताछ करके सब कुछ जान लिया। भरतने सफलतापूर्वक राज्य-संचालन किया इसके लिए रामने नागरिकोंकी भरी सभामें अपना हार्दिक सन्तोष प्रकट किया तथा इसके लिए भरतकी तथा प्रजाजनोंकी उन्होंने प्रशंसा की। उन्होंने यह भी कहा कि यह गुरुदेव वशिष्ठजीकी कृपाका ही प्रभाव और प्रताप है।

गुरु वशिष्ठने सभामें कहा — रघुवीर, सच कहूं तो इस सबके पीछे तुम्हारा ही प्रभाव काम करता रहा है। भरतके विषयमें प्रजाके मनमें अनेक शंकायें थीं। उन सबको दूर करनेमें भरतके प्रति तुम्हारे उस प्रेमका मुख्य हाथ रहा जिसका तुमने अरण्यमें भव्य दर्शन कराया था। उसके फलस्वरूप प्रजाका सहयोग दिनोंदिन बढ़ता गया। भरतने साधना संयम और आत्मत्यागका जो उदाहरण प्रजाके समक्ष रखा उसका राज्यके अधिकारियों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इससे प्रजा पर करका बोझ घटा देने पर भी शासन-तंत्रकी कार्य-क्षमताको कोई हानि नहीं पहुंची। राजमाता कैकेयीकी सहानुभूतिसे भरत-पत्नी माण्डवीने राज्यके नारी-समाजको अपना बना लिया। नन्दीग्राममें भरतका स्थायी निवास होनेके कारण राजतंत्रका ध्यान स्वभावतः गांवोंकी प्रजा पर केन्द्रित हुआ। जिस राज्यमें नारी-समाजका तथा गांवोंका सीधा हार्दिक सम्बन्ध हो वह राज्य धर्मराज्य और प्रजाप्रिय राज्य बन जाय तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। इस प्रकार तुम्हारे वनवाससे सबको अपार दुःख तो हुआ परन्तु दूसरी ओर उसके कारण अयोध्याके राज्यतंत्रकी अखण्ड जागृति बनी रही। राज-परिवारकी एकरसता भी बनी रही। इन दिनोंमें माता कौशल्याने अद्भुत कार्य किया है।

"शासक जब प्रजाराज्य पर दुनियाकी शस्त्रसत्ताधारी शक्तियां अथवा मार प्रधान संस्कृतियां आक्रमण कर इसका भय तो अयोध्याको नहीं रहा था क्योंकि यह भय सीता-हरणके निमित्तसे आपके द्वारा ही दूर हो गया था। आपने वानर जैसी पिछड़ी हुई प्रजामें चेतना

उत्पन्न की। यहा भरतने प्रजाके पिछडे हुए माने जानेवाले निम्न वर्गोंकी शक्तिको प्रकट करनेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया। इस प्रकार प्रादेशिक और आन्तर-प्रादेशिक दोनो दृष्टियोसे सर्वांगीण कार्य हुआ है।"

वशिष्ठजीके इन उद्‌गारोसे सुग्रीव और विभीषण दोनोको अपने अपने राज्यके सचालनके लिए मार्गदर्शन प्राप्त हो गया। सबने सोचा "रामचन्द्रजीने गुरुका चुनाव बहुत सुन्दर किया है। जो धर्मगुरु विश्वके प्रश्नोके अध्ययनमे पीछे रहता है वह स्वय तो पीछे रहता ही है, परन्तु अपने साथ धर्मको भी पीछे रखनेका निमित्त बनता है। इसके फलस्वरूप या तो मानवके नित्य जीवन और मानव-धर्मका सम्बन्ध बिलकुल टूट जाता है या दोनोके बीच केवल ऊपरी सम्बन्ध रहता है। ये दोनो ही स्थितिया धर्मो, राष्ट्रो, राज्यतत्रो और प्रजाओ — किसीके लिए भी कल्याणकर नही है।"

८४

इनमें राम कहां है?

आज सुग्रीव और विभीषण जैसे मित्र तथा अगद जैसे भक्त सब रघुकुल-मणि रामचन्द्रजीसे अलग होकर अपने अपने प्रदेशकी ओर जानेवाले थे। सबके हृदय रामके वियोगसे व्याकुल बन गये थे। समयोचित भाषणोके पश्चात् भेंट-सौगातका बटवारा स्वयं रामके पवित्र हाथोसे होने लगा। सब कोई रामकी प्रसादी मानकर आनन्दसे सिर नवाकर भेट स्वीकार करने लगे। कुछ न कुछ सभीको मिला। यदि न मिला तो केवल हनुमानजीको। अपने लाडले पुत्रके समान हनुमानजीको कोई भेट न मिले, यह जानकीजीसे कैसे सहन होता? उन्होने सोचा "हनुमान अभी कुछ दिन और यहा रहनेवाले है, क्या ऐसा मानकर भगवान रामने उन्हे कुछ न दिया होगा! उनका यह विचार हो तो भी सब लोगोके सामने हनुमानको कोई भेंट देनेका अवसर फिर कब मिलनेवाला है? क्या राम हनुमानके समान अपने परम प्रिय सेवकको बिलकुल

ही भूल गये होंगे? राम यदि भूल भी गये हों तो रामकी अर्धांगिनी सीताको यह गलती क्या न सुधारनी चाहिये?" यह सोचकर सीताजीने अपने गलेकी बहुमूल्य मोतियोंकी माला हनुमानकी गोदमें फेंका। सम्पूर्ण सभा सीताजीके इस समयानुसार व्यवहारसे प्रसन्न हुई। रामचन्द्रजीका मुखारविन्द भी खिल उठा।

भक्त हनुमानने सोचा — क्या मोतियोंकी माला देकर सीताजी मुझे भूल जाना चाहती हैं? कहीं जानकीजी मेरी परीक्षा तो नहीं ले रही हैं कि मेरे मनमें राम-सीताका अधिक मूल्य है अथवा मोतियोंकी इस मालाका? जरा देखूं, कदाचित इस मालामें ही राम-सीता हों! और हनुमान पत्थर लाकर एक एक मोती उससे फोड़ने लगे। सारे सभाजन इस कुतूहलको देखनेमें लीन हो गये। राम हंसते रहे।

सीताजीके मनमें विचार उठा — सचमुच वानर-रूपकल्पक मनुष्य वानरके समान ही मालूम होते हैं। हनुमान इतना बुद्धिमान है फिर भी वह यह नहीं समझता कि मोती जैसी बहुमूल्य वस्तुको पत्थरसे नहीं तोड़ा जा सकता।

इतनेमें ही हनुमानके हाथका पत्थर एक सुन्दर मोती पर पड़ा और उसका चूरा हो गया। अब जानकीजीसे सहा न गया। वे बोल पड़ीं — अरे अरे हनुमान यह तुम क्या कर रहे हो? इस पर रामचन्द्रजीने सीतासे कहा — देवी इससे पूछो तो सही कि यह मोतियोंको तोड़ना क्या है?

सीताजी पूछें इसके पहले ही रामके वचन सुनकर हनुमान बोल उठे — प्रभु मैंने यह समझकर इस मालाको हाथमें लिया था कि इसमें सीता राम होंगे। माताकी पवित्र भेंटको मैं हाथमें क्या न लूं? परन्तु इस पर मुझे कहीं भी सीता रामका नाम नहीं दिखाई दिया। इसलिए मैंने सोचा कि शायद मोतियोंके भीतर दानोंके नाम होंगे। ऐसा न होता तो सीतामाता मुझे यह माला क्या देतीं? परन्तु मुझे दुःखके साथ यह कहना पड़ता है कि इसमें सीता रामका नाम कहीं भी दिखाई नहीं देता। इसके अभावमें माताकी मालाकी कीमत मेरे लिए शून्य जितनी ही है।

सीताजी सारा रहस्य समझ गईं "भगवानके हृदयमे जिस भक्तका स्थान है, उसे हीरे, मोती, माणिक, सोना, चादी अथवा दूसरी सम्पत्ति नही मिलती। और कदाचित् मिलती भी है तो उसे ऐसी सम्पत्तिसे कोई वास्ता नही होता, जिस पर भगवानका नाम न हो। भगवानके नामके 'एक' के सामने भक्तकी दृष्टिमें दूसरा सब 'शून्य' रूप ही होता है। धन्य हैं भगवानके भक्त!"

सभाजनोने भी समझ लिया कि सुनीति अथवा सत्यरूपी धर्मसे विहीन सम्पत्ति एक विपत्ति ही है और नीति तथा धर्मसे युक्त विपत्ति सच्ची सम्पत्ति है। यदि ईमानदारीसे कमाये हुए धनकी सार्थकता भी त्यागमे हो, तो त्यागमय जीवनसे ही जनसेवा करके प्रभुसेवाका लाभ क्यो न उठाया जाय?

वस्तुत मानव-जीवनका रहस्य सग्रहमे नही है, परन्तु शरीररूपी परिग्रहके भी त्यागमे है। सग्रह चाहे जितना नीतिमय और न्यायपूर्ण हो, उस पर स्वामित्व तो समाजका ही हो सकता है। व्यक्ति तो समाजके अगके रूपमें उस सम्पत्तिके जाग्रत ट्रस्टीकी तरह ही शोभा पाता है। जिस देशके मानव-समाजमे इतनी सावधानी वहाकी धार्मिक सस्थाये न रखवा सके, उस देशका भविष्य अधकारमय है और उस देशकी धार्मिक सस्थाये धन तथा सत्ताकी दासी बनकर अपना और मानव-जातिका सर्वनाश रोकनेमे नही, परन्तु सर्वनाश होने देनेमे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे सहायक होती हैं।

८५

अफवाह और मनोमन्थन

रामचन्द्रजीने अयोध्याका शासन अपने हाथमें ले लिया, उसके बाद भरतने मुक्तिका श्वास लिया। परन्तु राज्यके कर्मचारी प्रजाके सेवकके रूपमें अच्छी तरह काम करें और प्रजा भी अपनी सच्ची जिम्मेदारीको समझे इसके लिए प्रजा और राज्यके बीच कड़ी बननेका काम भरत पर विशेष रूपसे आ पड़ा था। राज्यतंत्रमें ऊपरसे प्रजाके प्रत्येक वर्गके भीतर गुरु वसिष्ठकी प्रेरणा पहुँच ही जाती थी। राज्यके महाजन भी प्रजाके न्याय और नैतिकताके उच्च स्तरको बराबर बनाये रखनेका सतत प्रयत्न करते थे। इस प्रकार साकेतका राज्य देशभरमें प्रशंसाका पात्र माना जाता था। रामराज्य का प्रभाव समूचे राष्ट्रमें इस तरह फैल गया था कि वह युग रामयुगके नामसे प्रसिद्ध हो गया।

सब कोई रातमें सुखसे सोते थे और प्रभातमें ईश्वरका नाम लेकर जागते थे। दशरथके पुत्र राम लोगोंकी दृष्टिमें केवल राजा ही नहीं थे, अधिकांश लोगोंके हृदयमें रामने भगवानका स्थान ले लिया था। जिस राज्यमें दुराचारको डरना पड़े और समाजमें चारों ओर सदाचारका ही बोलबाला हो, उस राज्यको धर्मराज्य कहनेसे कौन इनकार करेगा? जिस प्रकार गुरु वसिष्ठ जैसे ऋषिवर तथा भरत जैसे नरश्रेष्ठ राज्य और प्रजाके बीचकी स्नेहगांठको मजबूत बनाते थे उसी प्रकार कौशल्या और सुमित्रा जैसी मातायें राज-परिवारकी प्रेम गांठको मजबूत बनाती थीं। माता कैकेयी तो अब पूर्णतया पवित्र बन गई थी। मंथरा भी पश्चात्तापकी गंगामें स्नान कर चुकी थी। इस प्रकार परिवारमें और परिवारके बाहर सर्वत्र राम और सीताके लिए पूर्ण शान्ति थी। सीता और राम अपना विरह दुःख भूल गये थे। अशोक वाटिकाके दुःखद अनुभव भी स्मृतिपट परसे मिट चले थे। दोनों दंपती प्रणय-सरितामें विहार कर रहे थे। परन्तु प्रकृतिकी गति

भी कैसी गहन है। मानो विधाताके मनमे ऐसा भय पैठने लगा कि भावी इतिहासकी करुण-रस-प्रधान रामायणकी रचना कुछ दूसरे ही प्रकारकी हो रही है। राम-सीताके पवित्र शृगार और निर्मल हास्य-रसपूर्ण दिवसोसे करुण रसको जैसे ईर्ष्या होने लगी। एक दिन सवेरे ही सवेरे एक गुप्तचरने कापते कापते भगवान रामको यह अफवाह सुनाई

"प्रजानाथ, अवनि-प्रभु, विश्व क्या रसातलमे जानेवाला है? क्या अयोध्या पर भयकर सकटका पहाड टूटनेवाला है! और अयोध्याका सकट क्या सारे देशका सकट नही है? जब सपूर्ण नगरीमे लोग सीता-रामकी रट लगाये रहते है, उस समय एक मनुष्य—और वह भी धोबी ।" इतना कहते कहते गुप्तचरका गला रुध गया। श्रीरामने विना किसी सकोचके सारी वात स्पष्ट कहनेका सकेत किया और उसकी पीठ पर हाथ फेरकर उसे ढाढस बधाया। गुप्तचरकी आखे तरल हो आई। वह धीरे धीरे गद्‌गद स्वरमे आगे बोला

"प्रभु, एक धोबिन पडोसमे बातोमे लग जानेके कारण रात अपने घर कुछ देरसे पहुची होगी। लेकिन धोबीने इतनेसे कारणसे ही उसे बहुत भला-बुरा कहा। बेशक, एक सगिनीके नाते धोबिनको अपने पतिसे आज्ञा लेनी चाहिये थी। लेकिन इतनी छोटी गलतीके लिए धोबीका इतना गुस्सा करना क्या ठीक था? रामराज्यके एक प्रजाजनके नाते भी अपनी जिम्मेदारीका उसने विचार नही किया। इसलिए जब असह्य हो गया तो धोबिनने पतिसे कहा 'स्वामिन्, रातमे आपकी आज्ञाके बिना मुझे पडोसमें अधिक रुकना पडा, यह मेरा अपराध है, और इसे मै स्वीकार करती हू। परन्तु आपके मनमे शका तो पैठनी ही नही चाहिये। आप रामराज्यके नागरिक है। राम वनमे गये तब वे स्वय तो राजा नही थे, परन्तु भरतजी उन्हींके नाम पर राज्य चलाते थे। वनवासके समय सीताजी वर्षो अकेली रावणके महलमे रही। तो भी रामके समान राजाने उन पर शका करके उन्हे उलाहना दिया हो ऐसा नही सुना। आप उन्ही राजा रामके प्रजाजन है। तब क्यो इतनी कडवी बातें आप मुझे सुना रहे है? मैंने किसीके घर

वर्षोंका समय तो नही बिताया है। कुछ देर हुई आनमें परन्तु या तो म रामराज्यमें ही न ? रावणके घर ता म नही गई या रही !

धोबीसे पत्नीकी यह बात सहन नहा हुई। वह बाला राम इसे सहन कर सकते ह पर म नही कर सकता।' क्या वह धोबी आपसे भी बढ गया ? और सीताजीके समान महासतीके बारेमें एक धोबीके घर ऐसी बातें हा सकती ह ? एक क्षणके लिए ता विचार आया कि एसे लोगोकी जीभ बाहर खीच लेना चाहिये। परतु उस बुरे विचारको मने मनमे निकाल डाला क्योकि रामराज्यमें दण्डशक्तिका नही किन्तु जनशक्तिका ही मुख्य आधार रहता है। मनमें उठे उस बुरे विचारके लिए मुझे बहुत पश्चात्ताप होता है । परन्तु साथ ही यह सोचकर गहरा दुख भी होता है कि हमारे ही प्रजाजन अपनी जिम्मदारीको समझे बिना ऐसा बातें करते ह । जिस राज्यमें गर जिम्मेदार प्रजाजनाकी बकवास बढ जाती है उस राज्य और उस प्रजाका नाश हो जाता है। इस बातकी कल्पनासे भी म काप उठता हू। प्रभु ऐसा क्यो होता हागा ? आपकी और माता सीताजाकी इतनी अखड जागृतिके रहते भी हमारे ही प्रजाजनाके मुखसे इस तरहकी अनिच्छनीय बातें मुझे क्यो सुननको मिला ? इतने दिनोके बाद पहली ही बार और वह भी एक ही घरमें एसा सुननमें आया। क्या राम राज्यमें प्राप्त हुआ वाणी-स्वातत्र्य ऐसे दुरुपयोगके लिए है ? ऐसी वाणी राज्यके प्रति प्रजाजनोकी सत्यनिष्ठाको तथा मानवके प्रति उनकी शाल विषयक श्रद्धाको नष्ट कर दती है।

रामने यह सब शात चित्तसे सुन लिया । सम्पूर्ण स्वतत्रतामें एसा हो सकता है यह आश्वासन देकर गुप्तचरको उन्होने बिदा कर दिया और स्वय गहरे विचारोमें डूब गय।

रघुकुल भूषण राम अधिकाधिक गहरे मनोमन्थनमें डूबते गय। उन्होने अपनको जानकीसे अलग करनका प्रयत्न शुरू किया म आज जिस प्रकार एक गहस्थ हू उसी प्रकार एक राजा भी हू। धाबा और धोबिनकी बात पर म एक सज्जनके नाते सोच तो यह अवश्य कह सकता हू कि विश्वास सज्जनताका लक्षण है। यदि सामान्य मनुष्य

पर भी केवल अविश्वास रखकर कोई गृहस्थ नही चल सकता, तो अपना अग बनी हुई पत्नी पर तो अविश्वास रखकर वह चल ही कैसे सकता है? निश्चय ही आर्योकी दृष्टिमे स्त्री-जातिके शील और चरित्रका बहुत बडा मूल्य है, परन्तु इससे पुरुष-जातिको स्त्री-जातिके शील और चरित्रकी चौकी करनेका अधिकार नही मिल जाता। अपने शील और चरित्रकी सावधानी पति और पत्नी दोनो अपने अपने हृदयसे ही रख सकते है, हा, परस्पर सिद्ध हुई आत्मीयताके कारण दोनो इस कार्यमे एक-दूसरेकी सहायता करे यह अलग बात है। सहायता करनेका यह अर्थ कभी नही कि एक-दूसरे पर शका रखी जाय। शकाशील रहनेसे ऐसी सहायता की ही नही जा सकती। स्त्री स्वभावसे भावनाशील होती है। वह किसी प्रवाहमे वह न जाय, इतनी सहायता जरूर पुरुष उसकी कर सकता है। परन्तु इतनी सहायता भी शकासे परे रहकर ही वह कर सकता है। इस दृष्टिसे देखने पर पतिके नाते सीतासे कुछ भी कहनेका मुझे अधिकार नही है। जानकीने रावण-नगरीमे रहते हुए भी जो अखड जागरूकता रखी, उसके कारण वह जगतकी महासतीका पद प्राप्त कर चुकी है। मेरे मनके सपूर्ण सन्तोषके बाद बात केवल समाजके सन्तोषकी रह जाती है। समाजके सन्तोषके लिए तो जानकी स्वय ही अग्नि-प्रवेश कर चुकी है। इससे बडी परीक्षा और क्या हो सकती है? क्या धोबी यह बात नही जानता होगा? दूसरी ओर, एक राजाके नाते यह देखनेका काम भी मेरा ही है कि किसी भी प्रजाजनके मनमे मेरे अथवा जानकीके जीवनके बारेमे कोई शका न रहे। यदि एक भी प्रजाजनके मनमे ऐसी शका रहे, तो राजाके नाते मैं सफल हुआ नही माना जाऊगा। विरोध एकका है या अनेकका, यह देखनेकी अपेक्षा सर्वानुमतिसे चलनेवाले सच्चे राज्यतत्रमे मुख्यत यह देखना चाहिये कि उस विरोधमे तथ्य कितना है। जानकी मेरा ही अग है, इसलिए इस सम्बन्धमे तथ्यकी जाच मैं स्वय अकेला ही करू, यह उचित नही माना जायगा।"

कुछ क्षण रुककर राम फिर अपने-आपसे कहने लगे "कभी तो ऐसा विचार मनमे आता है कि जिस प्रकार मैंने कैकेयी माताके

लिए राजगद्दी छाडी थी, उसा प्रकार धोबीके लिए भी राजगद्दी छाड दू। परन्तु उस समय पित वचन रूपी धर्मके साथ राजगद्दीका त्याग सुसगत था। आज राजधर्मके पालनके साथ यह त्याग सुसगत नहीं है। मेरे राजगद्दीका त्याग करनेसे धोबी पर दडशक्तिका दबाव पड सकता है। परन्तु मुझे तो जनशक्तिको विजय दिलानी है। मै मानता हू कि धोबीकी बातमें जरा भी तथ्य नहीं है। फिर भी वह हृदयमें सच्ची बातको समझे इसका एकमात्र मार्ग व्यक्तिगत सहनशीलता तथा त्यागका ही हो सकता है। मै राजगद्दी छोडू और मेरे साथ जानकी भी साकेत छोडकर चली जाय तो इसका परिणाम हर दृष्टिसे उल्टा ही सकता है। और यदि हम दोनो साथ ही रहे तब तो उसमें सहनशीलता और त्यागकी भी कोई बात नहीं रहेगी क्योंकि अब मेरा या जानकीकी दृष्टिमें जगल या बस्तीका झोपडा या महलका कोई भेद नहीं रह गया है। आज तो यदि हम दोनो अलग हो जाय और हममें से एक रहे बस्तीमें और दूसरा रहे जगलमें अथवा एक रहे राजमहलमें और दूसरा रहे पर्णकुटीमें तो ही सब तरहसे हम दोनोंकी सहनशीलता और हमारे त्यागकी सच्ची परीक्षा हो सकती है।

इस निश्चयके साथ ही रामका हृदय नाच उठा मानो एकाएक जीवनका कोई अद्भुत रहस्य उनके हाथ लग गया हो। उनके मुहसे ये उद्गार निकल पडे मै आजसे अधिक जाग्रत और एकाग्र बन कर राज्यतत्रकी धुराको सभालू और देवी जानकी अरण्य-तत्रके सम्राटके समान ऋषि मुनियोंकी शीतल छायामें रहे।

मानो प्रकृति माताका उपकार मान रहे हो इस प्रकार राम फिर बोले अतमें तो मनुष्य केवल एक निमित्त ही है। कुमार वयके बाद मुझे ऋषिकी जो छाया मिली और युवावस्थामें जो अरण्य वास मिला वही ऋषियोंकी छाया और अरण्य वास एकसाथ सीताके साथ उसके पेटके गर्भको भी अभीसे मिलेगे। यह भी एक सद्भाग्य ही माना जायगा। चिन्ता केवल जानकीके विरहकी है। स्वय जानकीको तो मेरे विरहसे कोई दुःख नहीं होगा क्योंकि वह स्वधर्म-पालनके लिए बडेसे बडा त्याग भी आसानीसे कर सकती है। जानकीने जब पहले

पहल मेरे साथ वनमे रहनेकी इच्छा वताई थी, तव मुझे अवश्य शका थी कि वह जमीन पर कैसे सो सकेगी। परन्तु मेरी उस शकाको जानकीने झूठा सिद्ध कर दिया था। यह तो ठीक, परन्तु रावण जैसा शक्तिशाली पुरुप जानकीके सामने विकारपूर्ण दृष्टिसे देख भी न सका। और, जनकके समान विदेह पुरुपकी पुत्री तो अनासक्त ही होगी न? ऐसी इस महाशक्तिके लिए जगतमे कौनसी वात असभव हो सकती है? फिर भी जानकीके मनमे मेरी चिन्ता जरूर रहेगी। परन्तु क्या किया जाय? सवके कल्याणका इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नही है। वनवाससे अयोध्या लौटनेके वाद हम दोनो काफी समय तक साथ रहे। दापत्य-जीवनका आनन्द भी हमने परस्पर खूव भोगा। सन्तानकी प्राप्ति भी हुई। अव हम दोनोके साथ रहने और न रहनेसे क्या वनता-विगडता है? विश्व-मानवोके लिए तो कर्तव्य-पालन ही मुख्य वस्तु है। इस कर्तव्य-पालनका प्रेमियोकी सगतिके साथ सुमेल सध भी सकता है और नही भी सध सकता है। इसके सिवा, मै वनमें अकेला रहू उस समय सीताको मेरी जो चिन्ता होगी उसमे और उस चिन्तामे आकाश-पातालका अतर होगा, जो अयोध्यामे माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयीकी छत्रछायामे मेरे रहते हुए सीताको होगी।"

इतने हृदय-मन्थनके वाद त्यागवीर रामचन्द्रने अपने मनमे तो निर्णय कर लिया। परन्तु समति लेनेके लिए उन्होने भरत और लक्ष्मणको तुरन्त वुलवाया। रामके इस निर्णयसे सारा जगत थर थर काप उठा। भरतजी तो ठीक परन्तु लक्ष्मणजी इस महाकपको कैसे सहन करेगे? क्या महापुरुपोका मानव-देहसे सम्वन्धित वहुमूल्य जीवन सिद्धान्तके चक्र पर सदा प्रयोगके रूपमे ही घूमता रहेगा?

८६

सीताका त्याग

कहिये बड़े भैया क्या आज्ञा है? कहते कहते दो मूर्तियाने रामके चरणोंमें नत होकर प्रणाम किया। वह कैसा दिव्य दृश्य था? एक चरण कमलमें मानो निर्गुण उपासना और दूसरे चरण-कमलमें सगुण उपासना मूर्तिमन्त बन गई हो! दोनों बंधुओंको रामने उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया।

क्षणभरके लिए वातावरणमें शांत स्तब्धता छा गई। फिर श्रीराम स्वयं ही बोले "भाइयो तुम दोनों ही आज्ञाकारी हो। साथ ही मेरे वचनमें तुम्हारी पूर्ण श्रद्धा है। फिर भी मैंने सदा तुमको तर्क और चर्चाका अवसर दिया है। लेकिन आज मुझे भय है कि मैं तुम्हें तर्क और चर्चाके लिए कोई समय नहीं दे सकूंगा। मैंने जो निर्णय किया है वह अतिशय लम्बे मनोमंथनके पश्चात ही किया है। उस निर्णयको कार्यमें परिणत करनेका समय भी निकट आ गया है।'

भगवान राम आगे कुछ कहें इसके पहले ही अधीर लक्ष्मणकी जबान बोल फूट पड़ी "हमारा जो अपराध हो वह हमें तुरन्त बता दीजिये न! हम दोनोंको और विशेषकर मुझे आपका कोई निर्णय नहीं सुनना है। बड़ी कठिनाईसे अयोध्याका जीवन स्थिर और शांत हुआ है इतनेमें ही क्या फिरसे राम वनवासका निर्णय आपने कर लिया?"

रघुपति राम हंस कर बोले "शांत हो लक्ष्मण! मैंने राम वनवासका निर्णय नहीं किया है। इसके सिवा रामके साथ तो लक्ष्मण सदा रहता ही है फिर तुम्हें इसकी क्या चिन्ता? और तुम क्या नहीं जानते कि अयोध्याकी देखभाल भरत मेरी अपेक्षा अधिक कुशलतासे कर सकता है?"

यह सुनकर लक्ष्मण मुसकरा उठे परन्तु भरतके हृदयमें अज्ञात वेदना होने लगी। भरतकी वाणी चाहे कुछ न कहे परन्तु उनका हृदय बोले बिना नहीं रहा।

भरतके हृदयको राम भलीभाति जानते थे। इसलिए उन्होने अपनी बात स्पष्ट कर दी "जानकीजीको सूर्योदयके पहले ही गुप्त रूपमे अयोध्यासे बाहर ले जाना है और लक्ष्मणको उन्हे अरण्यमें ऋषि-निवास-के समीप छोडकर कुछ कहे बिना तुरन्त अयोध्या लौट आना है।"

ये वचन सुनते ही भरत दिङ्मूढ हो गये और लक्ष्मण अवाक् बन गये। लक्ष्मणका शरीर शिथिल पड गया। वे रामके चरणोके पास बैठ गये। कुछ क्षण बाद भरत बोले "आपने जो निर्णय किया है, उसके पीछे दीर्घदृष्टि रही होगी। इसमे हमे कोई शका नही है। इस निर्णयका कारण भी मै जानना नही चाहता। जो राम प्रतिक्षण जाग्रत रहते है, उनके इस निर्णयके पीछे कोई न कोई अनिवार्य कारण अवश्य रहा होगा। मेरी तो एक यही प्रार्थना है कि पिछले वनवासके समय जिस प्रकार लक्ष्मणजीको सीताजीके पास रहनेका अवसर मिला था, उस प्रकार इस बार मुझे उनके साथ रहकर उनकी सेवा करनेका लाभ मिलना चाहिये। यदि उन्हे अकेले ही अरण्यमे छोड आना हो, तो भी यह काम भाई लक्ष्मणके बदले मुझे सौपा जाय, ऐसी मेरी आतरिक इच्छा है।" लक्ष्मणने अपनी समति भरतके साथ प्रकट की, क्योकि सीतामाताको अकेले अरण्यमे छोड़ आनेकी बात उनके लिए मृत्युसे भी भयकर थी।

राम थोडे गभीर होकर बोले "भरत, तुम्हारे भाग्यमे तो केवल निर्गुण उपासना ही लिखी है। उस बार तुमने अयोध्यामे रहकर रामका अभाव दूर किया था, इस बार अयोध्यामे रहकर तुम्हे जानकीजीका अभाव दूर करना है। मेरे पास रहकर माताओकी सेवाका काम तुम्हे करना है।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण गद्गद होकर कहने लगे "पहले वनवासमे मेरे ही कारण सीतामाताको राम-विरहका दु ख सहना पडा था, क्या इस बार भी मुझे ही उसका निमित्त बनना होगा?"

लक्ष्मणके सिर पर अपने कोमल हाथ फेरते हुए राम बोले: "भाई, तुम तो वीर पुरुष हो। सत्यका मार्ग तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण होता है। उस पर शूर और वीर लोग ही चल सकते है।"

लक्ष्मण बोले तब तो बडे भया आप भरतकी इच्छा ही पूरी कीजिये। वह शूर वीर और धीर भी है।'

इस पर भरत हंस दिये परंतु राम गभीर हो गये। उन्हें भय था कि लक्ष्मणकी इस बातसे कहीं भरतके हृदयको चोट न लग जाय।

रामको गभीर देखते ही लक्ष्मणजी सावधान हो गये। उन्हें रामके ये वचन ही आये इस निर्णयको कार्यमें परिणत करनेका समय निकल आ गया है। उन्होंने खडे होकर रामके चरणोंकी रज माथे पर चढाकर क्षमा मांगी और कहा आपकी आज्ञा सिर आंखों पर है।' रामने लक्ष्मणकी पीठ थपथपाई। लक्ष्मण तेज गतिसे बाहर निकल गये। भरतने भी रामसे विदा ली। लेकिन प्रयत्न करने पर भी उनके मनसे ये विचार निकल नहीं पाते थे रामचन्द्रजीको और समस्त अयोध्याको जानकीजीका वियोग क्यों सहना पड रहा है? किस पापका यह फल है?

इन प्रश्नोंने भरतकी रातको लम्बा बना दिया। परन्तु जिन रामको सीताका विरह निरन्तर दुःख देनेवाला था वे तो शय्या पर लेटते ही गाढ निद्रामें लीन हो गये। कर्तव्य पालनका उत्साह मनुष्यमें महात्याग और महातितिक्षा उत्पन्न कर ही देता है।

*

रथ द्रुत गतिसे घरघराहट करता चला जा रहा था। इस आवाजके सिवा भीतर और बाहर सब कुछ शांत नीरव था। लक्ष्मण विचारोंमें डूबने उतराने लगे कर्तव्यकी वेदी कैसी विचित्र है! कभी वह कुसुम जैसी कोमल और कभी वज्रसे भी कठोर बन जाती है। रामचन्द्र और जानकीका यह कैसा वियोग है? और वह भी आज मेरे ही हाथों होना लिखा है? रामकी आज्ञा भी कितनी विचित्र है! उन्होंने जानकीसे अपना मिलन भी नहीं होने दिया। और सीता माता? पतिकी आज्ञा ही उनका धर्म पतिकी आज्ञा ही उनका सर्वस्व है। न तो उन्होंने रघुकुलनायक रामसे मिलनेका आग्रह किया न मनमें दुःख अनुभव किया और न किसी सखीजनसे यह बात कहनेकी इच्छा बताई। स्त्री शक्तिको धन्य है!

इस प्रकार सोचते सोचते उन्हे उर्मिला याद आ गई "रामचन्द्रजीके साथ वनमे जानेके उत्साहमे उस समय उर्मिलाको मैं विलकुल भूल ही गया था। माताकी अनुमति मैंने ली थी, परन्तु उर्मिलाकी ? अनुमति लेना तो दूर रहा —मैं उससे मिला भी नही था। मीठा सन्देश भी मैंने उसे नही भेजा था। फिर भी चौदह वर्षका लम्वा समय कितने धीरज और शातिसे कर्तव्य-पालन करते करते उर्मिलाने विताया ? सुमित्रा माताको मेरा अभाव न खटके, इस तरह उसने अपने सारे कर्तव्य उत्साहसे पूर्ण किये। आश्चर्यकी वात तो यह है कि अयोध्या लौटनेके वाद मैंने दो मधुर शव्द भी उर्मिलाकी प्रशसामे नही कहे, परन्तु इसका भी उसने कोई दुख नही माना। स्त्रियोके इस महान त्यागका मूल्य हमारे जैसे पुरुप नही आक सकते।"

लक्ष्मण इन्ही विचारोमे डूवे हुए आगे बढ रहे थे। इतनेमें सूर्यनारायणने पूर्व दिशामे अपना सुनहला मुह निकाला। रथ अव ऐसी जगह पहुच गया था जहासे कलकल नाद करते झरने, वनके उछलते-कूदते हरिण और ऋपि-मुनियोकी स्वच्छ सुन्दर पर्णकुटिया दिखाई देने लगी थी। रामका वताया हुआ सकेत-स्थल आ गया। रथ खडा हो गया। लक्ष्मण नीचे उतरे। अव जानकीजी सब कुछ समझ गई। वे तुरन्त नीचे उतर आईं। लक्ष्मण सीतामाताकी चरण-रज सिर पर लेकर उनसे विदा मागनेके लिए मौन खडे रहे। उनकी आखोसे आसुओकी धारा वह चली। वे वालकोकी तरह सिसकने —रोने लगे। मनमें अनेक विचार उठने लगे "मेरी माताके समान सीताजी गर्भावस्थामे अकेली इस अरण्यमे कैसे रहेगी ? कहा मिथिला, कहा अयोध्या, कहा दडकवन, कहा लकाकी अशोक वाटिका और कहा यह अरण्य-वास ! अयोध्यामें सर्वत्र आनन्द है, परन्तु सीताजीके लिए यह करुण अरण्य-वास है ! हे विधाता, क्या यह सव न्यायसगत है ?" फिर सोचने लगे "कही वह धोवी और धोविनकी वात तो सीताजीके वनवासका कारण नही वनी है ?"

सीताजीकी आखे भी छलछला आई थी। परन्तु लक्ष्मणकी सहानुभूतिमे, अपने दुखके कारण नही। उन्होने तुरन्त आखे पोछ ली और

लक्ष्मणके सिर पर अपना वरद हस्त रखकर आशीर्वाद दिया 'सुखी रहो भाई चिरंजीव हो!' इससे लक्ष्मण और भी व्यथित हो गये।

सीताजीने कहा 'प्यारे भैया तुम तो महाराज दशरथके पुत्र और राघवके छोटे भाई हो। इस तरह शिथिल कैसे बन रहे हो?' लक्ष्मण सावधान हो गये। रथके घोडोंको यात्राके लिए वे तैयार करने लगे।

रामके वियोगने सीताजीको उलझा दिया "जो राम एक क्षणके लिए भी मेरा वियोग नहीं सह सकते, उनकी मेरे यहाँ रहनेसे क्या दशा होगी? एक ओर अयोध्याके राज्यतंत्रका भार वहन करना, दूसरी ओर परिवारके सब सदस्योंके सुख-दुःखकी चिन्ता रखना और इस बातकी सदा सावधानी रखना कि गुरुजनोंके प्रति स्वप्नमें भी अविनय न हो। एक ओर प्रजाजनोंका पालन करना और दूसरी ओर भीतरके तथा बाहरके शत्रुओंसे राज्यकी रक्षा करना। ऐसे अनेक प्रकारके कर्तव्योंका बोझ उठाते समय यदि शरीरकी व्यक्तिगत संभाल रखनेवाला कोई व्यक्ति पास न हो तो मेरे रामकी क्या दशा होगी? लक्ष्मण और भरत यह सब करेंगे तो जरूर परन्तु व्यक्तिगत प्रेम बरसानेवाला कोई समीप हो तो रामको कितना आश्वासन मिले? प्रभु, प्रभु इस समय आपकी सेवा करना मेरे भाग्यमें ही नहीं है!"

इस तरह सोचते सोचते जानकीके लोचनोंसे दो बूँद गिर पडे। परन्तु वे तुरन्त ही सावधान हो गईं। "मेरे आँसू लक्ष्मण देखेंगे और अयोध्या जाकर बात करेंगे तो राम लक्ष्मण और परिवारके सब लोगोंकी चिन्ता कितनी बढ़ जायगी? हे जीव तू ऐसा क्या सोचता है? अन्तमें तो सारी चिन्ता उस हरिके हाथमें है। हम मानव तो केवल कर्तव्यके ही स्वामी हैं!" इस तरह मनको समझाकर स्वस्थ होनेमें सीताजीको देर न लगी।

अब लक्ष्मणने सीताजीसे बिदा माँगी। सीताजीने उनसे कहा 'प्यारे भैया सबसे पहले तुम मेरे रामके पास जाना। उनके चरणोंमें मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओरसे उनसे क्षमा-याचना करना। मैं कैसी पापिनी हूँ! एक बार मेरे मनमें सन्देह उगा कि रामको

अभी भी मेरा विश्वास नही है। मै क्या उन धोबी-धोबिनसे भी गई-बीती हू कि राम मुझसे कुछ कहे या पूछे बिना ही तिरस्कार करके मुझे वनमे धकेल रहे है?' परन्तु सद्भाग्यसे यह विचार मनमे ज्यादा टिका नही। यदि मुझ पर उनका विश्वास न होता, तो अपनी प्राण-प्रिय पत्नी मानते हुए भी मुझे अकेले वनमे भेजनेके लिए राम कैसे तैयार होते? धोबी और धोबिन प्रजाजन है, मै राजाकी रानी हू। आदर्श राजाकी दृष्टिमे अपने अग — अपने स्नेहीजनोकी अपेक्षा प्रजाका महत्त्व अधिक हो तो आश्चर्यकी बात नही। धोबी-धोबिनकी बात तो केवल एक निमित्त भर है। परन्तु उस निमित्तको भी मै प्रणाम करती हू। अब मै रामरूपी मेरुको किसी अशमे समझ सकी हू और धन्य हुई हू। लक्ष्मण, रामको मेरा वियोग न खले, इसका तुम पूरा ध्यान रखना। उन्हे मेरी चिन्ता बिलकुल न करने देना। हनुमान मुझे भी और रामको भी बहुत प्रिय है। उनका साथ तुम्हे जरूरी लगे, तो रामकी आज्ञा लेकर उन्हे बुला लेना। रघुपतिसे कहना, 'मुझे उन्होने जो वस्तु सौपी है, उसकी (गर्भकी) मै पूरी सावधानीसे सभाल करूगी। सन्तानको ऋषि-समागमका लाभ देकर शिक्षित और सस्कारी बनानेका निरन्तर प्रयत्न करूगी। मेरे शील और सतीत्वकी रक्षा करूगी और ऋषिजनोकी आज्ञाका पालन करूगी।' जाओ भाई, अब तुम जाओ। कौशल्या माता, सुमित्रा माता और कैकेयी मातासे मेरा वन्दन कहना, देवरानियोका कुशल पूछना और सबसे कहना कि कोई मेरी चिन्ता न करे। परम कृपालु प्रभु मेरी प्रिय अयोध्याकी और अवधेशकी सब प्रकारसे रक्षा करे!"

कैसा अपूर्व सन्देश था वह! लक्ष्मणको अरण्य छोडना अच्छा नही लग रहा था, परन्तु कर्तव्य उन्हे बुला रहा था। रथको उन्होने आगे बढाया तो सही, परन्तु घोडे और लक्ष्मण दोनो ही बार बार पीछे मुडकर देख लिया करते थे। सीताजी अपनी दिशामे आगे बढ रही थी। चलते चलते एक शीतल स्थान आया। वहा कगारके नीचे उतरकर वे एक वृक्षके नीचे बैठ गई और अपने भावी कार्यक्रम पर सोचने लगी। कलकलके मधुर नादके साथ झरने बहते आ रहे थे,

मानो सीताजीकी सहायतामें दौडे चले आ रहे हों। झरनाका यह वल्कल नाद क्या कहना होगा? कहा राम और कहा सीता? जहा मिलन है वहा वियोग निश्चित है!

८७

लक्ष्मण अयोध्या लौटे

लक्ष्मण किसी तरह मनको समझाकर अयोध्या लौट आये। परन्तु व सीताजीके लिए अत्यन्त चिन्तित थे जानकीजीका अरण्यमें क्या हुआ होगा? प्रातःकाल होते ही माताओंको पता चला कि जानकीको रामने अरण्यमें भेज दिया है! सभी विलाप करने लगी अरे सीता फिर तुम्हारा यह वियोग! इस वियोगको हम कैसे सहन कर सकेंगी? माताओंका रुदन सुनकर राम दौडे दौडे आये। उन्हे सान्त्वना देते हुए बोले पूज्य माताओ रघुकुलका इतिहास त्याग और बलिदानका इतिहास है। इसे आप क्या भूल जाती है? *श्रुतिया आत्माकी ही गान गाती है। शरीर तो केवल एक साधन है* वह साध्य नहीं है। आत्मा ही हमारे साध्य है। कभी कभी आत्माकी वेदी पर शरीरकी आहुति भी देना पडती है।

रामके आध्यात्मिक वचन सुनकर मातायें धीरे धीरे स्वस्थ होने

लक्ष्मण गद्‌गद कठसे बोले · "बडे भैया, चिन्ता करनेवाला मै कौन हू ? आप यदि जगत्पिता है, तो मेरी भाभी जगन्माता है। दृढ मनवाले लोग भी जहा घबरा जाय, उस बीहड वनमे जानकीजीको मैंने वनराज्ञीके समान विचरते देखा। मै बार बार पीछे घूमकर देखता था। दोनो घोडे भी ममतासे सीताजीकी ओर बार बार मुडकर देखते थे। परन्तु सीतामाता तो बिना किसी घबराहट या चिन्ताके अपने कर्तव्य-पथ पर आगे ही बढती जा रही थी। उनकी वीतरागताका मै किन शब्दोमे वर्णन करू ? उनकी व्यवहार-दक्षता भी कैसी अनोखी है। आपके और माताओके साथ अपने देवरो तथा देवरानियोको भी याद करना और सूचनाये देना वे न भूली।"

लक्ष्मणकी बात सुनते सुनते रघुकुल-मणि राम जानकीके ध्यानमे मग्न हो गये।

इतनेमे तीनो माताओने आकर रामसे कहा "राघव, तुम्हारे पिता कर्तव्यका पालन करते हुए विलीन हो गये। और तुम स्वय तो सदेह होते हुए भी जीवन्मुक्त योगीके समान कर्तव्यकी वेदी पर दिन-रात तपते ही रहते हो। प्रिय जानकी फिरसे अयोध्या लौटे और उसे देख-कर हम अपनी आखोको तृप्त करे, यह हमारे लिए अब बहुत दूरकी बात मालूम होती है। अपने शरीरोसे हम पूरा काम ले चुकी है। अपनी छोटी-बडी गलतियोका हमने उचित चिन्तन और प्रायश्चित्त भी कर लिया है। अब तो तुम्हारे जैसे सुयोग्य पुत्रोके जीते जी हमारा शरीर छूट जाय, यही हम तीनोकी अतिम महत्वाकाक्षा है।"

एकाएक माताओके ये वचन सुनकर राम थोडे विचारमे पड गये। फिर बोले "जिस प्रकार कर्तव्य-यज्ञमे स्वेच्छासे अपनी आहुति देना, उत्साहसे प्राणार्पण करना मनुष्यका धर्म है, उसी प्रकार कोई समय ऐसा भी आता है जब कर्तव्य पूरा हो जाने पर आत्मामे मग्न रहकर देहकी केचुल छोड देना भी मनुष्यका धर्म हो जाता है। आप तीनोके लिए ऐसा समय आ गया है या नही, यह तो मै नही कहूगा। आप स्वय ही इसका विचार करे। परन्तु यदि केवल जानकीके विरहके कारण आप ऐसा करना चाहती हो, तो आपके इस कार्यमें

दोप होनेकी सभावना है। दायपुक्त मृत्यको बुलानेमें आत्मग्लानिका भय रहता है।

तीनो मातायें रामका वान सुनकर कुछ मोचमें पड गई। परन्तु अतमें अपने अतःकरणोको उन्होने स्वच्छ कर डाला। तुरन्त योगाग्नि प्रकट हुई। अग्निकी ज्वालायें तीनोंके अगोंको स्पर्श करने लगी। जय दशरथ जय राम! के उच्चारोंके साथ उनके शरीर अग्निमें विलीन हो गये।

ये समाचार किससे छिपे रह सकते थे? गुरु वशिष्ठ तो पहलेसे ही उपस्थित हो चुके थे। अब प्रजाजनोंकी भीड जमा होने लगी। उसने सभाका रूप ले लिया। गुरु वशिष्ठने सब लोगोंसे कहा यह बात दुःखकी नही परन्तु हर्षकी है। जो मनुष्य जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। जो मनुष्य आत्माओंके जीवनमें प्रमुख स्थान प्राप्त कर जाते और मरते है वे सचमुच अमर हो जाते है। हमारी दृष्टिमें राजा दशरथ अमर है। उसी प्रकार दशरथ राजाकी ये तीनो महारानियां तथा रामराज्यकी राजमातायें भी सचमुच अमर है।

गुरु वशिष्ठके पश्चात रामचन्द्रजीने भी समयोचित कुछ बातें कही। सब लोग माताओंका स्मरण करते करते अपने घर गये। प्रजामें चारों ओर ये बातें होने लगी रामके वियोगने राजा दशरथके प्राण लिये। जानकीके वियोगने तीनो माताओंका अन्त कर दिया। केवल एक कैकेयीके कारण दशरथ राजाकी मृत्यु हुई तथा राम लक्ष्मण सीताका वियोग अयोध्याको सहना पडा। और आज केवल एक धोबीके कारण तीन राजमाताओंका विलय तथा जानकीजीका वियोग हुआ।

इस प्रकार जितने मुह उतनी बातें। ससारी लोग तो निमित्तको ही दोप देने लगते है। परन्तु अतमें निमित्त केवल निमित्त ही है। बेशक एक समय जैसे कैकेयीका दिमाग खराब हो गया उसी तरह धोबीका दिमाग भी खराब हो गया। परन्तु रामके वनवाससे राज परिवारका कलह सदाके लिए शात हो गया। उसी प्रकार सीताजीके वनवाससे मानो रामके राज्यतत्रकी छोटी बडी सारी कमियां सदाके

लिए दूर हो गई और रामराज्यकी विजय-पताका लोगोके हृदयरूपी आकाशमें 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' फहराती रही।

८८

वाल्मीकि-आश्रममे सीता

महर्षि वाल्मीकि आज अपने आश्रमसे वहुत दूर प्रात कालकी हवामे घूमते घूमते निकल आये थे। हाथ-मुह धोकर ज्यो ही वे वनकी शोभा निहारने लगे, त्यो ही उनकी दृष्टि अचानक जानकी पर पडी। उनके आसपास दूसरे नर-नारियोको न देखकर महर्षिने अपनी आखे वहासे हटा ली। मुनिको यही शोभा देता है। यौवनमे प्रवेश करनेके वाद तो सगी पुत्रीकी भी मर्यादाओंका पालन होना चाहिये। इस वीच सीताजीका ध्यान भी महर्षिकी ओर गया। विदेह जनककी पुत्री अव कैसे वैठी रहती? सयत गतिसे जानकी वाल्मीकिके पास आई और आदरपूर्वक उन्हे दण्डवत् प्रणाम किया।

महर्षि वोले "वेटी, तू कौन है और कहासे आई हे? ऐसे वनमे तू अकेली क्यो है?"

महर्षिकी सौम्य वाणीमे अगाध वात्सल्यका अनुभव करके जानकी गद्‌गद हो गई। उनकी आखोमे हर्षके आसू चमकने लगे। वे धीमे स्वरमे वोली "महर्षि, मेरा नाम जानकी है। मैं जनकराजकी पुत्री हू, महाराज दशरथकी पुत्रवधू हू और वर्तमान अवधेश रामकी अर्धांगना हू। मैं अयोध्या-नरेशकी आज्ञासे इस वनमे आयी हू और दूसरा आदेश न हो तव तक मैं इस वनमे ही रहनेवाली हू। रामचन्द्रजीके भाई लक्ष्मण स्वय मुझे यहा छोड गये हैं। अभी अभी वे अयोध्याकी ओर लौटे हैं। मैं थोडा चिन्तन करती यहा वैठी थी, इतनेमे वात्सल्य-मूर्ति पिताके समान आप गुरुजीके दर्शन हुए। आपके दर्शनसे मैं पवित्र हो गई हू, मेरा जीवन धन्य हो गया है।"

सीताजीके फूलके समान कोमल वचन सुनकर महर्षि वाल्मीकिके आनन्दका पार न रहा। उनकी आंखोंके सामने सीताका संपूर्ण जीवन चक्र घूम गया 'कहां मिथिला कहां अयोध्या कहां वनवास और कहां लंकाकी अशोक वाटिका कहां अयोध्यामें पुनरागमन और कहां पुनः यह वनवास!' महर्षिने मन ही मन वीर नारी सीताका अभिवादन किया और स्वगत कहा कौन कहता है नारी अबला है! नारी डरपोक है!'

कुछ क्षण बाद जानकीसे उन्होंने कहा पुत्री मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचान चुका हूं। तेरे पूज्य पिताजी मुझे अपना गुरु मानते हैं। मेरा नाम वाल्मीकि है। मुझे तेरे अद्भुत जीवनका भी पूरा ज्ञान है। श्रीराम, लक्ष्मण और दूसरे सब यहां वनमें ही तुमसे मिलेंगे। चल बेटा, हमारे आश्रममें चल और आश्रमका सब कामकाज अपने हाथमें ले ले!

वाल्मीकि जैसे सर्वथा निःस्पृही और पूर्ण संयमी ऋषिके हार्दिक वात्सल्यसे ओतप्रोत वचन सुनकर सीताजीकी सारी चिन्तायें दूर हो गईं। तेरे हृदय-स्वामी रामचन्द्र तुझे यहां मिलेंगे महर्षिके इन शब्दोंने सीताके अन्तरके सारे दुःख हर लिये। जिन महर्षिके नामसे वे परिचित थीं जिनकी वीतरागताके विषयमें अनेक बातें उन्होंने सुनी थीं उन्हीं परम तपस्वी वाल्मीकिका नित्य सत्संग अपार वात्सल्यके साथ प्राप्त हो इससे अधिक उन्हें क्या चाहिये था?

जानकी अपने पिता स्वरूप महर्षिके पीछे पीछे लाडली बालिकाकी तरह आश्रमकी दिशामें चलने लगी। बचपनका प्यार और दुलार आज जानकीजीको आश्रमके अत्यन्त पवित्र वातावरणमें जीवनके लगभग २० वर्षके बाद अनायास मिल गया। प्रकृतिने वाल्मीकिजीको भी दीर्घ तपस्याके बाद रससिक्त जैसी पुत्रीसे आज अनायास भेंट करा दी!

*

जानकीके वियोगमें रामचन्द्रकी अनेक रातें जागते जागते बीतीं। वे विचारोंमें डूब जाते 'जानकी कहां होगी? क्या करती होगी? मेरे विकासके साधन इस शरीरकी उसे वनमें भी कितनी चिंता रहती होगी?' कभी वे सोचने लगते क्या सगर्भा सीताको अकेले वनमें

भेजनेके सिवा राज्यधर्मके पालनका दूसरा कोई मार्ग नही था ? राज्य धर्म-पालनके अति उत्साहमे आकर मैंने पत्नीके प्रति पतिके धर्म-पालनमें कोई भूल तो नही की ? मैंने जल्दीमे तो सीताको वनमे भेजनेका निर्णय नही कर डाला ? " परन्तु इस मन्थनके अतमे उनके अन्त करणसे एक ही आवाज आती "अपने साथ तथा अपने अगभूत व्यक्तियोके साथ अन्याय करके भी दूरके लोगोके प्रति अधिक न्याय करनेमे अन्तत सब लोगोका हित समाया हुआ है। शर्त केवल इतनी है कि अपने आपसे तथा अपने अग बने हुए प्रियजनोसे अन्याय सहन करानेके पहले दोनोको सहनक्षम बना देना चाहिये तथा साधारण समयमे दोनोके प्रति प्रेमपूर्ण हृदयसे कर्तव्यका पूर्णतया पालन किया गया है इसका विश्वास खुदको और अपने अग बने हुए प्रियजनोको हो चुकना चाहिये।"

इस कसौटी पर राम जब अपनेको कसते तब उन्हे अपने व्यवहारसे सतोष होता था और इस गहरे मन्थनके समयमे भी सच्चा आश्वासन मिलता था।

कभी कभी परिवारके प्रति अपने कर्तव्यो तथा राज्यके कर्तव्योका पालन करते समय भी सीताजीका वियोग रामको दु.खी बना देता था। इसके अतिरिक्त, माताओके स्वर्ग-गमनके बाद सीताजीकी छायाके अभावमे माडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्तिको भी सीताजीका वियोग सतत खटका करता था। लक्ष्मण भी कभी कभी एकान्तमे आसू बहाकर मन हलका कर लेते थे। यह सब भी रामचन्द्रजीको परेशानीमे डाल देता था। परन्तु अतमे सबको स्वय रामकी सान्त्वनासे ही शाति मिलती थी। स्वधर्मके पालनमे निहित कठोरताका स्मरण करके सब कोई शात और स्वस्थ बने रहते थे और अपने अपने दैनिक कार्योमे जुटे रहते थे। सारा वातावरण आनन्द और उल्लासमय बना रहता था।

इस प्रकार रामराज्यके सुनहले दिवस बीत रहे थे। रघुपति रामचन्द्र स्वय भी अधिकतर प्रजाकी उन्नति, शाति और सुखकी ही बाते सोचा करते थे। सद्भाग्यसे गुरु वशिष्ठकी छत्रछायामें अनेक ऋषि-मुनि सेवाभावसे राज्यकी प्रजामे सस्कार-सिंचनका कार्य करते थे और राज्यतत्र पर भी अपना और प्रजाके महाजनोका प्रभाव डालते थे। वैसे

तो राज्यमें अपन-आप ही गौ-ब्राह्मणका भलीभांति आदर और पालन पोषण होता था। फिर भी राज्यसत्ताके साथ थोडी बहुत त्रुटिया तो लगी ही रहती ह इसलिए यदि राजा स्वय अथवा राज्यके प्रमुख अधिकारी जरा भी असावधान हो जाय तो उनके कतव्य मागस च्युत होनमें देर नही लगती।

एक बार राघवको अचानक पता चला कि केवल यज्ञ करनेके कारण एक पवित्र शूद्रको राज्यतत्र द्वारा भारी दड मिला है और यह आरोप लगाया गया है कि उस शूद्रके यज्ञके कारण ही एक ब्राह्मणका इकलौता जवान पुत्र मर गया है। इस समाचारस रामको गहरा दुख हुआ। सबसे पहले उन्होंने उस शूद्रके आप्तजनो तथा राज्यकी सारी शूद्र जातियोको बुलाकर राज्यतत्रकी ओरस उनस क्षमा मागी। फिर दड पाये हुए शूद्रका हृदयस लगाकर सान्त्वना दी। इस दृश्यमें किसका मन द्रवित न होता?

रामने कहा शूद्र मेरे सबस ज्यादा प्रिय प्रजाजन इसलिए ह कि उनका काम समाजकी ऊची सेवा करना है उन्हें हम सबसे पवित्र मानते ह। गुरु वशिष्ठन कहा शूद्रोका काम स्वय एक यज्ञ है, इसलिए उनके सिर अन्य किसी यज्ञकी जिम्मदारी हम नही डालत। परतु इसका अथ यह नही है कि उन्हें यज्ञ करनका अधिकार नही है। इसक विपरीत, उनका प्रतिदिन चलनेवाला महान सनातन ही हम सबको यज्ञ करनकी प्रेरणा दता है।

जिसका पुत्र मर गया था उस ब्राह्मणस रामन कहा आजसे आप मुझ अपना पुत्र समझ लें। ब्राह्मण गद्गद हो गया और अपने पुत्रकी मत्युस शूद्र साथ जो अन्याय हुआ था उसका कारण अपनको मानकर वह सबके सामन पश्चात्ताप करने लगा। राज्यके सुब्राह्मण और महाजन यह कहकर पश्चात्ताप करन लगे कि यदि हम लोकमनको सतत जाग्रत रखकर सच्चे माग पर लगाय रहत तो एसी घटना न घटती। इसके बाद दड दनवाले राज्य-अधिकारियोके पश्चात्तापका तो कोई पार ही न रहा।

इस घटनाके निमित्तसे सब कोई ऊचे उठे। धन्धेके आधार पर ऊच-नीचका भेद करनेवाले स्थूल चक्षुओ पर गुण-दोषके आधार पर मनुष्यकी उच्चता तथा नीचताका निर्णय करनेवाले सबके आतरिक चक्षुओने पुन विजय प्राप्त की। सस्कृतिके इतिहासके ऐसे प्रसग इस बातके प्रमाण है कि बार बार पुराणवादिताकी दिशामे झुक जानेवाला लोक-मानस ऐसे आघातोसे स्थिर खडा होकर उन्नति और प्रगतिकी ओर बढता है।

८९

वाल्मीकिका वात्सल्य

वाल्मीकि-आश्रमका निवास सीताजीके लिए सतत ज्ञानामृत पान करानेवाला बन गया था। आश्रमकी छोटीसे छोटी घटना भी आध्यात्मिक ज्ञान करानेवाली सिद्ध होती थी। वैसे तो रावण द्वारा अपहरण होनेके पूर्व रामके साथ भी जानकीको दण्डकारण्यमे तथा यात्रामे अनेक ऋषियो और ऋषि-पत्नियोका समागम प्राप्त हुआ था। परन्तु इस आश्रममे उन्हे कोई अनोखी वस्तु मिलती थी। सभव है, सीताजीकी आजकी आयु तथा आजकी स्थितिके कारण उनकी अपनी जिज्ञासा ही अद्भुत बन गई हो। वाल्मीकि ऋषि मूलत वनवासी भील और घोर पापी थे। परन्तु हृदयका परिवर्तन होनेके बाद वे महासन्त बन गये थे। ऐसे महापुरुषके सतत सहवासका प्रभाव भी इसमे कारण बना हो। किसी समय वनराज — सिह — का परिवार आश्रमके सुरभित वातावरणसे आकर्षित होकर वहा आ पहुचता और हरिणोके झुड भी आकर उनके पास बैठ जाते। जानकीके मनमे भय और आश्चर्यका भाव पैदा होता न होता कि इतनेमे महर्षि हरिणोके बीच पहुच जाते और उनके शरीरो पर अपने कोमल हाथ प्रेमसे घुमाने लगते। हरिण चले जाते तो वाल्मीकि उनकी प्रतीक्षामे बैठे वनराजके पास पहुच जाते। उनके बैठते ही सिह भी बैठ जाता और उसकी केशावली पर

ऋषिराजका प्रमल हाथ घूमने लगा। गिर और वायम ने ज्नरी बात तो ममनी जा मकती है परन्तु सिहके साथ ऐसा वात्सल्य भी अनुभव किया जा सकता है यह कल्पना बुद्धिके दायरे पर है। यह बात सीताको और भी विचित्र मालूम होती कि वाल्मीकिके इस वातावरणमें पशु अपना प्रकृतिगत वैर और विरोध भी भूल जाते थे। वेदोच्चारके समय पशु भी श्रोताओंके समान एकत्र हो जाते तब तो सीताजीके आनन्द और आश्चर्यका पार न रहता।

एक बार अवसर देखकर उन्होंने गुरु चरणोंमें मस्तक नवाकर आश्रमके इस रहस्यको जाननेकी इच्छा प्रगट की। वाल्मीकि बोले बेटी इसमें कोई चमत्कार नहीं है। किसी प्रकारकी अस्वाभाविकता भी इसमें नहीं है। प्राणीमात्रमें जो चेतना निवास करती है उस दृष्टिसे प्राणीमात्र एक-दूसरेके मित्र हैं। बाहरका विरोध दिखाई देनेवाली प्रकृतिकी अपेक्षा यह प्रकृति अधिक गहरी और मौलिक है। हरिणमें जो चेतना है वही सिंहमें भी है जो चेतना सर्पमें है वही चाल्में भी है। इस हरी भरी वनस्पतिमें भी वही चेतना निवास करती है। देव दानव और मानवमें भी वही चेतना विद्यमान है। विश्वमें पाये जानेवाले छोटे-बडे सभी जीव जन्तुओंमें उसीका तेज दिखाई पडता है। इस विधानको समझकर प्राणीमात्रके साथ तन्मय बनना ही मानव-जीवनका परम लक्ष्य है।

जानकीके मनमें सुनते सुनते ही एक प्रश्न उठा। महर्षिने पूछनेकी अनुमति दी इसलिए उन्होंने पूछा ऋषिराज यह बात अच्छी तरह मेरी समझमें आ गई कि मनुष्य-जातिके साथ ही नहीं परन्तु विश्वकी प्राणीसृष्टिके साथ भी हमारा इस प्रकारका अभिन्न सम्बन्ध है। इस दृष्टिसे देखें तो पुरुष और स्त्रीके बीच भी कोई तात्त्विक भेद नहीं है। परन्तु एक प्रश्न मनमें उठता है कि वनमें रहनेवाले ऋषि मुनि श्रेष्ठ हैं अथवा बस्तीमें घूमने या स्थिर रहनेवाले ऋषि मुनि श्रेष्ठ हैं? इन दोनोंमें किनकी साधना श्रेष्ठ मानी जाय?'

वाल्मीकिजीने हँसकर उत्तर दिया 'तू ही बता बेटी तुझे कौन श्रेष्ठ लगते हैं?'

सीताजी मुसकराती हुई वोली · "परम पिता, मै क्या वताऊ? परन्तु आपकी आज्ञा है इसलिए मै कहती हू कि मुझे तो वनवासी ऋपि ही श्रेष्ठ लगते है। जव मै अनेक दृष्टियोसे जाच करके देखती हू, तो मुझे वनवासियोमे ही अधिक वीतरागता, स्वाभाविक त्याग और अविरत तपस्या दिखाई देती है।"

महर्षि पहले तो छोटे वालककी तरह जोरसे हसे और फिर गभीर होकर वोले "वेटी, कुदन और चन्दनकी परीक्षा कसौटी पर चढनेके वाद ही होती है। हमारे जैसे वनवासियोके जीवनमे कसौटी पर चढनेके अवसर विरले ही आते है, इसलिए हम श्रेष्ठ दिखाई देते है। यदि मै अपनी ही वात कहूं तो मुझे गुरु वशिष्ठ अयोध्यामे स्थायी रूपसे रहते हुए भी कही अधिक श्रेष्ठ लगते है। प्रतिदिन जीवनमें आनेवाले महान प्रलोभनोके सामने वे योगवीर कैसे अटल खडे रहते है! ये केवल शिष्टाचारके शव्द नही है, परन्तु मेरे हृदयके शव्द है।"

सीताजी "आपके जैसे महर्पिको तो यह नम्रता ही शोभा देती है। अव मै समझ गई। मूल स्वभावको देखते हुए न तो कोई ऊचा है, न नीचा है। जिस प्रकार वाह्य स्वभाव-भेदके कारण स्त्री-पुरुपके कार्यक्षेत्र अधिकतर अलग अलग होते है, परन्तु अपने अपने स्थान पर दोनो ही एक-दूसरेसे श्रेष्ठ और सच पूछा जाय तो समान है, उसी प्रकार वनप्रिय ऋपिगण और ग्राम तथा नगर-प्रिय ऋपिगण भी वस्तुत समान है।"

महर्पि वाल्मीकिने सीताजीकी वातका समर्थन करते हुए जोडा . "दोनो एक-दूसरेके पूरक है। इतना ही नही, कई वार वनवासियोको अपने विकासके लिए ग्रामवासी ऋपियोके वीच जिज्ञासु वनकर रहना पडता है। यही वात ग्राम तथा नगरवासी ऋपियोके लिए भी सच है। वास्तवमे भीतरसे जो सद्‌गुणोंमे उत्तम है वही श्रेष्ठ है। वाह्य परिस्थिति मनुष्यका मूल्य आकनेमे सहायक तो होती है, परन्तु वह मूल्याकनका अतिम मापदण्ड नही है। गृहस्थो और सन्यासियोको भी यही नियम लागू होता है। उनके विपयमे भी निश्चित रूपसे यह नही कहा जा सकता कि कौन ऊचा है और कौन नीचा।"

सदा सीताको महर्षिके इन वचनों द्वारा जीवनका अनोखा पाथेय प्राप्त हुआ। सत्यकी अगाध महिमाका उन्हें स्पष्ट दर्शन हुआ।

९०

'प्रजा राज्यसे बडी है'

जिस प्रकार व्यक्तिके विकासके लिए यज्ञ दान और तप आवश्यक है, उसी प्रकार राष्ट्रके विकासके लिए भी यज्ञ दान और तप आवश्यक है। रामचन्द्रजी महान त्यागी थे। फिर भी एक आदर्श शासकके नाते अयोध्याकी महान प्रजाके प्रति अपने महान उत्तरदायित्वका उन्हें सदा ध्यान रहता था। इस ध्यानके साथ ही साथ रामको अपनी मर्यादाओंका भी भान था। अपने दायित्वको समझनेवाले शासकोंकी ऐसी जागृति और नम्रता उनका अनुसरण करनेवाली प्रजाको तथा स्वयं शासकोंको भी सदा ऊंचा उठाती है।

जिस तरह एक धोबीके बिना सोचे-समझे कहे गये वचनोंमें भी रामने सत्यको ही खोजा और उसके फलस्वरूप अंतमें धोबीका परिवार, अयोध्याकी प्रजा तथा स्वयं राम भी अधिक उन्नत और अधिक शुद्ध बने, उसी तरह एक शूद्रके यज्ञके कारण राज्यतंत्र तथा प्रजाके विभिन्न वर्गोंने जो रुख अपनाया उसमें से भी रामने महत्त्वकी वस्तु खोज ली। उन्हें लगा कि साकेतका राज्य दान और तपकी प्रक्रियाओंमें से तो निकल चुका है, अब उसे यज्ञकी प्रक्रियामें से भी निकलना चाहिये। परन्तु गुरु वसिष्ठकी सम्मतिके अभावमें राम अपने सुविचारोंको भी अपूर्ण मानते थे, तब राज्यकी प्रजासे सम्बन्ध रखनेवाली बातमें तो प्रजाके श्रेष्ठ प्रतिनिधि गुरु वसिष्ठको पूछे बिना वे कदम उठा ही कैसे सकते थे? पहले उन्होंने अपने भाई भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी सम्मति प्राप्त की। बादमें चारों भाई गुरुजीके पास गये।

रामके नम्र अभिवादनके साथ ही वसिष्ठजी बोले, 'प्रिय राम, साकेतके राज्यतंत्रका इतना बडा भार तुम्हारे कंधों पर है। तुम्हारी

कार्य-व्यस्तताका कोई पार नही है। फिर भी तुम हर अवसर पर मेरे पास आनेका कष्ट करते हो। इसकी अपेक्षा तुम मुझे ही क्यो नही वुलवा लिया करते?"

गुरुकी चरण-रज माथे पर चढाकर रामने कहा· "गुरु महाराज, आपकी अतिशय नम्रता आपसे यह कहला रही है। परन्तु मैं नम्र भावसे कहना चाहता हू कि मेरी दृष्टिमे प्रजा सदा राज्यसे वडी है और प्रजासे सत्य वडा है। आप मेरे, राज्यके तथा प्रजाके गुरु-स्थान पर विराजते हैं। आज मै केवल गुरु वशिष्ठके रूपमे आपके पास नही आया हू, परन्तु राज्यके तथा प्रजाके महान गुरुपद पर आसीन महर्पिके रूपमे आपके चरणोमे आया हू। इसमे मेरे समयका प्रश्न ही नही उठता, क्योकि मैं राष्ट्रका ही एक प्रश्न लेकर इस समय आया हू, जो राज्यतत्रका भी एक अग है।"

गुरुजी "अवधेश, तुम्हारी वात ठीक है। अव वताओ, तुम्हारा प्रश्न क्या है?" रामने यज्ञके सम्वन्धमे अपने विचार गुरुके सामने रखे। गुरु वशिष्ठ वोले· "तुम्हारी वात सत्य है। दशरथकी मृत्यु, राम-सीताका वनवास, जटाधारी भरतका राज्य-सचालन, सीताका वन-गमन तथा माताओका स्वर्ग-प्रयाण — ये सव घटनाये राज्यतत्रके तपको वताती हैं। प्रत्येक अवसर पर राज्य और प्रजाने जो त्याग किया है, वही न्याय और दान है। अत अव राज्य तथा प्रजाको यज्ञ अवश्य करना चाहिये। उसमे भी आज जव व्यक्तिके रूपमे एक राजाके शासनकी प्रथा है तव तो प्रजाकी-ओरसे स्वय राजाको ही ऐसी वातोमे उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये। हमारे शास्त्रोमे 'राजा कालस्य कारणम्' और 'यथा राजा तथा प्रजा' वचन इसी दृष्टिसे कहे गये हैं। और मुझे यह भी लगता है कि राज्यको अव अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये। यज्ञका अर्थ केवल इतना ही नही है कि पच महाभूतोसे लिया गया ऋण चुकाया जाय। इस यज्ञसे विश्वमे आदर्श अनुशासनका प्रचार और परीक्षा भी होगी। एक सर्वोत्तम अश्वकी पीठ पर राम-राज्यका छत्र रखकर उसे विना किसी वन्धनके छोडा जायगा। उस अश्वको यदि कोई पकडे नही और वह सकुशल अयोध्या लौट आये,,

तो माना जायगा कि रामराज्यकी सर्वत्र विजय है, उससे यह भी माना जायगा कि सारे विश्वमें राजा रामसे श्रेष्ठ कोई राजा नहीं है। इसके फलस्वरूप चारों दिशाओंमें बिना किसी संघर्षके रामराज्यका डंका बजने लगेगा। परन्तु यदि कोई उस सर्वोत्तम अश्वको पकड़ेगा तो न केवल रामराज्यकी परीक्षा होगी परन्तु इसकी भी प्रतीति होगी कि विश्वमें राजा रामसे श्रेष्ठ कोई राजा अवश्य है।'

रामको इस अश्वमेध यज्ञकी अंतिम बात बहुत अच्छी लगी। उत्तम पुरुषोंकी विशेषता ही इस बातमें होती है कि वे अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तिके बारेमें जानकर बहुत खुश होते हैं और अपना अधिक विकास करनेको तत्पर रहते हैं। अपनी इस विशेषताके कारण कोई उनसे श्रेष्ठ न निकले तो भी वे अहंकार अथवा ईर्ष्याकी आगसे जलते नहीं। वे यह भी समझते हैं कि समाजको प्रेमपूर्ण अनुशासनकी जरूरत होती है। परन्तु जो स्वयं अपने पर कड़ा अनुशासन रख सकते हैं वे ही समाज पर प्रेमपूर्ण शासन करनेका अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार अपने साथ वे समाजको भी उत्तरोत्तर अधिक ऊंचा उठा सकते हैं। इसकी प्रतीति रामके जीवनके अनेक प्रसंगोंसे हो जाती है।

इस अश्वमेध यज्ञमें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह खड़ा हुआ 'इस यज्ञमें पति-पत्नी (राजा और रानी) दोनोंको साथ बैठकर यज्ञ कार्य करना चाहिये। राजा राम तो थे ही परन्तु रानी सीताको साथ कैसे बैठाया जाय? सीताजी तो अरण्यमें रहती थीं। केवल यज्ञके लिए उन्हें बुलाया भी कैसे जाय? जब रामचन्द्रजी बादमें वनवाससे अयोध्या नहीं लौटे तो सीताजी भी कैसे लौट सकती थीं? वे भी तो अपनी टेकको प्राणपणसे रखा करनेवाले पतिकी ही वीरांगना पत्नी थीं न?

सब कोई विचारमें पड़ गये। जिन रामने माता पिताका वचन पालनेके लिए वनवास स्वीकार किया उन्हीं रामको पिता दशरथने पुनः सुमंत सारथिके द्वारा आज्ञा भेजी कुछ समय वनमें घूमकर अब अयोध्या लौट आओ। इस आज्ञाको स्वयं रामने भी जब माननेसे इनकार कर दिया तब रामके अनुयायी सीता और लक्ष्मणका तो कहना ही क्या? जिन कैकयी माताने तापस-वेश धारण करवाकर रामको

वनमे भेजा, उन्होने वनमे आकर रामसे राजगद्दी पर बैठनेके लिए अयोध्या लौटनेकी विनती की, फिर भी रामने उनकी बात नही मानी। राम अच्छी तरह समझते थे कि सत्य माता-पितासे अधिक महान है। सत्यको आच न आये और त्याग तथा बलिदानकी भावना बढती हो, तो माता-पिताके वचनका मूल्य सबसे अधिक माना जायगा। परन्तु यदि सत्यको आच आनेका भय हो और त्याग व बलिदानकी भावना मद पडती हो, तो माता-पिताके वचनका भी कोई मूल्य नहीं है। 'सत्यदेवो भव' सूत्र यदि नींवमे हो, तो ही 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव' तथा 'अतिथिदेवो भव' जैसे सूत्र महत्ता प्राप्त करते है। जहा सत्यका सर्व-प्रथम महासूत्र न हो वहा दूसरे सब महासूत्र अल्प ही नही, परन्तु निरर्थक भी हो जाते है। यही सूत्र सीताके बारेमे भी सत्य था। अब धोबीका परिवार भी आकर सीताजीको वापिस बुलानेकी रामसे प्रार्थना करे और स्वय राम सीताजीसे लौट आनेकी प्रार्थना करे, तो भी उद्देश्य पूरा होनेसे पहले सीताजीके अरण्यसे अयोध्या लौटनेकी कोई सभावना नहीं थी। ऐसी स्थितिमे बहुत सोच-विचारके बाद 'दूसरा विवाह करने' की सूचना मिलना स्वाभाविक था। ऐसी सूचना अयोध्याके लिए नई भी नही थी। राजा दशरथकी तीन रानिया थी। फिर राम यदि दूसरी पत्नी लाये, तो कौन इसका विरोध कर सकता था? और करता भी क्यो?

परन्तु रामको तो राज्यमे और राज्यकी प्रजामे नयी नयी परपराये स्थापित करनी थी। **जिस क्रातिमें त्याग नहीं है, जिस क्रांतिमें वर्षो पुराने अन्यायोको मिटानेकी अहिंसक और परिणामकारी शक्ति नहीं है, वह क्रांति सच्ची और संपूर्ण हो ही नहीं सकती। जिन सुधारोमे सुविधाका लचीला बहाना छिपा रहता है, वे सुधार न तो स्थायी होते और न सुनिश्चित होते है।** राम पगु क्रातियो और पगु सुधारोके प्रवाहमे बहनेवाले नही थे। उन्होने दूसरी पत्नीकी सूचनाका स्पष्ट किन्तु नम्र और तेजस्वी उत्तर दिया "यदि सीता रामके सिवा अन्य किसीको अपना पति नही मान सकती, तो राम भी सीताके सिवा अन्य किसी स्त्रीको अपनी पत्नी नही मान सकता। यदि जीवनके व्यवहारोके लिए

दूसरी पत्नी नहीं हो सकता, तो धर्मरूपी यज्ञके लिए भी दूसरी पत्नी नहीं हो सकती।

कितना सुंदर उत्तर था यह! उस शुभ क्षणमें विश्वकी स्त्री शक्तिने राम पर कितने आशीर्वाद बरसाये होंगे! जो नियम व्यवहारमें सुनियम हो वह धार्मिक क्रियामें तो दुगुना सुनियम होना चाहिये। और जिस आदर्शका जीवनके व्यवहारसे साथ कभी मेल न हो वह आदर्श जगतमें कोई मूल्य नहीं रखता। भगवान राम इसी कारणसे भगवान माने गये।

एक ओर प्रजानिष्ठ राजा राम धोबी और धोबिनके आवेशपूर्ण वचनोंको सर्वानुमतिके अनुशासनमें स्थान देते हैं और दूसरी ओर वही राम सर्वानुमतिके 'दूसरी पत्नी करो' के अनुशासनको स्वीकार नहीं करते यह कैसे आश्चर्यकी बात है! परन्तु गहरा विचार किया जाय तो इसमें नया और आश्चर्यजनक कुछ नहीं है। जहां सत्य और न्यायको हानि न पहुंचे और त्याग तथा बलिदानकी भावना बढ़े वहां एक धोबिनका वचन भी राम और सीताके लिए सर्वश्रेष्ठ महत्त्वका वचन बन जाता है। परन्तु सत्य और न्यायको हानि पहुंचनेके भयके साथ जहां सुविधाकी स्वीकार्य बहाना मिल जाता है वहां राम समस्त प्रजा और गुरुजनोंके वचनको भी विनयपूर्वक भंग करनेकी शक्ति रखते हैं। धन्य हैं श्रीराम! व्यक्तिसे समष्टि अधिक महान है, परन्तु व्यक्ति और समष्टि सबका मूल सत्य तो सबसे महान है ही। गुरु वशिष्ठकी अन्तरात्मा रामके इस निर्णयसे प्रसन्न हो गई। तब प्रजाकी प्रसन्नताका पूछना ही क्या? अयोध्याके शिक्षित नारी समाजमें सीताके वन-गमनका

सूक्ष्म देहसे तो वे रामके मनमे ही रहती है। अव राम यदि समत हो तो रामके मनको जाननेवाला कोई कलाकार उनके मनमे वसी हुई सीताको प्रतीकके रूपमे किसी प्रतिमामे अकित कर दे।"

राम गुरुजीके इस मानसशास्त्रीय हलसे वहुत प्रभावित हुए। रामने इस प्रस्तावको स्वीकार किया और सवके मन हर्षसे भर गये।

एक रामभक्त कलाकारने सीताजीकी प्रतिमा वनानेका वीडा उठाया। इस कार्यमे हनुमान काफी सहायता कर सकते थे। इतना निश्चित हो जानेके वाद एक ओर प्रतिमा-निर्माणका कार्य आरभ हुआ और दूसरी ओर अश्वमेध यज्ञके निमत्रण जहा-तहा भेजे जाने लगे। इन निमत्रणोमे जनकराजका स्थान तो होना ही चाहिये। गर्भवती सीताके वनवासकी कल्पना मिथिला नगरीमे किसीको नही थी। इस-लिए राम और सीता तथा अन्य तीन पुत्रियोसे मिलनेका उल्लास सुनयनाजीके मनमे छा गया।

९१

लव और कुश

वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें जानकीजीको एकसाथ दो पुत्र जन्मे। वे दिनोदिन वढने लगे। वानप्रस्थ आश्रमका पालन करनेवाली ऋषि-पत्नियोने पुण्यकार्य मानकर दोनो वालकोंके पालन-पोषणमें वडा रस लिया। रामको भी वाल्यावस्थामें जो लाभ न मिल सका, वह राम-पुत्र लव-कुशको मिलने लगा। दोनोको गर्भसे ही नये सस्कार प्राप्त हुए थे। गुरुसे शिष्य सवाई और पितासे पुत्र सवाई इसी प्रकार वन सकता है। सकुचित और एकागी दृष्टिसे देखनेवाले मनुष्य इस रहस्यको कैसे पा सकते है? उनकी आखे तो राम और सीताके वियोगके आसू ही देख सकती है।

लव और कुश दोनो एक-दूसरेसे वढकर थे। दोनो साथ दूध पीते, साथमें खाते साथमे खेलते-कूदते और साथ साथ ही विकास

दूरसे देखकर क्षण भरके लिए तो स्वय जनकराज भी भ्रममें पड गये, यद्यपि जानकीके अरण्यवासकी बात व अयोध्या आने पर श्रीरामके मुखसे ही जान चुके थे। उन्होंने यह भी जान लिया था कि राम यज्ञके लिए दूसरा विवाह नहीं करनेवाले हैं। फिर भी प्रतिमाको देखकर ऐसा लगता था मानो यज्ञके लिए ही सीताजी विमानमें उडकर वनसे अयोध्या आ पहुची है।

अयोध्याका वह धोबी प्रतिमाके पास जाकर दण्डवत प्रणाम करता और क्षमा मागता था। यह दृश्य देखकर सबको ऐसा लगने लगा कि सचमुच ही सीताजी अरण्यसे लौट आई है। इसके बाद तो जो लोग रामचन्द्रजीको प्रणाम करते थे वे सीताजीको भी करते थे। यह देखकर राम चकित हो गये और कलाकारकी तादृश कलाकृतिसे बहुत प्रभावित भी हुए। परन्तु जब जानकीकी माता सुनयनाजी उस ओर आईं तब रामने खडे होकर कहा पूज्य मुनिवरो गुरुजनो वानप्रस्थो आमंत्रित सज्जनो और नगरजनो मेरे पास बैठी हुई जानकीजी नहीं है परन्तु उनकी प्रतिमा है। कलाकारने ऐसी कलाकृति निर्माण की है जो हम सबको मुग्ध कर रही है।

यह सुनकर सब स्तब्ध हो गये क्या ये सीताजी नहीं है? केवल उनकी प्रतिमा है?

रामने फिर एक बार कहा सचमुच ये सीताजी नहीं है सीताजीकी प्रतिमा है। कलाकारने सीताजीकी तादृश प्रतिमा निर्माण करनेमें जो कुशलता प्रकट की है उसके लिए मैं अपनी ओरसे तथा सभाकी ओरसे उन्हें हार्दिक अभिनन्दन देता हूँ।

कलाकार सभामें खड़ा हुआ और रामचन्द्र जनकराज आदि सबका उसने अभिवादन किया। सभाने तालियोंसे उसका सम्मान किया। कलाकी पारखी जनताको कलाकारने नमस्कार किया और कहा यह काम मैंने भगवान रामकी दयासे आरंभ किया था। मैं तो केवल एक निमित्त ही हूँ। इस कलाकृतिका श्रेय मुझे नहीं परन्तु भगवान रामको और उनके साथियोंको मिलना चाहिये। कलाकार गुणोंके अनुसार अपनी कलाकृतिको रंग रेखा और आकार तो दे

सकता है, परन्तु गुणोका ज्ञान करानेवाला कोई अवश्य होना चाहिये सीतामाताके गुणोका यथातथ वर्णन करनेवाले तथा मुझमे सच्ची ऊर्मि उत्पन्न करनेवाले भगवान रामके चरित्रवान साथियोका मुझ पर वहुत वडा उपकार है।"

लोगोको इस वातका भी पता चल गया कि इन सव गुणोको तथा वन्य वातावरणको अपनी कल्पना-सृष्टिमे आकार प्रदान करनेके लिए कलाकारने कई दिनो तक तपस्या करके एकाग्रता सिद्ध की थी। इससे सभाको इस वातका विश्वास हो गया कि सच्चे कलाकारमे पहले चरित्रका जन्म होता है और उसके वाद कलाका जन्म होता है। सच्ची कला चरित्रका अनुसरण करती है। इस प्रकारकी कला सरल, भव्य और लोकव्यापी हो सकती है।

सव लोग कला और कलाकारके विचारोमे तन्मय थे, इतनेमे यज्ञका घोडा आ पहुचा। उसका शरीर श्वेत और सुन्दर था। कान श्यामवर्णके थे। अपने तेज और रूपसे वह मोहक लगता था। अव सभाके ध्यानका केन्द्र वह अश्व वन गया। सिर पर उसके मणियुक्त मोरपखकी कलगी सुशोभित थी और पीठ पर रत्नजडित जीन चमक रही थी। एक सेवक रेशमकी सुन्दर डोरीसे वाधकर उसे सभामे लाया। उससे कुछ दूर हजारो सुसज्ज सैनिक खडे थे। राजा रामने अश्वका पूजन किया। यह विधि ऋषि विश्वामित्रजीने कराई। इसके वाद हजारो हाथोसे दान वाटा गया। सूर्याश्वके समान इस घोडेके मस्तक पर एक अभिषिचित पत्र लगाया गया, जिस पर लिखा था "जिसमे युद्ध करनेकी शक्ति हो वही राजा रामचन्द्रके इस घोडेको वांधे। जिसमे यह शक्ति न हो वह या तो रामचन्द्रजीकी अधीनता स्वीकार करे या वनमे भाग जाय।"

यज्ञके इस अश्वके साथ शत्रुघ्न तथा हजारो सैनिक रामकी आज्ञा लेकर रवाना हुए।

९३

यज्ञका अश्व पकड़ा गया

आज लव और कुश परम्परा निकलकर सबेरे ही सबेरे विशाल अरण्यमें निकल गये थे। दोनों कुमारोंके दोनों हाथ धनुर्विद्याकी साधना में लगे थे। दोनों बड़े उत्साहसे अपना अपना लक्ष्य भेदनमें मग्न थे। परन्तु दोनों इस बातकी सतत सावधानी रखते थे कि कोई पक्षी अथवा पशु उनके बाणोंका शिकार न बन जाय।

इतनेमें अयोध्यासे छोड़ा गया अश्वमेध यज्ञका वह सुन्दर अश्व उधर दिखाई दिया। दोनों कुमारोंने उस सुन्दर घोड़ेको पकड़कर एक झाड़के साथ बांध दिया। तुरन्त घोड़ेके साथ चल रहा एक सैनिक आगे आकर नम्रतासे बोला — अयोध्यापुरीका यह यज्ञका घोड़ा है। यह देखो उसके मुकुट पर यह पत्रिका लगी हुई है।

कुतूहलसे दोनों कुमारोंने उसे पढ़कर कहा — अच्छा तो अब हम आपकी शक्तिका ही माप निकालेंगे। अब हम घोड़ेको नहीं छोड़ेंगे।

एक दूसरे सैनिकने अधिक नरमीसे कहा — तुम वनके वासी हो। वनवासीका युद्धसे क्या सम्बन्ध? बालहठ न करो। घोड़ेको छोड़ दो। तीसरे सैनिकने हँसते हँसते कहा — ये बेचारे बालक रावणके समान शक्तिशाली राजाका वध करनेवाले श्रीरामको क्या जानें? चौथा सैनिक बोला — लो मैं ही घोड़ेको छोड़ लेता हूं। अनेक योद्धाओंको पराजित करके यहां आये हुए हम लोगोंकी बहादुरीको ये ऋषिकुमार कैसे जान सकते हैं?

कोई सैनिक घोड़ेके पास जाकर [illegible] पर उठाये इतनेमें तो सावधान! कहकर लवने एक बाण सन् सन् सन् शब्दके साथ छोड़ा। वह अपने लक्ष्य-स्थान पर होता हुआ आगे बढ़ गया। धरती हिल उठी। कैसी अद्भुत थी वह धनुष-कला! सब आश्चर्यसे मुग्ध हो गये साथ ही कांपने भी लगे।

अब कुश चुप न रह सका. "आप सब क्षत्रिय है या और कोई? इतने काप क्यो रहे है आप? हम तो वनमे पैदा हुए है, इसलिए वनवासी है। परन्तु देखना, कही आप लोग स्थायी रूपसे वनवासी न बन जाय। हम जिन ऋषि-मुनियोके चरणोमे रहते है, उन्होने हमे सिखाया है 'अहिंसा अवश्य ही सर्वोत्तम वस्तु है। परन्तु कायरतासे हारकर जीवित रहनेकी अपेक्षा कायरताको त्यागकर शस्त्र-युद्धमे लडते लडते मर जाना हजार गुना अच्छा है।'"

अब तो रामचन्द्रकी सेनाको दोनो कुमारोके साथ युद्ध करना ही पडा। परन्तु दोनो कुमार युद्धकलामे इतने कुशल थे कि सारे सैनिक हार गये। शत्रुघ्न भी पराजित हो गये। सूचना पहुचते ही लक्ष्मण और भरत अपनी शक्तिशाली महासेनाओके साथ युद्धके मैदानमे आ पहुचे। अयोध्याकी सेनाके हत और आहत सैनिकोको चारो तरफ देखकर उन्हे बडा दु:ख हुआ और विरोध पक्षमे केवल दो वल्कलधारी किशोरोको देखकर उनके आश्चर्यका पार न रहा।

९४

लव-कुशका पराक्रम

अयोध्यामे अश्वमेध यज्ञकी विधि धूमधामसे चल रही थी। ऋषि-मुनियो तथा वानप्रस्थोके मार्गदर्शनमे भूदेवोके अनेक दल उच्च स्वरमे शुद्ध वेदोच्चारसे वातावरणको गूजा रहे थे। अनेक प्रकारकी औषधियो-की आहुतिया दी जा रही थी। अग्नि, वरुण तथा अन्य देवताओकी पूजा तथा अजलि-क्रम चल रहा था। प्रजाजनो, महाजनो, क्षत्रिय-वीरो, आमन्त्रितो, द्विजवरो तथा मुनिवरोकी साक्षीमे भगवान राम यज्ञकी समग्र विधिमे सक्रिय भाग ले रहे थे। इस प्रकार यज्ञका रग पूरा पूरा जमा हुआ था।

उसी समय चार दूत आकुल-व्याकुल होकर यज्ञस्थान पर आये। उनके विह्वल मुखो पर सबकी आखे टिक गई। 'दौडिये दौडिये, सहायताके लिए दौडिये!' एक श्वासमे चारो दूत चिल्ला रहे थे।

सभाके गंभीर और शान लोगोंने उनसे कहा भाइयो समयको तो पहचानो। शांत हो जाओ। शांतिसे सब बात आदिसे अंत तक कहो।" परन्तु दूतोंके आनेसे सभाका शांत वातावरण क्षुब्ध हो गया। लोग उठने-बैठने लगे सर्वत्र भाग दौड़ मच गई। जहां गुरु वशिष्टजीकी बात भी सुननेको कोई तैयार न हो वहां अन्य लोगोंकी बात कौन सुनता? अंतमें स्वयं रामने खड़े होकर कहा शांत हो जाइये शांत हो जाइये! सारी सभामें फिरसे शांति छा गई। अब राम चारों दूतोंसे बात करने लगे। दूतोंने जो कुछ कहा उसका सार इस प्रकार है

हमारे विरोधमें केवल दो ऋषि-कुमार हैं। हमारी समस्त सेना धराशायी हो गई है। शत्रुघ्नजी भरतजी और लक्ष्मणजी तीनों युद्धमें मूर्छित हो चुके हैं। अब युद्धस्थल पर आपकी उपस्थिति अनिवार्य हो गई है। दैवने हम पर मानो आपत्तियोंका पहाड़ गिरा दिया है।'' इतना कहते कहते चारों दूत बालकोंकी तरह रोने लगे। सारी सभा भी सहानुभूतिसे रो पड़ी। रामचन्द्रजीने सबको शांत करते हुए कहा

इसमें कोई भेद होना चाहिये। ऋषि-कुमार ऐसा युद्ध लड़ें इसकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। इस बातको मैं मान ही नहीं सकता कि लक्ष्मण जैसे बहादुरको कोई युद्धमें पराजित कर सकता है। और भरतको स्थायी रूपमें मूर्छित करनेवाला विश्वमें कोई हो ही नहीं सकता क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि जिस भरतने धर्मको उसके सच्चे स्वरूपमें समझकर अपने अणु अणुमें समा लिया है उस भरतकी इच्छाके बिना इस प्रकार कोई उसका नाश कर ही नहीं सकता।'

रामके ऐसे प्रेरक वचनोंसे सभाके सब लोगोंकी व्याकुलता दूर हुई और उन्हें थोड़ी सान्त्वना मिली।

अन्तमें रामने कहा जो कुछ भी हुआ हो, परन्तु जब दूत ये समाचार लाये हैं तब तो मैं एक क्षणके लिए भी यहां रह नहीं सकता। मैं आप सबसे युद्धस्थल जानेकी अनुमति मांगता हूं। और सबकी संपूर्ण अनुमति तथा शुभेच्छाओंके साथ रामने अपने विभीषण आदि मित्रों तथा साकेतकी सेनाको लेकर वनकी ओर प्रयाण किया।

अश्वके न होनेसे यज्ञकी सपूर्ण पूर्णाहुति तो सभव नही थी। फिर भी रामके जानेसे अमर्यादित समयके लिए यज्ञकार्यको स्थगित करना पडा।

भगवान राम अपनी विशाल सेनाके साथ निर्धारित समय पर युद्धस्थान पर पहुच गये। अपने सामने उन्होने योद्धाओके समान सुसज्ज दो मुनि-पुत्रोको देखा। प्रथम रामने दोनो कुमारोको अभिवादन किया और फिर पूछा "हे सुन्दर मुनि-किशोरो, तुम दोनोके भाग्यशाली माता-पिता कौन है? तुम अरण्यमे क्यो रहते हो? क्या तुम किसी प्रदेशके राजा वनना चाहते हो?"

दोनो कुमारोने नम्र किन्तु दृढ वाणीमे कहा "वाल्मीकि ऋषि हमारे पालक पिता है। विदेह जनकराज हमारे मातामह है। हमारी माताजी ऋषि-आश्रममे वर्षोसे रहती है, इसीलिए हम मुनिपुत्र कहलाते है। हम वनकी प्राकृतिक शोभाका आनन्द ले रहे है। हमारे पालक पिताने हमे जो शिक्षा-दीक्षा और प्रशिक्षण दिया है, उसमे भौतिक राज्यका कोई महत्त्व नही है। केवल आध्यात्मिक राज्यका ही महत्त्व है। इस मार्गमे जहा जहा अहकार सिर उठाता है, वहा वहा उससे युद्ध करना हमारा पहला कर्तव्य है। इस अश्वके मुकुटके साथ जो पत्र लगा है, उसमे हमे अहकार दिखाई दिया। इसलिए उस अहकार-का विरोध करनेकी इच्छा हो आई। आप इस तरह पूछताछ करनेके वजाय धनुष-वाण हाथमे लीजिये और हमसे युद्ध करनेके लिए तैयार हो जाइये। तव हमारे माता-पिताकी सही कल्पना आपको हो जायगी।" कैसी वाक्छटा और कैसा तेज!

कौन महान पिता अपनेसे श्रेष्ठ पुत्रोको देखकर आनदित नही होगा? रामचन्द्रके हृदयमे इन ऋषिपुत्रोको देखते ही वात्सल्य उमड आया था। पूर्वजन्मके रक्तके सम्वन्धियोको देखकर भी जव स्नेह उमड आता है, तव इस जन्मके सम्वन्धियोकी तो वात ही क्या कही जाय? योगी होते हुए भी राम वात्सल्यकी भावनासे अभिभूत हो गये। अव तो दोनो कुमार वडे हो गये थे, परन्तु माता-पिताको तो प्रौढ हो जानेवाली सन्तान भी वालक ही मालूम होती है। क्षणभरके लिए तो

कि बहादुरीमें भी गहरा विवेक और गुरुजनोंका मार्गदर्शन आवश्यक होता है।

इस प्रकार आंतरिक पश्चातापसे दोनों कुमारोंके नेत्र और हृदय रो रहे थे तभी महर्षि वाल्मीकि वहां आये। उस समय तक जानकीजीकी मूर्च्छा दूर हो चुकी थी।

९५

पिता-पुत्रका परिचय

मूर्च्छा दूर होते ही जानकीजी बोलीं कुमारो तुम्हारी धनुर्विद्याका तुमने यह उपयोग किया? जो हनुमान मेरा धर्मपुत्र है और तुम्हारे पिताजीका परम विश्वस्त तथा अनन्य भक्त है उसकी तुमने यह दशा कर डाली है?

महर्षि वाल्मीकि कहने लगे बेटी सीता जो होनेवाला था वही हुआ है। अधिक चिंताकी कोई बात नहीं है।

इतनेमें हनुमान कुछ इस तरह उठे मानो गहरी नींदके बाद आलस्य लेते हुए जाग रहे हों। उठते ही सीताजीके चरणोंमें उन्होंने अभिवादन किया। सीताजीने उनके मस्तक पर हाथ रखा। हनुमान और सीताजी दोनोंकी आंखोंमें हर्षके आंसू चमकने लगे। वाल्मीकिजी और लव-कुश एकटक इस दृश्यको देखते ही रहे।

इतनेमें जाम्बवंत भी खड़े हुए। हनुमान और जाम्बवन्त दोनोंने महामुनिको प्रणाम करके पूछा भगवान राम कहां हैं?'

कुमार पूरी कथा सुनायें इससे पहले ही वाल्मीकिजीने सब कुछ जान लिया था। बस तो जगतकी सारी बातोंसे निर्लिप्त मालूम होनेवाले महामुनि अरण्यमें ही रहकर अपना अधिकतर समय बिताते थे परन्तु प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रमाणोंसे जगतकी छोटीसे छोटी बातें जानकर वे उन्हें मनके तराजू पर तौल लेते थे। जहां जहां मार्गदर्शन देना उन्हें जमा लगता वहां हरएक क्षेत्रमें वे मार्गदर्शन जरूर देते थे, परन्तु

यह आग्रह कभी नही रखते थे कि उनके कहे अनुसार ही सबको चलना चाहिये । स्वय अपने प्रति वे अत्यन्त कठोर रहते थे, परन्तु अन्य लोगोके प्रति उतने ही कोमल और वात्सल्यमय रहते थे। यही कारण है कि गुरु वशिष्ठ जिस प्रकार समाज-गुरु थे, विश्वामित्र जिस प्रकार राष्ट्रगुरु थे, उसी प्रकार वाल्मीकि उस युगमे सबके धर्मगुरु स्वभावत बन गये थे।

जाम्बवन्तकी पीठ थपथपाते हुए विश्वगुरु वाल्मीकिजीने विनोदमें कहा . "तुम सैनिक तो पूरे हो, लेकिन ऐसे असावधान सैनिक लगते हो जिसे इसका भी पता नही कि सेनापति कहा है! आदर्श सैनिकोको जैसे लडना और मरना जानना चाहिये, वैसे ही मिलना और चौतरफा सावधानी रखना भी जानना चाहिये।"

इतना कहकर वाल्मीकिजी आगे बढ गये । जानकीजी, दोनो कुमार, हनुमान और जाम्बवन्त भी उनके पीछे पीछे चलने लगे। थोडी देरमे ही वे रामके रथके पास पहुच गये। सबने रथ पर सोये हुए रामके दर्शन किये । रामको देखकर सीता कही विह्वल न हो जाय, इसलिए समयको पहचाननेवाले वाल्मीकिजी बोले "कोशल-नाथ, नाराज हो गये हैं क्या? नाराज तो जानकीको होना चाहिये, क्योकि अतिम समयमे आपने उन्हे मिलने देनेकी भी उदारता नही दिखाई। जाने दीजिये, अब बहुत हुआ, उठकर बैठ जाइये। देखिये, ये आपकी अद्भुत प्रतिकृतिके समान 'दोनो कुमार आपकी गोदमे बैठनेके लिए आ पहुचे है।"

उसी क्षण रामने स्मितके साथ आखे खोली। राम और सीताकी चार आखे हुई। सीताजी लज्जित हो गई। आखे नीची करके कुछ समयके लिए वे सोचमे पड गई। इस लज्जाका कारण केवल लम्बे समयके बाद हुआ पति-मिलन और पुराने प्रणय-स्मरण ही नही थे, महर्षिके समयोचित वचन इस लज्जाका मुख्य कारण थे। वर्षोसे गृह-स्थाश्रमके स्मरण-मात्रसे सर्वथा मुक्त और निरासक्त तथा अनेक वीत-रागियोके प्रेरणा-मूर्ति वाल्मीकिजी दांपत्य-विज्ञानके और गृहस्थ-धर्मसे सम्बन्धित शिशुप्रेमके ऐसे ज्ञाता है और महासयमी होते हुए भी इतने

वड रस भडार ह — सका नाम पहले-पहल होनेसे सीताजीका लज्जा और विस्मयसे भर जाना स्वाभाविक था।

९६

सीताजी पृथ्वीमें समा गईं

जब रामने रथसे उतरकर वाल्मीकि ऋषिको मस्तक नवाकर अभिवादन किया तो वाल्मीकिजीने रामको हृदयसे लगा लिया। इस आलिंगनने स्वय ही अनेक बातें कह डाली। वाल्मीकिजी अधिकतर वनमें रहते थे। महान विरागी थे। फिर भी उनके भीतरकी रस वत्तिका अनुभव तो इसके पूर्व कहे गये उनके वचनोंसे वहा उपस्थित लोगोंको हो ही चुका था। प्रसाद रस शाति और आनद आतरिक वस्तुए ह। अन्तरकी अनासक्ति जितनी तीव्र होगी उतना ही इन आतरिक वस्तुओंका अनुभव मनुष्यको होगा।

वाल्मीकिजीने सीताजीकी सारी कथा रामचन्द्रजीको कह सुनाई। उसमें लक्ष्मणजी वनमें सीताजीको अकेली छोडकर अयोध्या लौटे तबसे लेकर अतिम क्षण तककी सारी बातें आ गइ। कुछ बातें तो महर्षिने लव-कुशको जो मनोहर गीत सिखाये थे उनमें गुथी हुई थी। व बातें दोनो कुमारोंके मुहसे ही ऋषिने रामको सुनवाइ। वीणा-वादनके साथ बालकोंने तालबद्ध जो शास्त्रीय मधुर सगीत गाया उसे सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। स्वय वाल्मीकिजी तथा सीताजीको भी बालकोंकी इस सगीत-कलासे बडा आश्चर्य हुआ — आनन्द तो हुआ ही।

राघवने अत्यत प्रसन्न होकर कहा ऋषिवर आप तो वीत राग और अपरिग्रही ह। आपसे मैं क्या कहूं? परन्तु इन पुत्रो को मैं क्या द? इन शब्दोंमें भगवान रामने अपने हृदयके भाव प्रकट किये। परन्तु त्यागका दूध पीकर बड़े हुए कुमारोंको राज्य अथवा सपत्तिका लाभ तो स्पर्श कर ही नहीं सकता था। अत अवसर देखकर दोनो कुमारोंने मागा पिताजी हमारे अविवेकपूर्ण व्यवहारसे

अनेक सैनिकोको दु ख हुआ और आपको भी हमने कष्टमे डाल दिया। इसके लिए आप हमे क्षमा कर दे, यही नम्र प्रार्थना है।"

भगवान रामने दोनो पुत्रोको हृदयसे लगा लिया और उनके सिर पर अपना प्रेमल हाथ घुमाते हुए कहा "पुत्रो, तुम तो अपने इस पितासे भी अधिक भाग्यशाली हो, क्योकि तुम्हे गर्भसे ही महामुनिका सत्सग और ज्ञान स्वाभाविक रूपमे मिल गया है।"

वाल्मीकिजी बोल उठे "अवश्य ही पितासे पुत्र बढकर है। उतावले भी कही ज्यादा है, मानो लक्ष्मण काकाकी छूत लगी हो!"

रामचन्द्रने पूर्ति की· "वीरता क्षत्रियोका सुलक्षण है, परन्तु उसमे दुस्साहस और अविवेक नही होना चाहिये। दोनोकी आयुको देखते हुए ऐसी गलती होना स्वाभाविक है। किन्तु जो कुछ होता है वह भलेके लिए ही होता है।"

अब रामचन्द्र महर्षि वाल्मीकिजीकी ओर देखकर बोले "भगवन्, इन घायल सैनिकोको अपना आशीर्वाद दीजिये।" उसी समय आकाशसे वर्षा होने लगी, मानो अमृत-वृष्टि हो रही हो! एकके बाद दूसरा सैनिक आलस्य ले लेकर उठने लगा। वे उठते जाते थे और क्रमसे महामुनि वाल्मीकि, रामचन्द्रजी तथा सीताजीको प्रणाम करते जाते थे।

अब सीताजीके मनमे विचार उठा "मेरा अवतार-कृत्य अब पूरा हो चुका है। ससुरजी पहले ही चले गये। तीनो सासे भी चली गईं। यदि मैं बिना किसी रोग-शोकके सदेह चली जाऊ, तो कितना अच्छा हो?" अपने माता-पितासे मिलनेकी इच्छा भी अब उनके मनमे नही रह गई थी। जीवन यदि कर्तव्य-यज्ञ ही हो, तो जो क्रिया स्वाभाविक प्रयत्नसे हो सके वही होती रहे। गलतिया हो तो उनका परिणाम भी ऐसे साधक और साधिकायें प्रसन्नतासे सहती रहे। ऐसा स्वाभाविक जीवन कितना धन्य है!

राम सीताजीके मनके भावोको ताड गये। उन्होने स्वय ऐसा निमित्त पैदा करनेका निर्णय मनमे कर लिया। लक्ष्मणजीको बुलाकर उनके कानमे रामने कहा· "भाई, जानकीजीसे कहो कि 'वर्तमान

अरूप — निराकार है, इसलिए उसे देखा नही जा सकता। वायुका स्पर्श हो सकता है, परन्तु वह भी आखोंमे दिखाई नही देती। जल भी अनेक स्थानो पर अगम्य रहता हे। परन्तु पृथ्वी ही एकमात्र ऐसी हे, जिस पर मानव जन्म लेता है, चलता-फिरता है और मरता हे। विमानमें और नौकामें भी मानव धरतीको भूल नही सकता।" इतना कहकर सीताजी आखे बन्द करके एकाग्र हो गई। फिर बोली. "हे धरती माता, लकावासके समान मेरे अरण्यवासकी भी तू सदा साक्षिणी रही हे। सचराचर सृष्टिको तू इस वातकी प्रतीति करा दे कि सीताके लिए एकमात्र राम ही सर्वस्व है, और रामके लिए एकमात्र सीता ही सर्वस्व है।"

देखते ही देखते धरती हिलने लगी। वह फट गई। भीतरसे एक मातृ-स्वरूपा आकृतिका मुख वाहर निकला। चारो ओर प्रकाश फैल गया। आकाशसे दिव्य पुष्पोकी वर्षा हुई। पातालसे वाणी फूटी: 'रघुपति राघव राजा राम, पतित-पावन सीताराम।'

वाल्मीकि ऋपि तथा रामचन्द्र भी यह देखकर चकित हो गये। क्षणभरमे उस आकृतिकी भुजाये फैल गई। फैलती फैलती वे सीताजीके समीप पहुच गई। और माताकी गोदमे जैसे वालक छिप जाता है, उसी प्रकार जानकीजी उस मूर्तिकी गोदमे छिप गई। कुछ क्षण गये और देखनेवालोको न तो वहा मातृ-स्वरूपा आकृति दिखाई दी, न सीताजी दिखाई दी। फटी हुई दरार पट गई। धरती फिर पूर्ववत् हो गई। विदेह जनकको हल चलाते चलाते धरतीमे से प्राप्त हुई जानकी धरतीमे ही विलीन हो गई।

अब तो सबकी आखोमे केवल आसू रह गये थे।

भगवान रामचन्द्र स्वय तो जीवित थे, परन्तु उनके भीतरकी तेजशक्ति चली गई थी। आकाश-वाणी चारो ओर गूज उठी "वर्तमान विश्वका अवतार-कृत्य पूरा हो चुका है। कोई खेद न करो। अवतार-कृत्य सफल हुआ है।"

सीताजीके सदाके वियोगसे रामको भी गहरा आघात लगा। उनकी आखोमें आसू छलछला आये। 'शक्तिके चले जानेके बाद

शक्तीश्वरका क्या उपयोग रह जाता है —इस विचारने ऋषि मुनियो को भी दुखी बना दिया। केवल लव कुश ही ऐसे थे जिनके चेहरे पर स्मित फैला हुआ था। प्रिय माताके सदाके वियोगसे वे दुखी नही हुए। उनके मुख पर प्रकट हो रहा भाव मानो सबसे कह रहा था अन्तमें तो सभीको इस ससारसे जाना है। जो सफलतासे स्वधर्मका पालन करके जाता है उसके लिए रोनेका कोई कारण नही रह जाता। उसके जीवनसे तो हमें पवित्र प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये।

यज्ञका अश्व ऋषिगण भगवान राम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न लव कुश और समूची सेना — सब अयोध्याके यज्ञ मडपके समीप आ पहुचे। केवल सीताजी ही अनुपस्थित थी। सभाजनोके नेत्र सीताजीके दर्शनोके लिए व्याकुल थे। ऋषि वाल्मीकिने सबका कुतूहल शात किया। अब सीताजीके दर्शन कभी न होंगे यह जानकर सब लोग अत्यत निराश हो गये। परन्तु जब लव-कुशने सभाके सामने सपूर्ण रामायण छन्दोबद्ध रूपमें मधुर स्वरमें गा सुनाई तब सबके हृदयमें आशाके नये प्राणोका सचार हुआ। सबको विश्वास हो गया कि राम और सीताके जीवित प्रतीकोके समान दो बालक जगतको प्राप्त हो गये है।

धोबी और धोबिनके हृदय रो रहे थे। उन्हे भी दोनो बालकोने आश्वासन दिया मनुष्य तो केवल एक निमित्त है। अशुभ निमित्त बननेवाले मानवको चाहिये कि वह व्यक्तिगत और सामाजिक शुद्धि करनेवाला जीवन व्यतीत करे और ससारको इस बातका विश्वास कराये कि वह तो अनेक कारणोमें से प्रकृति निर्मित एक कारण ही था। ऐसा जीवन जीना ही सच्चा और सफल प्रायश्चित्त होगा।

रामके वनवासने कैकेयी और मथराको जगाया। सीताजीके वनवाससे धोबी और धोबिनको सीख मिली। सत्ताका त्याग करने वाले भरतने माताके स्नेहको परिशुद्ध बना लिया। और सीतामाताके गृहत्यागने धोबी और धोबिनकी आत्मश्रद्धाको पूर्ण रूपसे शुद्ध कर लिया। शुद्ध सत्ताका स्थान राजगद्दी नही परन्तु मानव हृदय है। इसी प्रकार शुद्ध शील और सतीत्वका मूल शरीर नही किन्तु मानव चेतना है। जहा राम है वहा अयोध्या है — सारी प्रजाके मन और

मस्तिष्क है, उसी प्रकार जहा सीता है वहा आत्मनिष्ठ चेतना अवश्य है—फिर भले वे एकाकी लकामे रहे अथवा अरण्यमे रहे। महर्षि वाल्मीकि और गुरु वशिष्ठ परस्पर मिले। विदेह जनक, मुनिगण, राम, लव-कुश, हनुमान तथा प्रजाजन भी एक-दूसरेसे मिले। वन्य सस्कृति, ग्राम-सस्कृति तथा नगर-सस्कृतिका सुन्दर समन्वय हुआ। धन और सत्ताके स्थान पर सर्वत्र नीति, धर्म, स्नेह तथा सेवाकी प्रतिष्ठा पुन स्थापित हुई।

९७

लक्ष्मणकी जल-समाधि

अश्वमेध यज्ञ समाप्त हुआ। जनकराज मिथिला लौटे। वनके ऋषि-मुनियोने वनकी ओर प्रस्थान किया। ग्राम-प्रतिनिधि अपने अपने गावके लिए विदा हुए। असुरो पर सुरोका अधिकार स्थापित हुआ। असत्यके स्थान पर सत्यकी प्रतिष्ठा हुई। जिस प्रकार सीताका कार्य पूरा हुआ, उसी प्रकार रामका कार्य भी अब पूरा होनेको आया। रामकी एक महान सगिनी तो चली गई, परन्तु दूसरा महान साथी अभी जीवित था। वह था लक्ष्मण। हम अच्छी तरह जानते है कि रामके विना सीता शायद रह सकती थी, परन्तु लक्ष्मण तो रामके विना रह ही नही सकते थे। लक्ष्मण थे सगुणोपासक परम भक्त। मन माने कि न माने, तो भी रामकी आज्ञाका पालन करने और सदा उनके साथ रहनेमे ही लक्ष्मण अपने जीवनकी सार्थकता मानते थे। अपने ऐसे भक्तसे भगवान भी दूर कैसे रह सकते थे? वनवासमें तो रामने लक्ष्मणको अपने साथ रखा ही था, उसके पश्चात् भी उन्हे अपनेसे कभी अलग नही किया। रावणके साथ लडे गये युद्धमें लक्ष्मण जब मूर्च्छित हो गये तब राम फूट-फूटकर रोये थे। यह भक्तके प्रति भगवानका अपार प्रेम बताता है। सीताको जिस प्रकार राममे पहले ससारसे चले जानेका निमित्त मिल गया, उसी प्रकार लक्ष्मणको भी रामसे पहले जानेका एक निमित्त मिल गया।

एक बार एक अज्ञात व्यक्तिके साथ रामचन्द्र अत्यन्त गुप्त रूपसे बातें कर रहे थे। उस व्यक्तिने पहलेसे एकान्तमें बातचीत करनेका रामसे वचन ले लिया था। रामने लक्ष्मणसे कहा था "लक्ष्मण इस बातका ध्यान रखना कि यहां कोई आने न पावे फिर आनेवाला व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो।"

एक तो लक्ष्मणका कडा पहरा। उस पर रामकी ऐसी कठोर आज्ञा। फिर पूछना ही क्या? अन्य सबको तो लक्ष्मणने टाल दिया परन्तु दुर्वासा ऋषिको टालना असभव था। ऋषिने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया "मुझे रोकनेवाला तू कौन होता है? यदि तू रामसे पूछने नहीं जायगा और मुझे रोकेगा तो मेरा क्रोध भड़क उठेगा। और एक बार क्रोध भडका तब तो मैं तेरे साथ सबको—अयोध्या नगरीके साथ सारे राज्यको क्षण भरमें जलाकर भस्म कर दूगा।" लक्ष्मण दुर्वासा ऋषिके क्रोधको जानते थे। जो लक्ष्मण परशुरामके क्रोधकी हसी उडा सके वे लक्ष्मण दुर्वासाके क्रोधके सामने टिक नहीं सके। उन्हे इस बातका ध्यान न रहा "कर्तव्यका पालन ही सेवा निष्ठ मनुष्यका परम धर्म है। इस परम धर्मका पालन करते हुए सारा जगत भी यदि भस्मीभूत हो जाय तो उसमें सेवानिष्ठ मनुष्य दोषी नहीं माना जा सकता। इसके विपरीत स्वधर्मका पालन करने वाला सेवक सारे विश्वमें पूजा जाता है।"

लक्ष्मण डरते डरते रामके पास गये और बोले "भगवन दुर्वासा ऋषि पधारे है। वे आपसे मिलने आ सकते है? उन्हे मैं यहां आने दू?" रामने सोचा "जब मनुष्यका कार्य जगतमें पूरा हो जाता है तब सचमुच काल बलवान हो जाता है। जिस लक्ष्मणको मैं अपना अनन्य आज्ञाकारी सेवक मानता था, वह भी अपना धर्म भूल गया! लेकिन होनहार होकर ही रहती है। मानव तो केवल एक निमित्त बनता है। बेशक मनुष्य विशेष परिस्थितिमें ही निमित्त बनता है। परन्तु जो कुछ होता है अच्छेके लिए ही होता है।

इस विचारके बाद वे लक्ष्मणसे कहने लगे "लक्ष्मण मैंने तुम्हें जो आज्ञा दी थी उसके पीछे एक महान हेतु था। मेरे साथ एकान्तमें

ज्ञात करने जो आया था, वह कोई व्यक्ति नही था। वह साकार विश्व-नियम था। वरना मै ऐसी कठोर आज्ञा तुम्हे देता ही नही। लेकिन चिन्ता नही, जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। अव काल भगवानकी आज्ञा मेरे लिए हो चुकी है। दुर्वासा ऋषिको भीतर आने दो।"

ऋषि आये। रामने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया। प्रेमसे उन्हे भोजन कराया। उसके वाद दुर्वासा चले गये। अज्ञात व्यक्ति भी चला गया। तव रामने लक्ष्मणको वुलाकर गभीर आवाजमे कहा : "भाई, अव मेरा इस जन्मका कार्य पूरा हो गया है। अव मै दुनियासे विदा हो जाऊगा। तुम तो केवल इसमे निमित्त वन गये हो। परन्तु यदि स्नेहीजन भी मुझे अपना परम श्रद्धेय व्यक्ति मानते हुए मेरी आज्ञाको न समझ सके और अन्य किसी भयके वश हो जाय, तो दूसरे लोगोका तो कहना ही क्या? सामान्य मनुष्य यदि ऐसा करे, तो उसे क्षमा किया जा सकता है, क्योकि उसकी दृष्टिमें तो जीवित रहना ही जीवन है। परन्तु आज जव मै रामके नाते विश्व-मानवकी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका हू, तव कर्तव्य-निष्ठाकी दृष्टिसे तुम्हारा यह व्यवहार मै सहन नही कर सकता। मेरी आज्ञा केवल देहधारी रामकी आज्ञा नही थी, परन्तु जीवनके नये मूल्योकी स्थापना करनेवाले धर्म-स्थापककी आज्ञा थी।"

लक्ष्मण परिस्थितिकी गभीरताको समझ गये। उनकी समझमे यह रहस्य भी आ गया कि 'रामकी अपेक्षा रामनाम अधिक महान है।' अव हनुमानजीकी अखड आज्ञाकारिताका रहस्य भी उन्होने जान लिया। वे खूब पश्चात्ताप करने लगे "मेरे कारण जगतको रामके प्रत्यक्ष दर्शनसे वचित होना पडेगा।" इस कल्पनासे ही लक्ष्मण काप उठे। उनकी आखे भीग गई। परन्तु निरुपाय वन जानेके कारण ही उनसे यह अकार्य हो गया। वरना एक वार दुर्वासा मुनिसे न डरनेवाले लक्ष्मण आज दूसरोकी कल्पित आपत्तिसे क्यो डर जाते?

रामने लक्ष्मणकी मनोदशाको समझकर उन्हे ढाढस वधाया। परन्तु लक्ष्मणने कहा, "वडे भैया, यदि जगतके आधार आप ही जानेकी तैयारी कर रहे है, तो मै आपसे पहले ही क्यो न चला

जाऊँ? आपके बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रहूँगा। तो फिर आपके वियोगका दुःख भोगकर घरबार जाकर यहाँ आकर। उपस्थितिमें ही आपके आशीर्वाद पाकर स्वेच्छासे जाग्रत अवस्थामें प्राण छोड़ना क्या बुरा है?

समस्त वातावरण करुणासे आक्रान्त हो गया। परन्तु रामकी मूक सम्मति उन्हें मिल गई। इसलिए सरयू-तट पर जाकर लक्ष्मणने जलके बीच ध्यानस्थ होकर यौगिक पद्धतिसे प्राण त्याग दिए।

९८

भरतको उपदेश

लक्ष्मणके जानेके पश्चात् रामके लिए कोई ननिर बंधन नहीं रह गया। भरतका मन इतना दृढ़ था कि वे रामके वियोगको सह सकते थे। इससे भी आगे बढ़कर यह कहा जा सकता है कि वे रामके रिक्त स्थानकी पूर्ति भलीभाँति कर सकें ऐसे कुशल शासक थे। उन्होंने संसारको यह दिखा दिया था कि साकेतके महाराज्यको चलानेवाला पुरुष नंदीग्राम जैसे एक छोटे गाँवमें रहकर भी सरलतासे शासन-तंत्रकी सारी व्यवस्था कर सकता है। उन्होंने दुनियाको यह भी सिखा दिया था कि सादगीमें जो महत्ता और भव्यता है वह ठाट बाट तड़क भड़क अथवा वैभव विलासमें नहीं है। झोंपड़ीमें रहकर और जटाधारी तापसका वेश धारण करके भी सुन्दर रूपमें राज्यका संचालन किया जा सकता है और जनताके हृदय पर गहरी छाप डाली जा सकती है, यद्यपि सर्वमान्य सत्ताका राजदंड धारण करते हुए भी लोक हृदयमें इतना ऊँचा स्थान प्राप्त करना बहुत कठिन था। भर जवानीमें सुंदर और आकर्षक पत्नीके रहते हुए भी विषय वासनाको वशमें रखना संभव नहीं था। सत्ताके स्थान पर बैठकर जनताके अगाध सागर जैसे हृदयमें प्रवेश करके सेवकके नामको सार्थक करना अतिशय कठिन था। दिन रात वैभव विलासके बीच रहकर मर्यादाओंका सान

जीवन विताना असभव-सा था। परन्तु भरतने यह सव प्रत्यक्ष कर दिखाया था। विदेह जनककी निर्लेपतासे भी कुछ वातोमे भरतने अधिक निर्लेपता सिद्ध कर ली थी। इसीलिए तो रामायणकारने भरतके विपयमे रामसे कहलाया है "जो न होत जग जन्म भरतको, सकल धर्म धुर धरणी धरत को?" शायद इसीसे इस देशका नाम भारतवर्ष पडा होगा। रामके नामसे भरतने अयोध्याका शासन चलाया, इसलिए वह 'रामराज्य' कहा गया। परन्तु 'रामराज्य' की परम्परा डालनेवाले भरतका मूल्य 'रामराज्य' मे थोडा भी कम नही आका जा सकता।

रामको तो भरत इतने प्रिय थे कि जव जव राम प्रेमसे भरतका आलिंगन करते थे, तब तव देवोको भी उनसे ईर्ष्या होती थी। यह थी राम और भरतकी जोडीकी अद्भुतता!

ऐसे प्रिय भ्राता भरतसे रामने कहा "प्रिय भरत, सीताजी गई, लक्ष्मण गये। अव मेरा सारा कार्य पूरा हो चुका है। अव मैं अपने मूल स्थानमे जाऊगा। मेरे वनवासके समय तुमने जिस उत्साह और लगनसे साकेतका राज्य चलाया था, उसी तरह मेरे जानेके पश्चात् भी चलाना।"

यह वाक्य सुनते ही भरत व्यथित होकर गिर पडे। कुछ क्षण पश्चात् जव स्वस्थ हुए तो वोले. "प्रभु, सीताके विना यदि राम नही रह सकते, तो रामके विना भरत कैसे रह सकता है? सीता और लक्ष्मणके वियोगके वाद यदि राम जायगे, तो रामके वियोगके वाद रामका प्रिय भाई भरत कैसे रह सकेगा?"

वात सच थी। भरत निर्गुणोपासक अवश्य थे, परन्तु वे रामके परोक्ष आश्रयमे जीनेवाले निर्गुणोपासक थे। मनुष्यके जानेके वाद मनुष्यकी जड छवि तो रह सकती है, परन्तु उसका चेतन प्रतिविम्व एक क्षणके लिए भी नही रह सकता। इस प्रकार रामयुगकी स्नेही-जनोकी पीढीका मानो अन्त आ गया और लवयुगकी नई पीढीका नवयुग आरभ हुआ!

भरतको हृदयसे लगाकर रामने कहा "जो महापुरुप किसी सिद्धान्तके लिए अपना वलिदान देते है अथवा अपना जीवन-कार्य पूरा

हो जाने पर स्वच्छाम ˝ातिपूवक प्राण छाडते ह उनकी स्थूल कायाका भले हा नाश हा जाय परन्तु सूक्ष्म काया सदा अमर रहती है। एसा मृत्युको म आत्महत्या नही मानता परन्तु अक्षय धामके लिए किया गया सदेह प्रयाण मानता हू। भाई तुम दुखी क्या हाते हा? तुम्हारा अथवा दूसरे लागाकी दृष्टिमें म वीतराग यागी हाऊ ता भी शरीरके स्वाभाविक बधनासे तो म भी बधा हुआ हू। जो मनुष्य जन्म लेता है उसका मरना निश्चित है। जिस प्रकार तुम्हे अपने शरीर पर कोई ममता और मोह नहा है उसी प्रकार मरी स्थूल उपस्थितिका मोह भी अब तुम्हे छोड दना चाहिये। एक समय जो यात्रा साधन बनती है वही दूसरे समय बधन बन सकती है। इस विवेकको यदि भरत भी भूल जायगा ता जगतमें मूल्यवान धम टिकेगा कसे?

रामके ये वचन सुनकर भरतको बडी शाति मिली। व बोले वड भया आपकी बात सही है। सच्चा प्रतिबिम्ब कभी इस बातका दुख नहा मानता कि मूल वस्तुके बदल जानके बाद उसका क्या हागा। वह अच्छी तरह जानता है कि मूल वस्तुके कारण ही मेरा अस्तित्व है उस वस्तुके बदलते ही म भी अपने-आप बदल जाऊगा। इस प्रकार सोचें ता रामके विलयके बाद भरतका विलय अपने-आप हा जायगा। तब फिर इसकी चिन्ता म क्यो करू? मुझे सीता और लक्ष्मणसे बोध ग्रहण करना चाहिये कि आपके बिना एक क्षण भी जीवित न रह सकनेवाले वे दोनो आपको छोडकर अकेले ही चले गये। वे जल्दी समझ गये कि सच्चे राम बाहर नही किन्तु भीतर ह। किन्तु म स्वय इस मूलभूत बातको भूल गया। आपके असीम अनुग्रहसे म अपनी यह भूल समझ गया हू। आपने जो कुछ कहा वही परम सत्य है। मुझे अपनी आत्मामें ही राम मिल चुके ह। अब आप अपने धाम जा सकते ह।

इतनेमें परम भक्त हनुमानने आगे आकर रामके चरणोमें प्रणाम किया। रामने हाथ पकडकर उन्हे खडा किया और कहा 'प्रिय हनुमान अभी तो तुम्हे लम्बे समय तक इस देशमें रहना है। तुम्हारा विजय-गान चिरकाल तक इस विश्वमें गाया जाता रहेगा।'

रामचन्द्रजीका यह वरदान आज भी भारतके कोने कोनेमे यथार्थ सिद्ध हो रहा है। 'राम, लक्ष्मण, जानकी, जय बोलो हनुमानकी।' यह धुन आज भी भारतवासी गाते हैं। 'हनुमानकी जय' यानी बजरगबली-की जय। बजरग जैसा तनबल कैसे आयेगा? निष्ठापूर्ण ब्रह्मचर्यसे।

९९
विभीषणसे

जब विभीषणने जाना कि भगवान राम इस विश्वसे अतिम विदा लेनेवाले है, तब वे तुरन्त लकासे रामके चरणोमे आ पहुचे। प्रणाम करके वे बोले·

"भगवन्, आपके सद्गुणोका मुझ पर इतना गहरा प्रभाव पडा है कि मन होता है सदा आपके चरणोमे ही रहकर जीवनको सफल बनाऊ। परन्तु आपने लकाका राज्य चलानेका कर्तव्य मुझे सौपा, तबसे आज तक आपकी आज्ञाको शिरोधार्य मानकर मैंने अपना यह कर्तव्य किया है। अब मेरी आतरिक इच्छा यह है कि आप मुझे अपने साथ चलनेकी अनुमति दें।"

राम बोले· "भाई विभीषण, कोई किसीके साथ कभी जा नही सकता। मनुष्यके शुभ और अशुभ कर्म ही परलोकमे उसे शुभाशुभ गति दे सकते है। तुम्हारे समान मित्रोको मुझसे प्रेरणा भले मिली होगी। परन्तु अन्तमें तो मैं भी कर्मके नियमसे बधा हुआ एक देहधारी ही हूं। इसलिए सुग्रीवसे मैंने जो बात कही, उससे भिन्न तुमसे कहूंगा। तुम्हे तो अभी लम्बे समय तक लकाका राज्य चलाना होगा। राज्यतत्र चलाना कठिन जरूर है। उसमे भी जब राज्यकी प्रजाको उलटे रास्ते पर चलनेकी आदत हो गई हो, तब प्रजाके कल्याणकी दृष्टिसे राज्यतत्र चलानेका काम अधिक कठिन हो जाता है। परन्तु किसी न किसीको तो यह कठिन काम करना ही होगा। हमारा भारत आध्यात्मिकताके मार्ग पर चलनेवाला देश है।

परतु आध्यात्मिक मनुष्यारा आध्यात्मिकताारा बनाये रखनके लिए और उस विकसित करनके लिए देशका राजनीतिक वातावरण वस्त अस तक पवित्र होना चाहिये। अयोध्या किष्किधा और लका दशके इन मुख्य भाग की राजनीति यदि पवित्र होगा तो दशका आध्यात्मिक और आर्थिक सम्पत्ति अच्छी तरह सुरक्षित रहेगा। इस बातको ध्यानमें रखकर जिस प्रकार ऋषि मुनियाके तप त्याग और आदरका समाजमें प्रतिष्ठित करनका मने प्रयत्न किया है उसी प्रकार दशके मुख्य राज्यतत्रको भी पवित्र बनाये रखनकी पूरी कोशिश की है। लकाके युद्धके समय और उसके बाद एक परम सलाह रूपमें तुमने मेरे साथ रहते हुए यह सब देखा और जाना है।

रामके ये वचन सुनकर विभीषणने कहा भगवन आपका कहना यथार्थ है।

जब विभीषणने लकाका राज्य भलीभाति चलाने और दशकी दृष्टिसे अयोध्या किष्किधा तथा लका आदि राज्योकी एकता बनाये रखने और शातिकी रक्षा करनकी जिम्मेदारी अपने सिर ले ली तो रामको बडा सन्तोष हुआ। अन्तमें एक बातकी ओर भगवान रामने फिरसे विभीषणका ध्यान खीचा प्रिय विभीषण रावणकी मृत्युके बाद तुरत जिस बातकी ओर मने तुम्हारा ध्यान नही खीचा उसकी ओर अब म तुम्हारा ध्यान खीचना चाहता हू। लकाका प्रजा जीवन अब स्वतत्र बन गया है यह जानकर मुझ अतिशय आनद हुआ है। लका की जनता निरकुश सत्ताके अधीन रहनकी आदी हो गई थी इसलिए प्राप्त स्वतत्रताकी उस पर जो प्रतिक्रिया हुई उसे भी तुमने कुशलतासे सभाला यह भी मेरे लिए सतोषकी बात है। परन्तु तुम्हे अब व्यक्तिगत रूपमें भी अधिक शुद्ध बननका प्रयत्न करना होगा। भारतकी जनता की यह एक बडी कमजोरी है कि वह अपने राजाके बुरे व्यवहारका अनुकरण करनके प्रलोभनमें तुरत फस जाती है। इसीलिए भारतमें कहा गया है यथा राजा तथा प्रजा और राजा कालस्य कारणम। इस कारण राजाका कर्तव्य बहुत बढ जाता है। तुम जानते ही हो कि राज्यके प्रत्येक नागरिकका चरित्र विकसित होता रहे इसके लिए मने

१००

जाम्बवन्तसे

जाम्बवन्तसे भगवान रामने कहा भाई जिस प्रकार कुश लव, अंगद और विभीषणके समान राज्यतंत्रका संचालन करनेवाले राज पुरुषोंकी देशको आवश्यकता है उसी प्रकार वाल्मीकि वशिष्ठ और विश्वामित्रके समान विविध प्रकारसे निरंतर धर्मकार्यमें रत रहनेवाले साधु-पुरुषोंकी भी देशको आवश्यकता है। हनुमान और जाम्बवन्त जसे सेवकोंकी राष्ट्रको इनसे भी अधिक आवश्यकता है। म मानता हू कि मेरी अनुपस्थितिमें तुम लोग सबसे बडा काम करनेवाले हो। एक बात अवश्य है कि तुम्हारे जसे सेवकोंके नाम ससारमें प्रसिद्धि नही पायेंगे। बहुत कम लोग तुम्हे जानेंगे। कदाचित तुम्हारे जसे लोगोंको अप्रिय बननेका खतरा भी उठाना पडगा। फिर भी मरी दृष्टिसे देशके महत्त्व पूण अग तो तुम्हा बननेवाले हो क्योंकि देशके समस्त शुद्ध परिबलोंको एकसाथ जोडनेका काय जाने या अनजाने तुम्ही सब करोग। देशके शुद्ध परिबलोंको जोडकर एक करनेका काय जब तक चलता रहेगा तब तक परराष्ट्रका कोई भय भारतको नही रहेगा। राष्ट्रको आतरिक बुराइयोंका जो बडेसे बडा भय हो सकता है वह भी तुम लोगोंके द्वारा सरलतामे दूर हो सकेगा। इस कारणसे म तो देश विदेशके सच्चे राजदूत तुम लोगोंको ही मानता हू। तुम्हारे जसे पुरुष ही देश विदेशके साथ स्थूल और सूक्ष्म सपक भी अधिक मात्रामें रख सकते ह। सबसे बडी बात तो यह है कि ऐसे लोगोंको साधु कहा जाय या न कहा जाय परन्तु वे ही सवत्र साधुताका प्रसार कर सकते ह। तुमसे मुझ चार मुख्य बातें कहनी ह जो म जानेसे पहले बता दू। इतना कहकर राम कुछ क्षण रुक गये।

परन्तु जाम्बवन्तके हवाश्रुआन उनका सकोच मिटा दिया। रामकी वाग्धारा फिर बहने लगी प्रिय मित्र किष्किधामें हमारा मिलाप

हुआ तबसे आज तक तुम मेरे साथ ही रहे हो। केवल सीता ही नही, परन्तु मेरा सारा परिवार तुमसे अच्छी तरह परिचित है। इसी प्रकार किष्किन्धाके राजनीतिक परिवर्तनके बाद लकाके युद्धमे सम्मिलित होने तथा वहासे अयोध्या आनेके कारण तुम मेरे राष्ट्रीय महत्त्वके कार्योके भी साक्षी रहे हो। इस बातको भी तुम अच्छी तरह समझ चुके हो कि सच्चा और मूलभूत कार्य तो आत्मवलसे ही होता है। हनुमानके जितना आत्मवल तुममे चाहे न हो, परन्तु हनुमानके नेतृत्वमे तुम सवकी श्रद्धाका होना पर्याप्त है। विवेक-बुद्धि तथा सक्रियताके गुणोके कारण तुम और तुम्हारे जैसे दूसरे लोग अधिक काम कर सकेगे। फिर भी तुम सब मेरी इन बातोको ध्यानमे रखकर ही काम करना

१ नेताका अधश्रद्धासे अनुसरण न करना। साथ ही नेताका त्याग भी न कर देना। आपसमे चाहे जितने मतभेद तुम्हारे बीच हो, परन्तु सगठनको कभी टूटने न देना।

२ जिस प्रकार तुम अपने सगठनकी रक्षा करोगे उसी प्रकार विविध प्रकारके साधु-सतो, राज्य और साधारण जनताके बीचका सम्वन्ध न टूटे इसका भी ध्यान रखना। भारतको साधुओकी सस्थाकी सदा ही आवश्यकता रहेगी। इसलिए भारतकी यह सस्था समाजसे अलग पड जाय अथवा स्थान-भ्रष्ट हो जाय, तो भी उसे पुनर्जीवित किया जा सकता है। यह कार्य बडा महत्त्वपूर्ण है, जिसे तुम लोग ही करनेकी सामर्थ्य रखते हो।

३ मुहसे कम बोलना, तुम्हारे कामको ही बोलने देना। अर्थात् किसी क्षेत्र, सस्था, व्यक्ति अथवा भावनासे बध मत जाना और फिर भी तुम्हारी सस्थाके अग बने रहकर उस तटस्थ सस्थाको मजबूत बनाना। अपने व्यक्तित्वको उसमे विलीन कर देना।

मैने जिन नये मूल्योकी स्थापना की है उन्हे मेरे ही उत्तराधिकारी यदि हानि पहुचायें, तो उनका भी तुम विरोध करना। यह बात मत भूलना कि इन मूल्योका देशके प्रत्येक गावमे प्रचार और प्रसार करनेका काम अभी बाकी है। यह काम तुम लोग और पुनर्जीवन प्राप्त किये हुए सन्त पुरुष ही कर सकते है।"

जाम्बवत, नल नील आदि सब साथियोंने नतमस्तक होकर भगवान रामका उपदेश ग्रहण किया। सबने माना कि भगवान रामके चले जानेके पश्चात् उनका कार्य हनुमान जैसे परम भक्तके नेतृत्वमें सगठित होकर हमें ही मुख्यत करना होगा। हम साधु नहीं है, परन्तु साधुओंसे भी बढ़ा चढ़ा सयम हमें ही पालकर दुनियाको दिखाना है। यह बात भी उन सबको स्पष्ट समझमें आ गई कि सत्ता, धन और प्रसिद्धिसे दूर रहे बिना ऐसी तटस्थ सस्थाका अग नहीं बना जा सकता।

१०१

कुशको राजगद्दी

गुरु वशिष्ठको अभिवादन करके रामचन्द्र बोले म अयोध्याकी राजगद्दी लवको नहीं परन्तु कुशको सौंपता हू।

इसके बाद कुशकी ओर देखकर रामने कहा मेरी अनुप स्थितिमें भरतके द्वारा चलाये गये राज्यकी तथा वनवासके बाद अयोध्या लौटकर मेरे द्वारा चलाये गये राज्यकी मुख्य राजनीतिकी तुम अच्छी तरह रक्षा करना। म उत्तराखडका महान समृद्धिशाली राज्य प्रिय पुत्र लवको देता हू। भरतके पुत्रोंको दक्षिण दिशाकी राज्यश्री सौंपता हू। भाई लक्ष्मणके सुपुत्रोंसे पश्चिमके कुछ राज्यभागोंकी देखभाल करनेका आग्रह करता हू। शत्रुघ्नके पुत्रोंको तो मथुरा और विदिश नगरके राज्य पहलेसे ही साप जा चुके है। हे कुश राज्यको म बहुत बड़े दायित्वकी वस्तु मानता हू। जिस प्रकार म अपने पुत्रोंको और अपने भाइयोंके पुत्रोंको किसीकी दया पर जीनेके लिए नहीं छोड जाता और चाहता हू कि वे अपनी अपनी शक्तिका उपयोग अपने विभागोंके प्रजाजनोंकी सेवामें करे, उसी प्रकार तुम सबसे म यह अपेक्षा रखता हू कि सामान्य जनता तथा राज्यतत्रके कर्मचारियों तथा अधिकारियोंके बीच भी एकवाक्यता बनी रहे। इसके लिए तुम सब त्यागके मत्रको सामने रखकर जीवन व्यतीत करना।

"परन्तु हे प्रिय पुत्र, तुमसे यह वात विशेप रूपसे कहता हू, क्योकि ये सव राज्यभाग स्वतत्र रूपमे चले, तो भी उनका लक्ष्य तो अयोध्याकी ओर ही रहेगा। किष्किन्धा और लकाके राज्य भी अयोध्याके राज्यको अपने सामने रखकर ही अपना राजकाज चलायेगे। हे कुश, यह वात सदा ही याद रखना कि राजा सत्ताधीश नही है, परन्तु प्रजाका एक नम्र सेवक है। 'एक मनुष्य या एक वर्ग जो कहता है, उसकी परवाह क्यो की जाय?' ऐसा अभिमान प्रजाका नम्र सेवक कभी नही रख सकता। जैसे राज्यका धन प्रजाका धन है, वैसे ही एक मनुष्य अथवा एक वर्गकी आवाज भी प्रजाकी आवाज है—ऐसा मानकर ही राजाको चलना चाहिये। सभी लोगोको एकसाथ प्रसन्न नही किया जा सकता। लोकप्रिय वननेके लिए राजा कभी सत्यको हानि नही पहुचा सकता। परन्तु इस वातका तो उसे सदा ध्यान रखना ही चाहिये कि राज्यके एक भी मनुष्यके मनमे राज्यके सत्य और न्यायके वारेमे शका न वढे।"

गुरु वशिष्ठ हसकर वीचमे वोल उठे "परन्तु वडे पुत्र तो लव ही माने जायगे न?"

रामचन्द्रने नम्रतासे उत्तर दिया "गुरुदेव, आपका कहना सत्य है। परन्तु वडे पुत्रको ही राज्यकी सारी जिम्मेदारी नही दी जानी चाहिये। मैने अपने विषयमे भी आपसे यही निवेदन किया था। पिताजीने जव राज्यकी सारी जिम्मेदारी मुझे सौपी तव भी मैने आपके समक्ष अपनी शका रखी थी। आज मैने अपने उत्तराधिकारियो तथा अपने कुटुम्वीजनोमे उस जिम्मेदारीको वाट दिया है। इसी प्रकार कुश छोटा है तो भी उसे अयोध्याकी राजगद्दीकी जिम्मेदारी मैने सौपी है। वैसे तो लव-कुश दोनो समान है। और मेरे नम्र मतसे तो दोनो ही धर्म्य पुत्र भी है, क्योकि दोनो एकसाथ एक ही समय पैदा हुए है। फिर भी यदि कुश छोटा माना जाय, तो भी प्रचलित परम्परामे यह परिवर्तन आज आवश्यक हो गया है। भविष्यमे किसी भी लिंगके अथवा किसी भी वर्णके मनुष्य भी राज्यकी जिम्मेदारिया

समाज सकेंगे क्योंकि अन्तमें तो गुण और कर्म ही वर्ण और लिंगके कार्यभेद निर्धारित होने चाहिये।'

गुरु वशिष्ठने अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले 'जो बात वर्णोंके लिए सच है वही चार आश्रमोंके लिए भी सच होगी। उनमें न तो कोई आश्रम ऊँचा है न नीचा है। जो आश्रमी गुण-कर्मोंसे ऊँचा उठेगा, वही ऊँचा माना जायगा, और उस आश्रमीका आश्रम भी उतना ही ऊँचा माना जायगा।'

१०२

अंतिम सन्देश

भगवान रामने परिवारके सदस्यों मित्रों तथा भारतके राज्योंके लिए अपना जो अंतिम सन्देश दिया वह सुन्दर प्रेरक और मार्गदर्शक था। उसके बाद देवगण और ऋषि मुनि भी आ पहुंचे। रामने ऋषि मुनियोंके चरणोंमें भक्तिभावसे नमस्कार किया तथा देवताओंको धन्यवाद दिया। देवताओंने कहा — आपने मानव-जगतका उद्धार करनेवाला सर्वोच्च कार्य पूर्ण कर दिया और मंगलमय भविष्यका सूचक सन्देश भी दिया। अब हमें कुछ कहिये।'

रामचन्द्र बोले — जब तक आप सब मानव-जगत और प्राणी जगतके परम हितेच्छु बिना मांगे देनेवाले ब्रह्माजीके प्रति आदर और विश्वास रखेंगे तब तक आप सबके लिए भी परम कल्याणका मार्ग खुला रहेगा। परन्तु यदि वैभव विलासमें आसक्त होकर आप उनकी आज्ञाकी अवगणना करेंगे तो आप स्वयं भी नीचे गिरेंगे और संसारको भी पतनके मार्ग पर ले जानेके कारण बनेंगे। अतः आप सबसे मेरी प्रार्थना है कि वैभव विलासकी जो भी सामग्री आपको मिली है या भविष्यमें मिलेगी उसका ब्रह्माजीकी समस्त प्रजाके लिए सदुपयोग कीजिए। इससे प्रजापति ब्रह्माजी भी आपसे प्रसन्न होंगे और समस्त आध्यात्मिक आशीर्वाद भी आपको मिलेंगे। साधकके जीवनमें जब जब

ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि और कीर्ति वढे, वैसे वैसे उसे अधिकाधिक त्यागी, तपस्वी, नम्र और सहनशील वनना चाहिये।" देवताओ पर रामके वचनोका गहरा प्रभाव पडा।

इसके वाद ऋषि-मुनियोकी ओर देखकर राम वोले "पूज्य मुनिवरो, आपके चरणोमे तो मै वार वार प्रणाम ही कर लू।" ऋषि-मुनियोकी आखोमे हर्षके आसू उमड आये। ससारके महापुरुष रामको वार वार नमस्कार करते देखकर वे सव वोले "आप गृहस्था-श्रमी है, फिर भी अन्य लोगोके समान हम सवके भी आप उतने ही पूज्य भगवान रामचन्द्र है। अत अतिम विदाके समय हम लोगोको भी आप अपना सन्देश देते जाइये।"

भगवान रामचन्द्रने कहा "पूज्य मुनिवरो, आप तो हृदय तथा देह दोनो दृष्टिसे पूजनीय है। आप भारतीय सस्कृतिके प्राण है और भविष्यमे आप अपने इस स्थानकी शोभा अधिक वढायेगे, क्योकि आप सवके मनमे सच्चे गुणोका अतिशय आदर दिखाई देता है। आपसे भला मै क्या कहू? मुझे लगता है कि जव तक यह देश ऋषि-मुनियोके त्याग और तपकी सच्ची पूजा करके चरित्रका ही मूल्य अधिक आकेगा, तव तक इस देशके भाग्यमे विश्वका गुरुपद सदा लिखा ही रहेगा। त्यागी और तपस्वी मुनियोको भी इस देशमे सदा सद्‌गुणोके उपासक रहनेकी तथा विविध प्रकारके मतभेदोके वीच जनताके जागतिक प्रश्नोमे अहिसक मार्गदर्शन देते रहनेकी सतत सावधानी रखनी होगी। यदि वे सकुचित सीमाओके भीतर वन्द हो जायगे और विश्वके जैसा विशाल हृदय न रखकर व्यक्तिगत अथवा समूहगत अहकारमे आनन्द मानते हुए सद्-गुणोकी पूजाको भूल जायगे, तो उनकी उज्ज्वल कीर्ति लुप्त हो जायगी। इसके फलस्वरूप भारतको और सारे जगतको वहुत वडी हानि पहु-चेगी। परन्तु भारतका तेज ही कुछ ऐसा है कि उसके ऋषि-मुनि यदि स्वय सावधान न रहे, तो यथासम्भव उन्हे सावधान करनेवाली विभूति भी इस देशमे उत्पन्न हुए विना रह नही सकती। ऐसी परिस्थिति पैदा हुई तो इतना अन्तर अवश्य पड़ेगा कि जनतामे पुन ऋषि-मुनियो,

धम और सस्कृतिके प्रति श्रद्धा प्रगट करनेके लिए थोडा त्याग और बलिदान करना पडेगा और इस कार्यमें विलम्ब नहीं होगा।

उपस्थित ऋषि मुनियोंने श्रद्धापूर्वक रामचन्द्रकी यह अमर वाणी सुनी। सरयू नदीके पवित्र तट पर इतना सन्देश भगवान रामने सबको दिया कि घरर-र-र आवाज करता एक अलौकिक विमान मानो आकर वहा ठहर गया हो, इस प्रकार सब उपस्थित लोगोंको प्रत्यक्ष-वत दिखाई देने लगा। एक ओर भरत जल समाधिमें लीन हुए और सुग्रीव सूर्य किरणोंमें विलीन हो गये। दूसरी ओर राम विमानमें बैठे विमान आकाशकी ओर उठा और तुरत लुप्त हो गया। अब तट पर खडे हुए लोगोंको आकाशसे बरसनेवाली पुष्पवृष्टि ही दिखाई देती थी दूसरा कहा कुछ दिखाई नहीं पडता था। देव, ऋषि मुनि मानव और पशु सब लम्बे समय तक आकाशके सामने एकटक देखते रहे और अतमें अपने अपने स्थानको चले गये। सबके अत करणमें भगवान रामके अनेक पवित्र स्मरण दृढतासे अंकित हो गये।

*

रामायणका यह पवित्र सवाद जिस प्रकार शिव-पार्वतीके बीच चला उसी प्रकार काकभुशुण्डि और गरुडके बीच भी चला था। अब यह सवाद मानव और मानवके बीच चलता है। हम आशा रखें कि इस गाथायुगमें थोडा रूपान्तर प्राप्त करके सत्य अहिंसासे ओतप्रोत यह रामायण शुद्ध जनताके द्वारा ससारमें पुन अस्तित्वमें आयगी और राम राज्यके सच्चे सर्वजन मान्य आदर्शको प्रत्येक गाव प्रत्येक घर और प्रत्येक व्यक्तिको पुन स्वास्थ्यपूर्ण परिचय करायेगा।
